परन्तु विश्वासघातियोंने सैयद गफ़फारको क़त्ल करते ही दीवार पर चढ़ सफेद रुमाल दिखाकर अंग्रेज़ी सेनाको इशारा कर दिया था और वह टीपूके पहुँचनेके पहिले ही टूटी दीवारोंकी राह रंगपट्टनके क़िलेमें घुस आये थे।

दीवान मीर सादिक़ने जब सुना कि सुलतान ख़ुद क़िलेमें सेना एकत्र कर रहा है तो उसने किलेके फाटक बन्द करवा दिये। इससे सुलतानके बाहर आनेके सब रास्ते बन्द हो गये। वह पहरेदारोंको दर्वाज़ा न खोलनेकी हिदायतें दे ही रहा था कि एक वीर सिपाहीने ललकारकर कहा—"कम्बख्त मलऊन ख़ुदा तर्स सुलतानको दुश्मनोंके हवाले करके तू जान बचाकर भागना चाहता है? ले अपनी सज़ा।" उसने उसी दम उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

परन्तु सुलतानके लिये अब कुछ न रह गया था। क़िला शत्रुके हाथों चला गया था। उसने मुट्ठी भर सिपाही इकट्ठे किये और शत्रुओं पर टूट पड़ा—जो टूटी हुई दीवारोंसे टिड्डीदलकी भाँति क़िलेमें धंसे चले आ रहे थे। उसने चिल्लाकर कहा—

"बहादुरों, हर एकको सिर्फ एकबार ही मरना है।"

उसने गोलियाँ चलानी शुरू की। कई अंग्रेज़ अफ़सर मरकर गिर गये। अन्तमें एक गोली उसकी बाँई छातीमें आकर लगी। पर उसने न बन्दूक़ छोड़ी न पीछे मुड़ा। इतनेमें एक और गोली उसकी छातीमें दाहिनी ओर पार हो गई। उसका घोड़ा भी मर कर गिर गया उसकी पगडी धरतीमें गिर गई दुश्मन उसके

जीवन और मृत्यु

आचार्य चतुरसेन

दो शब्द

इस कहानी संग्रह में आचार्य जी की ३८ कहानियाँ हैं। 'जीवन और मृत्यु' उनकी अत्यन्त प्रिय और अभी तक अप्रकाशित कहानी है। 'बैजू बावरा' उन्होंने एक फिलम निर्माता के आग्रह पर लिखी थी परन्तु कुछ कारणों से इस पर फिलम नहीं बनी। 'पहली तरंग' पत्र-रूप में लिखी नयी शैली की रचना है।

आचार्य जी अपनी कहानियों के सम्बन्ध में कहते हैं—"नहीं जानता के दूसरे लोग कहानी लिखने की प्रेरणा कहाँ से पाते हैं परन्तु मैं तो कहानी की टोह में अपने चारों ओर जासूसी नजर से देखता रहता, बहुधा मित्रों और परिचितों के चरित्रों पर ध्यान करता, प्लाटों की टोह में चौपाटी के चक्कर लगाता। परन्तु यह बात मेरे ध्यान में भी न आयी कि मुझे अन्य लेखकों की कहानियाँ पढ़कर भी कुछ प्रेरणा लेनी चाहिए। जब-जब कोई कहानी मिली तो पढ़ जरूर लेता था पर उस पर मैंने ध्यान कभी नहीं दिया। मेरी आसक्ति इतिहास की ओर विशेष थी। बचपन से ही मैं प्राचीन गौरवमय चरित्रों को चाव से पढ़ता रहा हूँ।

"मैं राजपूती चरित्र पर कलम चलाने लगा और बाद में बौद्ध युग तक जा पहुँचा। राजपूती चरित्र पर लिखी मेरी कहानियों में मेरा तरुण रक्त है। पहले मैं अपने को जन्मतः क्षत्रिय समझता था। तब ऐसा प्रतीत होता था मानो मैं अपनी ही गुण-गरिमा गा रहा हूँ। राजपूती जीवन पर जो

मेरा ध्यान केन्द्रित हुआ वह इसलिए नहीं कि राजपूत पीड़ित और व्यथित थे, अपितु मेरा मन उनके प्रति ममता से भर उठा था।

"मुगल चरित्र पर मेरी कलम अपने आप ही रपट पड़ी। राजपूतों का वर्णन करते-करते मैं उधर झाँकने लगा था। मेरे मन में कोई प्रचार-भावना नहीं थी। मानव मन के अन्तर्द्वन्द्व के रेखाचित्रों पर ही मेरा ध्यान गया। शायद यह भी मेरी रचनाओं की प्रखरता में सहायक हुआ। इसीसे राजपूती और मुगल जीवन पर आधारित कहानियाँ श्रेष्ठ बन पड़ी हैं।"

—चतुरसेन

अनुक्रम

१

जीवन और मृत्यु

महाराज जनक बड़े भारी ब्रह्मवेत्ता थे और बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनके सामने ब्रह्म सम्बन्धी उलझनें सुलझाने को आते रहते थे। विद्वन्मण्डली में वे विदेह जनक के नाम से प्रसिद्ध थे। एक बार मुनि अष्टावक्र उनके यहाँ आये। वह बड़े अक्खड़ मिजाज के आदमी थे।

आते ही राजा से प्रश्न कर बैठे—"तुम जो अपने को विदेह कहते हो, यह तुम्हारा झूठा अभिमान है। अरे, तुम किस प्रकार के विदेह हो जबकि ठाठदार महलों में रहते हो, सुन्दर स्त्रियों और दास-दासियों से सेवाएँ कराते हो, छप्पन प्रकार के उत्तम भोजन करते और षड्रस चखते हो, नरम और कोमल गुदगुदे गद्दों पर मौज करते हो, इशारे पर दास और दासी हाथ बाँधे खड़े रहते हैं, दुनिया के राजा तुम्हारे नाम से काँपते हैं, संसार की कोई वस्तु तुम्हारे लिए दुर्लभ नहीं है। इन समस्त भोगों और ऐश्वर्य के बीच में रहते हुए, इन्हें भोगते हुए, तुम विदेह होने का पाखण्ड किस प्रकार करते हो? विदेह तो हम हैं। हमने अपनी तमाम इन्द्रियों को वश में कर लिया है, हम महीनों और वर्षों वृक्ष के पत्ते खाकर अथवा केवल पवन भक्षण करके, समाधिस्थ होकर ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, सारी वासनाओं को हमने बलपूर्वक नष्ट कर डाला है और अपने शरीर को सुखाकर हमने काँटे के समान कर लिया है। हमने इतने कष्ट सहन किये हैं। विदेह तुम हो कि हम?"

यह सुनकर जनक हँसे। उन्होंने आदरपूर्वक ऋषि की अभ्यर्थना की और कहा—"महाराज, सब बातों का उत्तर उतावली में नहीं दिया जा सकता। आप आइये, ठहरिये, कुछ दिन के लिए अपने इस सेवक का आतिथ्य स्वीकार कीजिए।"

शय्याओं पर सोता था उसकी प्रत्येक इच्छा और आज्ञा का पालन किया जाता था। देखते-ही-देखते उसका रंग-ढंग बदल गया। वह खूब मोटा-ताजा और सुखी हो गया। अष्टावक्र उसका यह परिवर्तन देखते और राजा की मूर्खता पर हँसते थे।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गये। इस बीच में मुनि अष्टावक्र ने राजा से कई बार अपने प्रश्न का उत्तर माँगा और राजा ने उसे हँसकर टाल दिया।

एक दिन महाराज ने अपने विश्वस्त सेवक से पूछा कि उस आदमी का क्या हाल है जो कि पकड़कर लाया गया था। क्या हमारी समस्त आज्ञाओं का यथावत् पालन हो रहा है?

अनुचर ने विनीत भाव से कहा कि महाराज की आज्ञाओं का यथावत् पालन हो रहा है और वह आदमी बहुत सुखी और सन्तुष्ट है।

राजा ने आज्ञा दी कि अभी सारे शहर में ढिंढोरा पिटवा दो कि कल सायंकाल सूर्यास्त के समय उस पुरुष को राजमहल के प्रांगण में सूली पर चढ़ा दिया जाएगा। जो कोई इस दृश्य को देखना चाहे, वह उस समय राजमहल में आकर देख सकता है।

राजकर्मचारी राजा की इस विचित्र आज्ञा को सुनकर आश्चर्यचकित हुए और जब मुनि अष्टावक्र ने सुना तो उन्होंने कुटिल हास्य करके कहा कि निस्सन्देह राजा पागल है और भयानक भी। ऐसे राजा के प्रमाद और क्रोध का क्या ठिकाना! इससे तो दूर रहना ही अच्छा। अब लीजिये उस बिचारे भिक्षुक की जान अकारण ही जायेगी।

परन्तु राजाज्ञा का पालन कर दिया गया। ढिंढोरा पीटने वाला व्यक्ति जब राजमहल की खिडकी के नीचे खड़ा होकर राजाज्ञा सुनाकर ढोल पीटने लगा तो उस भाग्यहीन ने भी अपने भाग्य के उस फैसले को सुन लिया। इसके साथ ही वह बौखला उठा और उसने घबराकर कहा—यह क्या बात है? किसलिए मुझको सूली पर चढ़ाया जा रहा है? किसलिये मेरे साथ यह अनर्थ किया जा रहा है? यह घोर अन्याय है। दुहाई है महाराज की, दुहाई सब लोगों की! मुझ गरीब को बेकसूर मारा जा रहा है, मेरी रक्षा होनी चाहिए। यह राज्यभोग, सुख और ऐश्वर्य मुझे नहीं चाहिए।

ऋषि शान्त हुए और राजमहल में ठहर गये। जनक महाराज ने उनकी सेवा-सुश्रुषा और आराम की बहुत अच्छी व्यवस्था कर दी। वह बड़े सुख और आनन्द से राजमहलों में रहने लगे और इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये।

एकाएक एक दिन महाराज जनक ने अपने एक विश्वस्त अनुचर को आज्ञा दी कि किसी ऐसे दीन-दुःखी मनुष्य को पकड़कर ले आओ जो कि अपने जीवन से बिल्कुल निराश हो, आत्मघात तक करने को तैयार हो, जिसका दुनिया में कोई सहारा न हो, जो सब प्रकार से पतित, कलंकित और अयोग्य हो।

महाराज की आज्ञा का तुरन्त पालन किया गया और ऐसे ही एक पुरुष को पकड़कर महाराज के सामने उपस्थित किया गया।

महाराज ने आज्ञा दी, इस पुरुष को आज से हमारे ही समान अधिकार-सम्पन्न समझा जाय। जिस प्रकार हमारी आज्ञाओं का पालन किया जाता है, उसी प्रकार इस पुरुष की आज्ञाएँ पालन की जायें और जिस प्रकार का ऐश्वर्य और सुख-भोग हमारे लिए उपस्थित है, वैसा ही इस पुरुष के लिए उपस्थित कर दिया जाय तथा इसकी प्रत्येक उचित और अनुचित आज्ञा का पालन किया जाय। जो कोई इस काम में चूक करेगा उसको प्राणदण्ड दिया जायगा।

यह सारे खेल मुनि अष्टावक्र के सामने हुए और वे राजा की इस अद्भुत आज्ञा को सुनकर बड़े आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने अपने मन में कहा कि राजा लोग भी सनकी हुआ करते हैं। जो उनके मन में तरंग आयी वही कर बैठते हैं।

परन्तु उस व्यक्ति के प्रति मुनि अष्टावक्र का कौतूहल जरूर बढ़ गया। वे बड़े ध्यान से उसकी दिनचर्या को देखने लगे। दर्जनों दास-दासियाँ और सेवक उसकी सेवा में उपस्थित हो गये और एक बढ़िया सा महल उसे रहने को दे दिया गया और राजसी ठाठ-बाट से उसे सुसज्जित कर दिया गया। वह भूल गया अपने उन दिनों को जबकि वह एक निरीह भिखारी होकर रोटी के एक टुकड़े की भीख माँगता था। अब वह राजा के समान, सेवकों पर हुक्म चलाता था। अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन करता था, उत्तम

शय्याओं पर सोता था। उसकी प्रत्येक इच्छा और आज्ञा का पालन किया जाता था। देखते-ही-देखते उसका रंग-ढंग बदल गया। वह खूब मोटा-ताजा और सुखी हो गया। अष्टावक्र उसका यह परिवर्तन देखते और राजा की मूर्खता पर हँसते थे।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गये। इस बीच में मुनि अष्टावक्र ने राजा से कई बार अपने प्रश्न का उत्तर माँगा और राजा ने उसे हँसकर टाल दिया।

एक दिन महाराज ने अपने विश्वस्त सेवक से पूछा कि उस आदमी का क्या हाल है जो कि पकड़कर लाया गया था। क्या हमारी समस्त आज्ञाओं का यथावत् पालन हो रहा है ?

अनुचर ने विनीत भाव से कहा कि महाराज की आज्ञाओं का यथावत् पालन हो रहा है और वह आदमी बहुत सुखी और सन्तुष्ट है।

राजा ने आज्ञा दी कि अभी सारे शहर में ढिंढोरा पिटवा दो कि कल सायंकाल सूर्यास्त के समय उस पुरुष को राजमहल के प्रांगण में सूली पर चढ़ा दिया जाएगा। जो कोई इस दृश्य को देखना चाहे, वह उस समय राजमहल में आकर देख सकता है।

राजकर्मचारी राजा की इस विचित्र आज्ञा को सुनकर आश्चर्यचकित हुए और जब मुनि अष्टावक्र ने सुना तो उन्होंने कुटिल हास्य करके कहा कि निस्सन्देह राजा पागल है और भयानक भी। ऐसे राजा के प्रमाद और क्रोध का क्या ठिकाना ! इससे तो दूर रहना ही अच्छा। अब लीजिये उस बिचारे भिक्षुक की जान अकारण ही जायेगी।

परन्तु राजाज्ञा का पालन कर दिया गया। ढिंढोरा पीटने वाला व्यक्ति जब राजमहल की खिड़की के नीचे खड़ा होकर राजाज्ञा सुनाकर ढोल पीटने लगा तो उस भाग्यहीन ने भी अपने भाग्य के उस फैसले को सुन लिया। इसके साथ ही वह बौखला उठा और उसने घबराकर कहा—यह क्या बात है ? किसलिए मुझको सूली पर चढ़ाया जा रहा है ? किसलिये मेरे साथ यह अनर्थ किया जा रहा है ? यह घोर अन्याय है। दुहाई है महाराज की, दुहाई सब लोगों की ! मुझ गरीब को बेकसूर मारा जा रहा है, मेरी रक्षा होनी चाहिए। यह राज्यभोग, सुख और ऐश्वर्य मुझे नहीं चाहिए।

मुझे भीख मागकर खाना मजूर है मुझे छोड दो मुझे चले जाने दो

लेकिन उसकी यह सारी हाय-तौबा व्यथ गयी। उसपर कड़ा पहरा लगा दिया गया। परन्तु सब प्रकार का सुख और ऐश्वर्य का भोग करने मे तो उसको वैसी ही छूट थी। अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों के भरे हुए थाल उसके सामने लाये गये। उसने पागल की तरह उन्हें उठाकर फेंक दिया, स्वच्छ और कोमल गद्दे उसे काटने लगे और उसने आपे से बाहर होकर उन्हें फाड़ डाला। दास और दासियाँ जब उसकी सेवा और आज्ञा के लिए विनीत भाव से हाजिर हुए तो उसने उन सबको भगा दिया। उसकी दशा उस मछली की भाँति थी जो जीवित ही तवे पर तली जा रही थी। वह छटपटा रहा था। चीख और चिल्ला रहा था, रो रहा था और दुहाई दे रहा था, वह चाहता था कि उसे राजा के सामने उपस्थित किया जाय और वह राजा से पूछे कि उसका अपराध क्या है। राजा को उसकी हालत की सूचना दी गयी और कहा गया कि उसने खाना, पीना, सोना सब त्याग रक्खा है और उसकी हालत बहुत ही खराब है। डर है कि कही वह जगले से कूदकर अपनी जान न दे दे।

मुनि अष्टावक्र ने राजा से कहा कि महाराज यह आपका किस प्रकार का खेल है। इस निरपराध व्यक्ति को सूली पर चढ़ा देना यह आपके लिए शोभनीय नही है।

राजा ने मुनि से कहा कि आप जाइये और उसको समझाइये और कहिये कि वह खाना-पीना खाये और आराम से सोवे। सूली तो उसे कल सन्ध्या काल में दी जावेगी। उसे अभी से इतनी बेचैनी क्यों है ?

परन्तु मुनि के वहाँ जाने और समझाने का कोई लाभ नहीं हुआ।

अन्त में राजा ने उसे अपने सामने ले आने की आज्ञा दी और उससे कहा कि जो कुछ कहना चाहता है, वह कहे।

उसने हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर महाराज से कहा महाराज ! मुझ निरपराध को क्यों मारा जा रहा है ? मेरा अपराध क्या है जो मुझे सूली दी जा रही है ?

राजा ने कहा—तुम्हारा कोई अपराध नही, तुम्हें सूली हम अपनी इच्छा से दे रहे हैं।

उसने कहा—महाराज, यह अन्याय है। मैं तमाम राजसभा की दुहाई देता हूँ कि इस अन्याय से मुझे बचाया जाय।

राजा ने कहा—इसमें अन्याय क्या है? जब तुमको भीख माँगते हुए राजमहल में बुलाकर समस्त राजैश्वर्य सौंप दिया गया तब तो तुमने नहीं पूछा था कि मैंने ऐसे कौन से सत्कर्म किये हैं कि मुझे भिखारी से राजा बनाया जाता है। तुम बड़े मजे से मौज-बहार में मग्न हो गये और अपने को राजा ही समझने लगे। तुम्हें स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं हुआ कि किस पुण्य के बदले में तुमको इतना ऐश्वर्य मिला। अब जब तुमको सूली दी जाने वाली है तो तुम इसका कारण पूछते हो। इसका कोई कारण नहीं है। मेरी इच्छा थी सो मैंने तुम्हें भिखारी से राजा बनाया। अब मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हें सूली देकर मार डालूँ। चले जाओ, तुम्हारी कोई बात नहीं सुनी जायगी। कल सूर्यास्त के समय तुम्हें सूली पर चढ़ा दिया जायेगा। परन्तु याद रक्खो कि आज का दिन, बीच की रात और कल का पूरा दिन तुम्हारे लिये है। इससे पहले तो तुम्हें मारा ही नहीं जा सकता। इस समय में खूब आनन्द उपभोग करो, खूब मौज करो, खाओ-पीओ, और दुनिया का सुख लूटो। कल सायंकाल जब तुम मरोगे तब उस समय मर जाना।

वह रोता और चिल्लाता हुआ फिर अपने महल को लौटा दिया गया। अब उसकी हालत बहुत खराब हो गयी। वह जमीन पर औंधे मुँह गिर गया और खाना, पीना, सोना, बैठना, गद्दे और पलंग सब उसने त्याग दिये।

राजा ने फिर मुनि अष्टावक्र से कहा कि महाराज, उस बदनसीब को आप समझाइये कि वह क्यों अभी से इतना कष्ट पा रहा है, तो मुनि ने कहा—महाराज यह आप कैसी बातें करते है? अरे, जिस पुरुष के सिर पर मृत्यु मँडरा रही है और जो कल मरने वाला है वह कैसे खाये-पीये और किसी सुख और ऐश्वर्य का भोग करे? उसको मैं क्या समझा सकता हूँ?

राजा ने कहा—मुनि जी, उसकी मृत्यु तो कल आने वाली है, अभी तो नहीं आ रही?

अष्टावक्र ने जवाब दिया—जिस पुरुष की मृत्यु ध्रुव है, वह कैसे

सुख और ऐश्वर्य का भोग कर सकता है ?

राजा ने हँसकर कहा—बैठ जाओ अष्टावक्र मुनि ! मैं तुमको तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। जिस पुरुष की मृत्यु निश्चित है, वह पुरुष योग्यता से ही भोगों को उस प्रकार भोग सकता है जैसे कि मैं भोगता हूँ जिसने जान लिया है कि मृत्यु ध्रुव है। उस भाग्यहीन को तो इतना भरोसा है कि उसकी मृत्यु में अभी दो दिन की देर है। किन्तु मुझे तो इतना भी पता नहीं कि किस क्षण मेरी मृत्यु आ जायेगी, परन्तु मैं प्रतिक्षण इसके लिए तैयार हूँ। फिर भी तुम देखते हो मैं कितना शान्त हूँ। यह धन-सम्पदा, राजमहल, ठाठ-बाट, ऐश्वर्य, दास-दासी, सेवक-चाकर, उत्तम-से-उत्तम भोजन, उत्तम-से-उत्तम वस्त्र ये सब छोटे-बड़े मेरी सेवा में सलग्न है। मैं इनका अधिपति हूँ, दास नहीं। ये सब मुझसे छूट जाएँगे इसका मुझे तनिक भी मोह नहीं। जैसा कि मोह उस भाग्यहीन को है। क्योंकि उसे ज्योंही पता लगा कि कल जब वह मर जायेगा तो ये सारी वस्तुएँ उससे छूट जायेंगी तो वह अशान्त हो गया। वह इन वस्तुओं का दास है। वह इन वस्तुओं का भूखा है। वह मृत्यु को सहन नहीं कर सकता। इन सबका बोझ उसके सिर पर लदा हुआ है। किन्तु मैं शान्त और निश्चिन्त हूँ। मुनिवर, यही कारण है कि लोग मुझे विदेह कहते हैं। तुमने अपना उदाहरण दिया कि तुम वृक्ष के पत्ते खाकर अपनी तृप्ति करते हो। तुमने अपनी इन्द्रियों को कसकर बाँध रक्खा है क्या यही तुम्हारी तपस्या है ? यही तुम्हारा विदेहत्व है ? तुमने अपनी इन्द्रियों को कसकर क्यों बाँधा ? इसलिए कि तुम इनके स्वामी नहीं हो। इन पर तुम्हारा शासन नहीं है, इन पर तुम्हारा अधिकार नही है। कहीं वे तुमसे विद्रोह न कर जायें, कहीं वे तुम्हे धोखा न दे जायें, कहीं वे तुम्हारी घात न कर जायें, इसीलिए तुमने इन्हें बाँधकर रख छोड़ा है। इन्हे इनके विषयों से वंचित कर दिया है। तुम जीते जी मृतकवत्, हृदय होते हुए हृदयहीन, जीवन होते हुए जीवनहीन हो। तुमने इस जीवन में अपने आपको नष्ट कर दिया। अब आगे के लिए तुम्हारे लिए कौन-सा मार्ग हो सकता है।

यह सुन मुनि अष्टावक्र मौन हो गये।

२

पोलिटिकल सफरर

मैं पोलिटिकल सफरर हूँ, साहब। अब आप सब बातें छोड़कर मेरी बात सुनिये, मेरी कहानी में दिलचस्पी लीजिये। आपकी दादरसी पर मेरा मौरूसी हक है। कोई परवाह नहीं; कि आपने मुझे मिनिस्टर नहीं बनाया। मैं तो बस 'नेकी कर और दरिया में डाल', इस कहावत का कायल हूँ। खैर, अब आप मेरी कहानी सुनिए।

मेरे परदादा मेरे खानदान में सबसे पहले पोलिटिकल सफरर थे, हालाँकि मरने के सौ साल बाद तक उन्हें इस बात का पता न चला। सन् १८५४ में अंग्रेजों ने हमारी मौरूसी काश्त की जमीन और बागान बिना मुआविजा दिए ही फौजी पड़ाव की जमीन के लिये छीन लिये थे। इससे मेरे परदादा बागी हो गये और '५७ के गदर में दो अंग्रेजों को मारकर जयपुर भाग गये। बाद में जब रानी विक्टोरिया ने क्षमादान दिया, तो वापस आये। उन दोनों अंग्रेजों की कब्रें उसी जमीन में अब तक बनी हैं। आप आकर देख सकते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद सन् १९४८ में वह जमीन मुझे वापस मिल गई। फिर भी उन बेचारे दोनों मरहूम अंग्रेजों की हड्डियों को मैंने तकलीफ नहीं दी। कब्रें अभी तक जैसी की तैसी है। उसी भूमि पर मैंने आदर्श विद्यालय खोला है, जिसका प्रधान मैं ही हूँ। यद्यपि मैं इस काबिल नहीं हूँ, पर आपकी कृपा है। थोड़ा-बहुत मैं पढ़-लिख गया हूँ। सर्टिफिकेट और डिग्रियों से मुझे नफरत है, फिर भी मिडिल पास मैंने कर लिया। और देहात के एक स्कूल में अध्यापक बन गया—विद्यादान सब दानों से श्रेष्ठ है, इसी विचार से, वर्ना ग्यारह रुपल्ली की नौकरी की क्या औकात है, आप ही सोच देखिये। परन्तु मैं ज्यादा दिन अध्यापक न रह सका। मैंने वहाँ से त्याग-पत्र दे दिया और खुलकर कांग्रेस का वर्कर बन गया। मातृभूमि पुकार रही थी, साहब। मैं उस पुकार को अनसुनी न कर सका।

सन् ३० में जब हम नमक कानून तोड़ने में जी-जान से लगे थे, तो

पुलिस ने हम पर लाठी चार्ज किया तभी से एक चोट के कारण मेरी बाएँ टाँग लंग करने लगी। कम्बख्त अभी तक लंग करता है। खैरियत यही समझिए कि अवस्थी जी ने अपनी कन्या पहले ही मेरे पल्ले बाँध दी थी। वरना लंगड़े आदमी को आजकल कौन ब्याहता ? साहब, अवस्थी जी की लड़की जरा टेढ़े मिजाज की है। जब-तब मुझे लंगड़ा कहकर बहुत दिन तक व्यग्य करती रही पर जब एक दिन मैंने उसकी भी टाँग तोड़ देने का इरादा पुख्ता कर लिया तो वह डर गई। अब न वह मुझे लंगड़ा ही कहती है, न मेरी लंगड़ी टाँग को ही देखती है।

इसके बाद मैं अपने गाँव की कांग्रेस कमेटी का सेक्रेटरी बन गया। फिर तो, साहब, हमने जत्थे बना-बनाकर, गाँव-गाँव, नगर-नगर रणभेरी ही बजा दी। अवस्थी की बेटी भी कलेजे की औरत निकली। यह मत समझिए कि अपनी बीबी की तारीफ करता हूँ। ऐसी पोच आदत तो शहरी बाबुओं में ही होती है। लेकिन जब सन् ३० में पुलिस अमन सभा मे जाने लगी, तो अवस्थी की बेटी अपनी टोली के साथ राह में लेट गई। पुलिस उन्हें कुचलती हुई चली गई। इस पर क्रुद्ध भीड़ ने पत्थर फेंके, और पुलिस ने गोली चलाई। सात माताओं के लाल शहीद हुए। सैकड़ों घायल हुए। उस वक्त लल्लू की कसम देकर अवस्थी की बेटी ने मुझे वहाँ से टरका दिया। पर मैं भला कौम की भलाई में पीछे रह सकता था ? जब गिरफ्तारियाँ हुईं, तो मैं सबसे आगे था। बस समझ लीजिए, कि पचहत्तर सत्याग्रहियों के जत्थे में मैं ही सबसे आगे था।

इस प्रकार प्रथम बार सपरिश्रम कृष्ण मन्दिर में वास करके जब बाहर आया, तो कांग्रेस के काम में जुट गया। एक बार मैंने दफा १४४ तोड़ी, तो मैजिस्ट्रेट ने कहा—'क्या तेरे तोड़ने से दफा १४४ टूट सकती है ?'

तो मैंने सरे इजलास कहा—'ए मैजिस्ट्रेट, तूने मेहतर से ढोल बजवा-कर मुनादी करवा दी, कि दफा १४४ लग गई है। यदि तेरे लगाने से लग सकती है तो मेरे तोड़ने से क्यों नही टूट सकती ?'

बस, साहब, इसी जवाब पर तीन महीने के लिए फिर ठूँस दिया गया जेल में। पर गांधी-इरविन पैक्ट के कारण डेढ़ मास में ही छूट आया।

फिर तो, साहब, बस निकल-घुस—निकल-घुस। जेल की दीवारें इस कदर अपने से परिचित हो गईं कि क्या कहूँ। मैंने भी शुरू मे तो अधिकारियों का लिहाज माना। लेकिन फिर वह तिकड़म और तराने मैने ईजाद किए कि जेलों के अधिकारी भी दंग रह गये।

कहने लगे—'मान गए, तिवारी, तेरी खोपड़ी को। आज से तुझे छुट्टी। जी चाहे काम कर, जी न चाहे न कर।'

बस, फिर जेल क्या ससुराल ही कहना चाहिए। फर्क इतना ही समझिए, कि वहाँ अपनी सास जी के जैसी तीखी मिजाज की किसी औरत से नहीं निबटना पड़ा।

बस; साहब, कुल जमा १८ बार जेल गया। अब तो मैं कांग्रेस का नेता होने के काबिल था। जेल के सर्टिफिकेट मे मेरी बराबरी कोई नेता नहीं कर सकता था। जेल मे बड़े-बड़े नेता उन दिनो निवास करते थे। मैं जिस जेल में होता उनकी सब जरूरियात तिकड़म से पूरी करा देता। किसी को गोल्ड फ्लेक के कश लगाये बिना पैखाना ही नही उतरता था, किन्ही को चाहिए थी बेड-टी, किसी को कुछ, किसी को कुछ। तिवारी सबकी जरूरत पूरी करता था। बस, समझ लीजिए, कि जेल में तिवारी जी की तूती बोलती थी।

उस वक्त मैंने देखा, कि कांग्रेस में बड़ा भारी गुरुडम चल पड़ा था। पुराने घिसे पैसे ही चल रहे थे। मुझे यह सब पसन्द नही आया। सो मैं खट से फारवर्ड ब्लाक में चला गया। नेताजी के ढंग मुझे पसन्द थे। अपने जिले के अग्रगामी दल का मैं अध्यक्ष बन गया। अब तो कांग्रेस से भी मेरी नोक-झोंक होने लगी। जेल में जो नेता एक-एक सिगरेट के लिए मेरे आगे हाथ पसारते थे, वे ही अब मेरी काट करने लगे।

फिर आया अगस्त, ४२। उसमें आगे मैं, और मेरे पीछे तूफान। लाठियाँ चली, गोलियाँ चली, पुलिस के गुप्त-प्रकट अत्याचार हुए। पर जो शान हमने कायम की, उस पर आँच न आने दी। बड़े-बड़े मार्के की नोक-झोक हुई उन दिनों अफसरों से। सुनिए एक-दो।

मैं जिला जेल में बन्द था। एक दिन आये जिला मैजिस्ट्रेट और लगे रोब गाँठने। उनकी बीवी को एक साहब उड़ा ले गया था, जिसका मुकदमा

हाईकोर्ट में चल रहा था। यह किस्सा मुझे मालूम था। मरी बैरक मे आ ही बोले—'ओ हो, तो तुम ढाई साल से नजरबन्द हो?'

'जी हाँ। आपको शायद याद हो, कि मैंने एक दर्खास्त आपको द थी कि जब तक मैं नजरबन्द हूँ, मेरे परिवार को भत्ता मिलना चाहिए।'

'डैमिल! तुमको भत्ता सरकार क्यों देने लगी?'

'क्यों, साहब, आपके तो कुत्तों तक को एलाउन्स मिलता है। फि मुझ जैसे पोलिटिकल सफरर को क्यों नही?'

'तुम काला बदमाश आदमी है।'

'साहब, मैं एक खानदानी आदमी हूँ। आपकी बीवी एक साहब के साथ भाग गई, लेकिन आपकी कोई तौहीन नही हुई। हमारे यहाँ ऐसा होता, तो नतीजा कुछ और ही होता।'

'ओह, तुम बहुत गुस्ताख हो।'

'अजी जनाब, मैं भत्ते की बात कह रहा हूँ, कि आप यदि तीन साल नजरबन्द रहते, और मैं आपकी जगह होता, तो मैं आपको जरूर भत्ता देता।'

साहब नीची गर्दन करके चुपचाप चलते बने। दूसरे दिन मेरा ट्रान्सफर दूसरी जेल में कर दिया गया।

दूसरी जेल में एक दिन साहब क्लक्टर मुआइना करने जेल में आए। कैदी उनसे खराब राशन की शिकायत कर रहे थे। मैं भी जा पहुँचा।

साहब कलक्टर कह रहे थे—'जैसा राशन तुम्हें मिलता है, वैसा हमे भी नहीं मिलता। चीनी का चोर-बाजार चलता है।'

मैंने कहा—'साहब, आप चोर बाजारी नहीं रोक सकते, तो तनख्वाह किस बात की लेते हैं? दीजिए इस्तीफा।'

लीजिए साहब, इसी बात पर एक महीने की तनहाई की सजा ठोक दी पट्ठे ने। लेकिन साहब, हमें तो वहाँ भी मौज ही रही। दो-तीन बहुत बड़े-बड़े लीडर स्टेट प्रिजनर की हैसियत से उसी तनहाई वार्ड मे बन्द थे। उनसे निकट सम्पर्क स्थापित होने, बातचीत करने और गपशप करने के हमें पूरे चांस मिले। सेवा-टहल हम सबकी करते थे। सबको खुश रखते थे। वहाँ हमने मिलकर ऐक्शन कमेटी बनाई, जिसका चेयरमैन

मै ही बना अब आपसे म अपनी क्या तारीफ करू ? उन तनहाई के साथियों में से कई आज मिनिस्टर है, जिनसे मिलना भी आज दूभर है। लेकिन तब जेल में तो तिवारी ही कन्हैया बने थे, और सब लीडरान बाल-गोपाल थे। मैं यह तो नहीं कहता साहब, कि मैं तानसेन का साला हूँ। पर बचपन में मैंने नौटकी और स्वाँगों में गाने का पूरा अभ्यास किया था। आवाज मेरी जरा लोचदार थी। बस, जब मैं आवाज फेंकता था, तो ये लीडरान वाहवाही के नारे बुलन्द करते थे।

जब मैं जेल से छूटकर आया, तो मैंने एक निहायत आवश्यक प्रस्ताव बनारस के प्रान्तीय कांग्रेस सम्मेलन में रखा। मैंने कहा—'जैसे सरकार ने महायुद्ध की समाप्ति पर युद्ध से लौटे हुए सिपाहियों को प्रमाण-पत्र, पदक और इनाम-इकराम देकर सम्मानित किया था, उसी प्रकार कांग्रेस पोलिटिकल सफररों को सम्मानित करे।'

पर अहमदनगर के शाही किले में टोस्ट-मक्खन उड़ाकर आने वाले नेताओं को, जिनकी एक उगली भी नही दु:खी थी, इन बातो से क्या सरोकार था ? वे नहीं चाहते थे कि राजनीतिक पीड़ितों और स्वतन्त्रता-सग्राम के सैनिकों का संगठन हो, उनमें आत्म-सम्मान कायम हो। और न वे उन्हें राष्ट्र के नवनिर्माण मे ही अपने साथ लेना चाहते थे। इससे उन्हें अपनी भावी कुर्सियों के लिए खतरा प्रतीत होता था। उनमे से बहुतेरो की ढोल की पोल हम जानते थे। भला वे कैसे दाई से पेट छिपाते ? वे नही चाहते थे कि देश के निर्भीक सैनिकों का संगठन हो। उन्होंने मेरे सुझाव को मखौल मे उड़ा दिया।

साहब ! जन-सेवियों की आवाज अब जनता तक कैसे पहुँच सकती थी ? बस, साहब मैंने तो कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया, और अब समाजवादी दल में काम करने लगा। मानता हूँ आचार्य नरेन्द्रदेव के साहस को। उन्होंने राजनीतिक स्तर को नीचे नहीं गिरने दिया। उन्होंने कांग्रेस से त्याग-पत्र देने वाले एम० एल० ए० लोगों को, जो कांग्रेस छोड़ समाजवादी दल में आए, एम० एल० ए०-शिप से भी त्याग-पत्र देने को बाध्य किया।

ज्यों ही कांग्रेसी राज्य आरम्भ हुआ, कांग्रेसी अवसरवादी बन गए। धत्तेरे की ! पार्टियाँ बदल कर एम० एल० ए० और एम० पी० अपनी

सीट छोड़ने को राजी नहीं होते, क्योंकि वह अब उनकी देश-सेवा का प्रतीक न होकर बिजनेस का माध्यम बन गया है। पुराने जमाने में जिस प्रकार कुछ रईस कुछ चमरगट्टुओं को पाल रखते थे, उसी प्रकार ये कांग्रेसी सत्ताधारी भी रखने लगे। जब जिस पार्टी से सत्ता हथियाने का अवसर हाथ लगे, ये पालतू अपने करिश्मे दिखाते हैं। श्रीमान बड़ी कुर्सी पर और ये पालतू छोटी पर। काम का ढंग यह कि 'हाँ' जी, 'हाँ, जी।'

क्यों, साहब, यह क्या मजेदार अचरज की बात नहीं है, कि एक चपरासी भी जब नौकरी पर रखा जाता है, तब उसकी योग्यता और अनुभव का प्रमाण माँगा जाता है, पर मन्त्री होने के लिए किसी प्रमाण-पत्र की जरूरत नहीं होती! बस, तय यह करना होता है, कि एक जाटों का, एक सिखों का, एक हरिजनों का मन्त्री होना ही चाहिए। बस, जहाँ चाहा, वहीं उसे चिपका दिया।

एक मेरे जेल के दोस्त से मुलाकात हुई। जेल में मैंने इन्हें बहुत गोल्ड-फ्लेक सिगरेट पिलाई थी। थे तो कांग्रेसी, पर निकले शरीफ। मिले, तो हँसकर बातचीत की। पहले राज्यपाल बन चुके थे। अब केन्द्र में विज्ञान के मन्त्री थे। कहने लगे—'भई, इस विभाग का वजीर बनकर तो मैं बड़े ही घपले में पड़ गया हूँ। बचपन में नवीं-दसवीं क्लास में थोड़ी साइंस पढ़ी थी। सो वह भी सब भूल-भाल गया हूँ। अब मैं बन गया हूँ भारत का विज्ञान मन्त्री। सारे भारतवर्ष में विज्ञान का बोलबाला है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक देश के विकास की नयी-नयी योजनाएँ बना रहे हैं, जिनमें करोड़ों रुपया खर्च किया जा रहा है। और उस काम का चौधरी मैं बुद्धू बना दिया गया हूँ। विज्ञान की कोई बात मैं खाक नहीं समझता। मेरे आफिस के क्लर्क से लेकर अण्डर-सेक्रेटरी तक सब जानते हैं कि हमारे सिर पर गधा सवार है। वह जो चाहते हैं, करते हैं। जिस तरफ चाहते हैं, उधर मेरी मोम की नाक मोड़ देते हैं। फाइलें हैं कि आफिसों में महीनों इधर से उधर मारी-मारी फिरती हैं, और मुझे पता भी नहीं लगता। वे जब जिस कागज पर चाहते हैं, दस्तखत करा लेते हैं। जब मैं राज्यपाल था तो बड़े मजे में था। न कोई काम, न धन्धा—मजे में चैन की बंसी बजाना। सब काम

सेक्रटरी करते थे पर दोस्तो ने शुभ शर्मिन्दा किया कि क्या यह राज्यपाल बने हो ? यह तो औरतों का रीजन है। तुम जहा बठ हो, यहाँ पहले एक औरत बैठी थी। शर्म आनी चाहिए। मर्द होकर, औरतों का काम करते हो।

'बस भई, मैं उनके भरें में आ गया। और अब इस वजारत के चक्कर मे मेरी जान घपले में पड़ गई है। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता।'

मेरे इन सम्मानित दोस्त ने बात मजे की कही। बस, सब जगह ऐसा ही समझ लीजिए।

अच्छा, एक और मजेदार मामला सुनिए।

एक और वजीर साहब से मैं मिलने गया। जेल में मैंने इनको खूब चाय पिलाई थी। वहाँ ये मुझे 'भाई साहब' कहा करते थे। पर अब तो बात ही कुछ और थी। खाद्य मन्त्री थे। बातचीत चली।

मैंने कहा—'आपको मालूम है कि आप किस कदर बदनाम है ? खूब खाते हैं आप रिश्वत।'

बेहयाई की हँसी हँसकर बोले—'यार, यह तो महकमा ही खाने-पीने का है!'

और सुनिए।

एक थे हमारे लँगोटिया यार। घण्टो बनारस की दाल-मण्डी में एक पनवाड़ी की दुकान पर बैठकर हम लोग पान चबाते और आँखें सेंकते रहते थे। नित्य का शुगल था। इसमें हर्ज भी नहीं। कानून में वह बात जुर्म नहीं मानी जाती, जो केवल विचार में हो, अमल मे न हो। सो यह आँख सेंकना हमारा निर्दोष जुर्म था। खैर, साहब, यार हमारे थे बड़े बाँके। एक बार तो मिनिस्टरी में शरीक होने से इनकार कर गये थे। पर अब तो वे मिनिस्टर, एम० पी, सब-कुछ हैं। ये पुंछल्ले अब उनके बिजनेस बने हुए हैं। कभी उन्होंने रिवाल्वर नहीं बाँधा, पर अब तो रिवाल्वर के बिना निकलते ही नहीं।

बात-ही-बात में बोले, 'यार परेशान हूँ। पहले भत्ते के ४१ रुपये रोज मिलते थे, अब २१ रुपये ही मिलते हैं। मैंने पण्डित जी से शिकायत की, तो उन्होंने टका-सा जवाब दे दिया—'चार सौ तनख्वाह भी तो मिलती है।'

सीट छोड़ने को राजी नहीं होते, क्योंकि वह अब उनकी देश-सेवा का प्रतीक न होकर बिजनेस का माध्यम बन गया है। पुराने जमाने में जिस प्रकार कुछ रईस कुछ चश्रगट्टुओं को पाल रखते थे, उसी प्रकार ये कांग्रेसी सत्ताधारी भी रखने लगे। जब जिस पार्टी से सत्ता हथियाने का अवसर हाथ लगे, ये पालतू अपने करिश्मे दिखाते हैं। श्रीमान बड़ी कुर्सी पर और ये पालतू छोटी पर। काम का ढंग यह कि 'हाँ' जी, 'हाँ, जी।'

क्यों, साहब, यह क्या मजेदार अचरज की बात नहीं है, कि एक चपरासी भी जब नौकरी पर रखा जाता है, तब उसकी योग्यता और अनुभव का प्रमाण माँगा जाता है, पर मन्त्री होने के लिए किसी प्रमाण-पत्र की जरूरत नही होती ! बस, तय यह करना होता है, कि एक जाटों का, एक सिखों का, एक हरिजनों का मन्त्री होना ही चाहिए। वस, जहाँ चाहा, वहीं उसे चिपका दिया।

एक मेरे जेल के दोस्त से मुलाकात हुई। जेल में मैंने इन्हें वहुत गोल्ड-फ्लेक सिगरेट पिलाई थी। थे तो कांग्रेसी, पर निकले शरीफ। मिले, तो हँसकर बातचीत की। पहले राज्यपाल बन चुके थे। अब केन्द्र में विज्ञान के मन्त्री थे। कहने लगे—'भई, इस विभाग का वजीर बनकर तो मैं बड़े ही घपले में पड़ गया हूँ। बचपन में नवी-दसवी क्लास में थोड़ी साइंस पढी थी। सो वह भी सब भूल-भाल गया हूँ। अब मैं बन गया हूँ भारत का विज्ञान मन्त्री। सारे भारतवर्ष में विज्ञान का बोलबाला है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक देश के विकास की नयी-नयी योजनाएँ बना रहे हैं, जिनमें करोड़ों रुपया खर्च किया जा रहा है। और बस काम का चौधरी मैं बुद्धू बना दिया गया हूँ। विज्ञान की कोई बात मैं खाक नहीं समझता। मेरे आफिस के क्लर्क से लेकर अण्डर-सेक्रेटरी तक सब जानते हैं कि हमारे सिर पर गधा सवार है। वह जो चाहते हैं, करते है। जिस तरफ चाहते हैं, उधर मेरी मोम की नाक मोड़ देते हैं। फाइलें है कि आफिसों में महीनों इधर से उधर मारी-मारी फिरती हैं, और मुझे पता भी नही लगता। वे जब जिस कागज पर चाहते हैं, दस्तखत करा लेते हैं। जब मैं राज्यपाल था तो बड़े मजे में था। न कोई काम, न धन्धा—मजे में चैन की बंसी बजाना। सब काम

सेक्रटरी करते थे पर दोस्तों ने शुभ शर्मिन्दा किया कि क्या यह राज्यपाल बने हो? यह तो औरतों का रीजन है। तुम जहा बैठ हो, यहा पहले एक औरत बैठी थी। शर्म आनी चाहिए। मर्द होकर, औरतों का काम करते हो।

'बस भई, मैं उनके भर्रे में आ गया। और अब इस वजारत के चक्कर मे मेरी जान घपले में पड़ गई है। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता।'

मेरे इन सम्मानित दोस्त ने बात मजे की कही। बस, सब जगह ऐसा ही समझ लीजिए।

अच्छा, एक और मजेदार मामला सुनिए।

एक और वजीर साहब से मैं मिलने गया। जेल में मैंने इनको खूब चाय पिलाई थी। वहाँ ये मुझे 'भाई साहब' कहा करते थे। पर अब तो बात ही कुछ और थी। खाद्य मन्त्री थे। बातचीत चली।

मैंने कहा—'आपको मालूम है कि आप किस कदर बदनाम हैं? खूब खाते हैं आप रिश्वत।'

बेहयाई की हँसी हँसकर बोले—'यार, यह तो महकमा ही खाने-पीने का है!'

और सुनिए।

एक थे हमारे लँगोटिया यार। घण्टों बनारस की दाल-मण्डी में एक पनवाड़ी की दुकान पर बैठकर हम लोग पान चबाते और आँखें सेंकते रहते थे। नित्य का शुगल था। इसमें हर्ज भी नहीं। कानून में वह बात जुर्म नहीं मानी जाती, जो केवल विचार में हो, अमल मे न हो। सो यह आँख सेंकना हमारा निर्दोष जुर्म था। खैर, साहब, यार हमारे थे बड़े बाँके। एक बार तो मिनिस्टरी में शरीक होने से इनकार कर गये थे। पर अब तो वे मिनिस्टर, एम० पी, सब-कुछ हैं। ये पुंछल्ले अब उनके बिजनेस बने हुए है। कभी उन्होंने रिवाल्वर नहीं बाँधा, पर अब तो रिवाल्वर के बिना निकलते ही नहीं।

बात-ही-बात में बोले, 'यार परेशान हूँ। पहले भत्ते के ४१ रुपये रोज मिलते थे, अब २१ रुपये ही मिलते हैं। मैंने पण्डित जी से शिकायत की, तो उन्होंने टका-सा जवाब दे दिया—'चार सौ तनख्वाह भी तो मिलती है।'

भला पूछो भाई चार सौ मे होता क्या है ? पोजीशन का सवाल है अ
हम पुराने चरकटे तो है नही, कि फटेहाल फिरें। पोजीशन से रहना पडता
है। सबसे बड़ा एतराज यह है कि रेलवे का फ्री पास महज मेरे लिए है
लल्ली की अम्मा का टिकट खरीदना पड़ता है। कहता हूँ कि थर्डक्लास
में बैठकर चलो, तो ऐसे आँख दिखाती है, कि क्या कहूँ ? कहती है—'शर्म
नही आती ? आप मुफ्त में फर्स्ट में बैठते हैं, और धर्मपत्नी को थर्ड मे
घसीटते हैं।'

मैंने कहा—'भाई साहब, भाभी का डिमांड कुछ गैर-वाजिब भी नही
है। वह भी आखिर मिनिस्टर की बीवी हैं। खैर, अब हमारी भी कुछ
सुनो। तुम तो हमारे लँगोटिया दोस्त हो। कुछ हमारा भी ख्याल करो।
हम भी तो पोलिटिकल सफरर हैं।'

'कहो, क्या चाहते हो ? जो कहो, सो करूँ।'

'बस, यार, दाल-रोटी का इन्तजाम कर दो।'

'लो भई, तुम भी क्या कहोगे ? तुम्हें बस चलाने का परमिट देता
हूँ। रूट भी जी० टी० रोड पर देता हूँ। बस चाँदी रहेगी तुम्हारी।'

उन्होंने मुझे परमिट दिया पोलिटिकल सफरर की हैसियत से। और
मैं चिन्ता का भारी भार सिर पर लादकर घर लौटा।

आप कहेंगे कि 'चिन्ता काहे की ? पचास रुपया रोज की आमदनी
का डौल हो गया, और आप कहते हैं चिन्ता ! लोग तो दो-चार हजार
रुपया रिश्वत देकर भी परमिट चाहते हैं।' मगर, साहब, अपना घर भी
तो देखना चाहिए। बस क्या खिलौना है, जो यों ही आ जायेगी ? पूरे
छब्बीस हजार रुपये चाहिए। सो मैंने मकान रेहन किया, बीवी के जेवर
बेचे, दोस्तों से कर्जा लिया, पास की जमा-पूँजी समेटी, और बस खरीद
ली। लीजिए, साहब लगी बस चलने, और लगी थैली भरने। जरा तबीयत
बरशाश हुई। आशा बँधी, कि अब चैन से गुजरेगी।

मगर कहाँ ! परमिट था तीन साल का, पर अभी दो माह भी न बीते
थे कि नोटिस मिल गया कि इस रूट पर रोडवेज की सरकारी बसें
चलेंगी। प्राइवेट बसें बन्द होंगी। अतः परमिट मंसूख किया गया।

आँखों में सरसों फूल उठी। अब इस छब्बीस हजार की बस का क्या

किया जाय, साहब, और यह कर्ज़ा कैसे उतारा जाय ?

कोई राह न दीखी, तो गया ट्रांसपोर्ट कमिश्नर की सेवा में। कौन कहता है कि जनता के सेवक हैं ? दरवाजे पर चिक और चिक के बाहर लाल पगड़ी वाला बैरा। मिलने को कहा, तो जवाब मिला—'बाहर बैठो। साहब तीन बजे मिलेंगे। अभी फुर्सत नहीं है।'

लाचार बाहर बैठ गया। अभी तो बारह ही बजे थे। कायदे की पाबन्दी करना तो जरूरी था ही। परन्तु अभी मुझे बैठे दस मिनट ही हुए थे कि एक सूटेड-बूटेड साहब मोटर में आए। धड़ल्ले से चिक उठाकर भीतर घुस गये। पाँच-सात मिनट में हँसते हुए आए और अपनी मोटर में बैठकर चल दिए।

मैंने मन में कहा, यह क्या बात हुई भला ? शायद सबके लिए तीन बजे का टाइम नहीं है।

मैं भी उठा। चिक उठाई, और भीतर दाखिल।

साहब और चपरासी, दोनों चकरा गये। दोनों ने डपट कर कहा—'भीतर कैसे आया ?'

'पैरों से चलकर !'

'लेकिन क्यों ?'

'आप से कुछ कहना है, इसलिए।'

'मुलाकात का टाइम तीन बजे है।'

'लेकिन अभी जो साहब मिलकर गये हैं, सो ?'

'तुमको इस बात की पंचायत करने की जरूरत नहीं !'

'खबरदार, तुम कहकर मत बोलिए ! यह मत भूलिए कि आप मेरे नौकर हैं !'

'बदतमीज ! ···कैसी बात करता है ?'

'मैं तो बात ठीक करता हूँ, लेकिन आप बदतमीजी से करते हैं !'

'चपरासी, बाहर निकालो इसे !'

'चपरासी बेचारा नाहक पिट जायगा, साहब। मेरी बात सुन लीजिए, और मैं चला जाऊँगा।'

'तीन बजे मुलाकात होगी।'

'खैर, तीन बजे ही सही। मगर है यह आपका अन्याय।'

मैं बाहर आकर बेंच पर बैठ गया।

थोड़ी ही देर में फिर एक साहब मोटर में आये, और चिक उठाकर घुसने लगे। चपरासी ने उन्हें हँसते हुए सलाम करके चिक उठा दी।

मैं लपककर दरवाजा रोककर खड़ा हो गया। कहा—'अभी नहीं जा सकते आप। तीन बजे आइये।'

'तीन बजे क्यों?' आगन्तुक ने अकचकाकर कहा।

'मुलाकात का यही टाइम है।'

'तुम कौन हो?'

'एक मुलाकाती हूँ। तीन बजने की प्रतीक्षा में बैठा हूँ। आप भी बैठिए।'

'बेवकूफ, रास्ता छोड़!'

'बेवकूफी की बात की साहब, तो दोनों कान पकड़कर उखाड़ लिये जायेंगे!'

ऐसा अप्रत्याशित जवाब सुनकर, साहब बहादुर अवाक् रह गये। वे क्षणभर टुकुर-टुकुर मेरा मुँह ताकते रहे। फिर उन्होंने सिर से पैर तक मेरा शरीर देखा, बचपन से कसरत की थी। दस बरस अखाड़े की मिट्टी छानी थी। देखकर शायद महाशय को पसीना आ गया।

भीतर से साहब निकलकर आए। गर्म होकर बोले—'क्या झगडा है?'

'आपके चपरासी की मदद कर रहा हूँ, साहब। ये महाशय भीतर घुसे जा रहे थे। अभी तीन बजे नहीं हैं।'

'लेकिन तुमको इस पंचायत से क्या? तुम हटो यहाँ से।'

'लेकिन इनसे पहले मुलाकात का मेरा हक है।'

'क्या मैं पुलिस को बुलाऊँ?'

'चलिए, हम आप दोनो ही थाने चले चलें।'

'बड़ा बददिमाग आदमी है!'

साहब ताव-पेच खाते हुए भीतर चले गये। आगन्तुक साहब को भी ले गये। मैं फिर बेंच पर आ बैठा।

दो बजे, तीन बजे, पर बुलाहट नहीं हुई। कहने पर चपरासी कहता—'ठहरो। घण्टी बजेगी, तब जाना होगा। अभी साहब काम में लगे हैं।'

लेकिन, जनाब, घण्टी बजी नहीं, और चार बज गए।

साहब बाहर आए, और जाने लगे।

मैंने राह रोककर कहा—'मैं बारह बजे से बैठा हूँ। आप बिना मुझसे मुलाकात किए जा रहे हैं?'

साहब बिगड़ गये। कहने लगे—'कल मुलाकात होगी।'

मैंने कहा—'नहीं, साहब, मुलाकात अभी होगी।'

बहुत हुज्जत हुई। लेकिन जबर्दस्त का ठेंगा सिर पर।

दूसरे दिन मैं फिर गया। दरखास्त निकाली गई।

साहब ने कहा—'तुम्हारा परमिट रद्द कर दिया गया है। अब इसमें कुछ नहीं हो सकता।'

'लेकिन मेरा परमिट तीन साल का है। मैं तीन साल उस रूट पर गाड़ी चलाऊँगा।'

'उस रूट पर रोडवेज चलेगी।'

'हमारी बस भी चलेगी।'

'जबरदस्ती चलेगी?'

'हमारे पास परमिट है।'

'उसे सरकार ने रद्द कर दिया।'

'तो हमारा बस खरीदने में जो खर्च हुआ है, वह सरकार दे।'

'सरकार ऐसा करने को वाध्य नहीं है। बस, मुलाकात खत्म।'

साहब ने घण्टी बजाई। चपरासी आ हाजिर हुआ।

उसकी आँखें कह रही थीं, कि निकलो यहाँ से।

मैंने कहा—'भाई चढ़ फाँसी, अभी हमारी बात खत्म नहीं हुई।'

लेकिन, साहब, उसने हमें धक्के देकर निकाल बाहर किया।

धन्य जनता का राज्य, और धन्य वे जनता के सेवक! हमने अब सोचा कि चलें अपने दोस्त मिनिस्टर के पास। सो हम अपनी बस लेकर मिनिस्टर की कोठी पर जा धमके। परन्तु वहाँ शायद पहले ही ट्रैफिक

'खैर, तीन बजे ही सही। मगर है यह आपका अन्याय।'

मैं बाहर आकर बेंच पर बैठ गया।

थोड़ी ही देर में फिर एक साहब मोटर में आये, और चिक उठाकर घुसने लगे। चपरासी ने उन्हें हँसते हुए सलाम करके चिक उठा दी।

मै लपककर दरवाजा रोककर खड़ा हो गया। कहा—'अभी नही ज सकते आप। तीन बजे आइये।'

'तीन बजे क्यों?' आगन्तुक ने अकचकाकर कहा।

'मुलाकात का यही टाइम है।'

'तुम कौन हो?'

'एक मुलाकाती हूँ। तीन बजने की प्रतीक्षा में बैठा हूँ। आप भी बैठिए।'

'बेवकूफ, रास्ता छोड़!'

'बेवकूफी की बात की साहब, तो दोनों कान पकड़कर उखाड़ लिये जायेंगे!'

ऐसा अप्रत्याशित जवाब सुनकर, साहब बहादुर अवाक् रह गये। वे क्षणभर टुकुर-टुकुर मेरा मुँह ताकते रहे। फिर उन्होने सिर से पैर तक मेरा शरीर देखा, बचपन से कसरत की थी। दस बरस अखाड़े की मिट्टी छानी थी। देखकर शायद महाशय को पसीना आ गया।

भीतर से साहब निकलकर आए। गर्म होकर बोले—'क्या झगडा है?'

'आपके चपरासी की मदद कर रहा हूँ, साहब। ये महाशय भीतर घुसे जा रहे थे। अभी तीन बजे नहीं हैं।'

'लेकिन तुमको इस पंचायत से क्या? तुम हटो यहाँ से।'

'लेकिन इनसे पहले मुलाकात का मेरा हक है।'

'क्या मैं पुलिस को बुलाऊँ?'

'चलिए, हम आप दोनों ही थाने चले चलें।'

'बड़ा बददिमाग आदमी है!'

साहब ताव-पेच खाते हुए भीतर चले गये। आगन्तुक साहब को भी ले गये। मैं फिर बेंच पर आ बैठा।

दो बजे, तीन बजे, पर बुलाहट नहीं हुई। कहने पर चपरासी कहता—'ठहरो। घण्टी बजेगी, तब जाना होगा। अभी साहब काम में लगे हैं।'

लेकिन, जनाब, घण्टी बजी नहीं, और चार बज गए।

साहब बाहर आए, और जाने लगे।

मैंने राह रोककर कहा—'मैं बारह बजे से बैठा हूँ। आप बिना मुझसे मुलाकात किए जा रहे हैं?'

साहब बिगड़ गये। कहने लगे—'कल मुलाकात होगी।'

मैंने कहा—'नहीं, साहब, मुलाकात अभी होगी।'

बहुत हुज्जत हुई। लेकिन जबर्दस्त का ठेंगा सिर पर।

दूसरे दिन मैं फिर गया। दरखास्त निकाली गई।

साहब ने कहा—'तुम्हारा परमिट रद्द कर दिया गया है। अब इसमें कुछ नहीं हो सकता।'

'लेकिन मेरा परमिट तीन साल का है। मैं तीन साल उस रूट पर गाड़ी चलाऊँगा।'

'उस रूट पर रोडवेज चलेगी।'

'हमारी बस भी चलेगी।'

'जबरदस्ती चलेगी?'

'हमारे पास परमिट है।'

'उसे सरकार ने रद्द कर दिया।'

'तो हमारा बस खरीदने में जो खर्च हुआ है, वह सरकार दे।'

'सरकार ऐसा करने को बाध्य नहीं है। बस, मुलाकात खत्म।'

साहब ने घण्टी बजाई। चपरासी आ हाजिर हुआ।

उसकी आँखें कह रही थीं, कि निकलो यहाँ से।

मैंने कहा—'भाई चढ़ फाँसी, अभी हमारी बात खत्म नहीं हुई।'

लेकिन, साहब, उसने हमें धक्के देकर निकाल बाहर किया।

धन्य जनता का राज्य, और धन्य वे जनता के सेवक! हमने अब सोचा कि चलें अपने दोस्त मिनिस्टर के पास। सो हम अपनी बस लेकर मिनिस्टर की कोठी पर जा धमके। परन्तु वहाँ शायद पहले ही ट्रैफिक

'खैर, तीन बजे ही सही। मगर है यह आपका अन्याय।'

मैं बाहर आकर बेंच पर बैठ गया।

थोड़ी ही देर में फिर एक साहब मोटर में आये, और चिक उठाकर घुसने लगे। चपरासी ने उन्हें हँसते हुए सलाम करके चिक उठा दी।

मैं लपककर दरवाजा रोककर खड़ा हो गया। कहा—'अभी नहीं जा सकते आप। तीन बजे आइये।'

'तीन बजे क्यों?' आगन्तुक ने अकचकाकर कहा।

'मुलाकात का यही टाइम है।'

'तुम कौन हो?'

'एक मुलाकाती हूँ। तीन बजने की प्रतीक्षा में बैठा हूँ। आप भी बैठिए।'

'बेवकूफ, रास्ता छोड़!'

'बेवकूफी की बात की साहब, तो दोनों कान पकड़कर उखाड़ लिये जायेंगे!'

ऐसा अप्रत्याशित जवाब सुनकर, साहब बहादुर अवाक् रह गये। वे क्षणभर टुकुर-टुकुर मेरा मुँह ताकते रहे। फिर उन्होंने सिर से पैर तक मेरा शरीर देखा, बचपन से कसरत की थी। दस बरस अखाड़े की मिट्टी छानी थी। देखकर शायद महाशय को पसीना आ गया।

भीतर से साहब निकलकर आए। गर्म होकर बोले—'क्या झगडा है?'

'आपके चपरासी की मदद कर रहा हूँ, साहब। ये महाशय भीतर घुसे जा रहे थे। अभी तीन बजे नहीं है।'

'लेकिन तुमको इस पंचायत से क्या? तुम हटो यहाँ से।'

'लेकिन इनसे पहले मुलाकात का मेरा हक है।'

'क्या मैं पुलिस को बुलाऊँ?'

'चलिए, हम आप दोनो ही थाने चले चलें।'

'बड़ा बददिमाग आदमी है!'

साहब ताव-पेच खाते हुए भीतर चले गये। आगन्तुक साहब को भी ले गये। मैं फिर बेंच पर आ बैठा।

दो बजे, तीन बजे, पर बुलाहट नहीं हुई। कहने पर चपरासी कहता—'ठहरो। घण्टी बजेगी, तब जाना होगा। अभी साहब काम में लगे हैं।'

लेकिन, जनाब, घण्टी बजी नहीं, और चार बज गए।

साहब बाहर आए, और जाने लगे।

मैंने राह रोककर कहा—'मैं बारह बजे से बैठा हूँ। आप बिना मुझसे मुलाकात किए जा रहे हैं?'

साहब बिगड़ गये। कहने लगे—'कल मुलाकात होगी।'

मैंने कहा—'नहीं, साहब, मुलाकात अभी होगी।'

बहुत हुज्जत हुई। लेकिन जबर्दस्त का ठेंगा सिर पर।

दूसरे दिन मैं फिर गया। दरख्वास्त निकाली गई।

साहब ने कहा—'तुम्हारा परमिट रद्द कर दिया गया है। अब इसमें कुछ नहीं हो सकता।'

'लेकिन मेरा परमिट तीन साल का है। मैं तीन साल उस रूट पर गाड़ी चलाऊँगा।'

'उस रूट पर रोडवेज चलेगी।'

'हमारी बस भी चलेगी।'

'जबरदस्ती चलेगी?'

'हमारे पास परमिट है।'

'उसे सरकार ने रद्द कर दिया।'

'तो हमारा बस खरीदने में जो खर्च हुआ है, वह सरकार दे।'

'सरकार ऐसा करने को बाध्य नहीं है। बस, मुलाकात खत्म।'

साहब ने घण्टी बजाई। चपरासी आ हाजिर हुआ।

उसकी आँखें कह रही थीं, कि निकलो यहाँ से।

मैंने कहा—'भाई चढ़ फाँसी, अभी हमारी बात खत्म नहीं हुई।'

लेकिन, साहब, उसने हमें धक्के देकर निकाल बाहर किया।

धन्य जनता का राज्य, और धन्य वे जनता के सेवक! हमने अब सोचा कि चलें अपने दोस्त मिनिस्टर के पास। सो हम अपनी बस लेकर मिनिस्टर की कोठी पर जा धमके। परन्तु वहाँ शायद पहले ही ट्रैफिक

कमिश्नर साहब बहादुर ने हमारी यशोगाथा भेज दी थी।

मिनिस्टर साहब ने हमसे मुलाकात नहीं की। हमने भी सत्याग्र शुरू कर दिया। बस को साहब के बंगले के अहाते में ला खड़ा किया, औ उसकी छत पर अड्डा जमाया।

एक दिन बीता, दूसरा दिन बीता। तीसरे दिन मिनिस्टर ने बाह बरामदे में आकर दर्शन दिए। बातचीत ठाठ की हुई।

उन्होंने कहा—'यहाँ क्या धरना दिए पड़े हो ?'

'तो और कहाँ जाऊँ ? आपने मुझे इस मुसीबत मे डाला। कर्जा लेक बस खरीदी। अब परमिट रद्द हो गया।'

'तो मैं क्या कर सकता हूँ ? यह तो विभागीय प्रबन्ध की बातें है।'

'आप मेरे लिए कुछ न करेंगे ?'

'इतना तो किया, कि तीन दिन से तूफाने-बदतमीजी देख रहा हूँ, प पुलिस नहीं बुलाई। अब तुम जाओ।'

'मुझे परमिट दिलाइए साहब।'

'यह काम मन्त्री का नहीं है। सम्बन्धित अफसर के पास जाओ।'

'वहाँ तो धक्के मिलते हैं।'

'तो जो समझ में आये, वह करो।'

'मैं तो आपके द्वार पर आमरण अनशन करूँगा।'

मिनिस्टर साहब नाराज होकर चले गए। और थोड़ी देर में पुलिस ने आकर हमें गिरफ्तार कर लिया। और हम फिर अपनी मौरूसी ससुराल, जेल, में जा पहुँचे। पर इस बार जेल सूनी थी। हमारे दोस्त मिनिस्टर-कनिस्टर बने टोस्ट और मक्खन उड़ा रहे थे, मोटरों में दनदना रहे थे। जेल में लुच्चे-लफंगे रह गये थे। सो बड़ी बदमजगी रही।

और, साहब, अब मैं और मेरी बस, दोनों बेकार हैं। गेहूँ की बेहद महँगाई चल रही है। परन्तु ब्याह-शादियों में, जहाँ बुरी तरह खाद्यान्नों का दुरुपयोग होता है, पैदावार बढ़ाने वाले रिकार्ड नहीं बजाए जाते। वहाँ तो, 'मोहि पीहर मे मत छेड़े', 'सिर पर टोपी लाल हाथ में रेशम का रूमाल', 'रूप कहा नहिं जावे नखरे वाली का', 'गोरे-गोरे गाल, गाल पर उलझे-उलझे बाल, ओ तेरा क्या कहना', ऐसे ही रिकार्ड बजाए जाते हैं। कसम

खाकर कह सकता हूँ, कि कहीं नेहरूजी का भाषण हो, और कहीं सुरैया का नृत्य, तो भाषण सुनने चिरैया का पूत भी न जायेगा। यदि राज्य सभा के लिए सुरैया खड़ी हो, तो लाखों में जीत जाय। बड़े-बड़े नेता ताक पर धरे रह जाएँ। यह सब तो स्वतन्त्र भारत की झाँकियाँ हैं! इनपर हाशिया यह, कि अब भारत-सुन्दरी का चुनाव भी होने लगा है। बड़े बड़े लोग इकट्ठे होते हैं। फिर हमारे सम्मानित लोग प्रतियोगियों को इंच-टेप से नापते हैं। उनकी आँखों, गालों, अंग-प्रत्यंगों की नाप-तौल होती है। तब नम्बर मिलते हैं।

इन कामों के लिए हमारी सरकार के पास काफी समय है। पर पैदावार बढ़ाने की ओर ध्यान नहीं है।

देश में हर घण्टे दस हजार बच्चे पैदा होते हैं। पर उनके लिए दूध का इन्तजाम कुछ नहीं। देश की गाय-भैंसों को काट-पीटकर अमरीकी खा गये युद्ध-काल में। कांग्रेस में संगठन के स्थान पर विघटन हो रहा है। सहकारिता के स्थान पर पृथकता पनप रही है। हाल यह है, साझे की हांडी चौराहे पर फूटती है। बात परिवार-नियोजन की होती है, पर हो रहा है घर-द्वार-तोड़न। एक तरफ चकबन्दी हो रही है, दूसरी ओर पाँच बीघा खेत छः जगह बाँटे जा रहे हैं। किसान का बेटा मैट्रिक पास करके खेती के काम का नहीं रहता। इण्टर पास करके दुकानदार का बेटा दुकानदारी करना पसन्द नहीं करता। बी० ए० वाला व्यापार के काम का नहीं रहता। एम० ए० पास करके तो नौकरी के काम का ही नहीं रहता, लीडरी चाहता है।

एक लतीफा सुनिये, साहब। एक सेठ ने अपने लड़के की परीक्षा लेनी चाही, कि आखिर वह क्या बनेगा। उसने उसके कमरे में एक ब्रैंडी की बोतल, एक अभिनेत्री का फोटो, एक सौ रुपये का नोट और एक गीता की पोथी रख दी।

लड़का आया। सब चीजों पर नजर डाली। ब्रैंडी की पूरी बोतल गटकी, सौ रुपये का नोट जेब के हवाले किया, अभिनेत्री का चुम्बन लिया, और गीता बगल में दबाकर चम्पत हुआ। सेठ ने कहा—'यह साला लीडर बनेगा!'

'पर मैं साधु पुरुष हूँ, ससार त्यागी हूँ।

'संसार त्यागने का क्षण अभी नहीं आया, आप देश को मुस्लिम अत्याचारों से मुक्त कीजिये'''अपनी शक्ति का उपयोग वैराग्य की अपेक्षा देश-मुक्ति में लगाइए।'

'क्या यह उचित होगा?'

'देश सेवा सर्वोपरि है। वीरों के लिए भी और साधुजनों के लिए भी। फिर आपने तो सिद्धि प्राप्त की है, आप धर्म की रक्षा कीजिये।'

माधोदास ने क्षण-भर नेत्र मूँदे-मूँदे हुँकार भरी और अपना आसन छोड खड़े हो गये। उन्होंने गुरु गोविन्दसिंह का हाथ पकड़कर कहा—'मैं आपका वन्दा हूँ।'

गुरु ने उन्हें हृदय से लगाकर कहा, 'आप ही मेरे राजनीतिक उत्तराधिकारी होंगे।'

उन्होंने उन्हें खण्डे का पाहुल देकर सिख धर्म में दीक्षित किया और उनका गुरबक्ससिंह नाम रखा। उन्होंने कहा—'मेरे दो पुत्रों को सरहिन्द मे नवाब वजीर खाँ ने जीवित दीवार में चिनवा दिया। पंजाब जाकर अपना कार्य करना चाहिए। उन्होंने अपनी तलवार, पाँच तीर, एक नगाड़ा, एक झण्डा और अपने विश्वस्त २५ अनुयायी उन्हें देकर कहा—'आप सिख जाति का उत्थान कीजिये, वह आपकी अनुयायी रहेगी।'

गोविन्दसिंह का आदेश पंजाब में पहुँच गया। माधोदास के वहाँ पहुँचने पर हजारों सिखों ने एकत्र होकर उनका अभिवादन किया और इस प्रकार सिख लोग आगे बढ़ते गये। सिखों में फिर से आत्म-विश्वास की नीव जमी। माधोदास को उन्होंने 'बन्दा वैरागी' की उपाधि दी।

बन्दा ने पजाब आकर अपना विवाह भी किया और सिखों का नेतृत्व भी परन्तु साधु वेश नहीं छोड़ा। सैन्य संग्रह कर अम्बाला, संवाटा, कैथल, दामला, कंजपुर आदि दखल कर लिये। औरंगजेब दूर दक्षिण में युद्धों में फँसा हुआ था। उसने बन्दा वैरागी के कारनामे सुने और सूबेदारों को उसे नष्ट करने के हुक्म भेजता रहा। परन्तु बन्दा वैरागी साधारण व्यक्ति नहीं था। उसमें असाधारण दैवी शक्ति थी।

सधौरा का शासक उस्मान खाँ बहुत प्रबल और जालिम सूबेदार था।

अब ज्यादा क्या कहूँ, साहब ! पोलिटिकल सफरर हूँ। आपके देश के लिए जेल गया। अब मैं और मेरी बस बेकार है। कोई राय बताइए। किसी मिनिस्टर से साँठ-गाँठ हो, तो सिफारिश कर दीजिये। खासकर आप किसी मिनिस्टर के साले हों, तो जरूर सूचित कीजिएगा। मै सेवा में उपस्थित होऊँगा। आपकी मदद से मेरा काम जरूर बन जायगा। जयहिन्द !

३
वीर बन्दा

पुंच्छ के अन्तर्गत राजौर नामक गाँव में रामदेव नामक एक वीर राजपूत के घर एक बालक ने जन्म लिया, नाम रखा गया लक्ष्मण देव। बचपन में उसे शिकार का व्यसन था, जिससे वह कुशल घुड़सवार और तीरन्दाज बन गया। एक बार उसने बालकपन में ही एक गर्भवती हिरणी को अपने तीर से मार गिराया। जब उसने उसका पेट चीरा तो उसमें से आकुल-व्याकुल तीन बच्चे निकले, जो कुछ क्षण बाद तड़पकर ठण्डे हो गये। उस दयनीय घटना से बालक के मन में करुणा और पश्चात्ताप हुआ, जिससे उसके हृदय में वैराग्य भावना उत्पन्न हुई। वह घर छोड़कर साधु जानकीदास वैरागी का चेला बन गया। नाम बदल लिया, माधोदास। तीर्थस्थानों में घूमता हुआ पंचवटी और फिर नावेर पहुँचा और गोदावरी के तट पर कुटी बनाकर तपस्या में लीन हो गया। धीरे-धीरे उसकी कीर्ति बढ़ी और लोगों में उसकी चमत्कारी शक्ति की कहानियाँ प्रचलित हो गईं।

गुरु गोविन्दसिंह अपने पुत्रों के बलिदान, मुस्लिम अत्याचार और सिक्खों की उस समय की उदासीनता से बहुत क्षुब्ध थे। वे माधोदास की चमत्कारी शक्ति की ख्याति सुनकर उससे मिलने गये और कहा—इस समय आप जैसे चमत्कारी पुरुष की सिक्खों को आवश्यकता है। आप पंजाब चलिये।

'पर मैं साधु पुरुष हूँ, संसार त्यागी हूँ।'

'संसार त्यागने का क्षण अभी नहीं आया, आप देश को मुस्लिम अत्याचारों से मुक्त कीजिये···अपनी शक्ति का उपयोग वैराग्य की अपेक्षा देश-मुक्ति में लगाइए।'

'क्या यह उचित होगा?'

'देश सेवा सर्वोपरि है। वीरों के लिए भी और साधुजनों के लिए भी। फिर आपने तो सिद्धि प्राप्त की है, आप धर्म की रक्षा कीजिये।'

माधोदास ने क्षण-भर नेत्र मूँदे-मूँदे हुँकार भरी और अपना आसन छोड़ खड़े हो गये। उन्होंने गुरु गोविन्दसिंह का हाथ पकड़कर कहा—'मैं आपका बन्दा हूँ।'

गुरु ने उन्हें हृदय से लगाकर कहा, 'आप ही मेरे राजनीतिक उत्तराधिकारी होंगे।'

उन्होंने उन्हें खण्डे का पाहुल देकर सिख धर्म में दीक्षित किया और उनका गुरबख्शसिंह नाम रखा। उन्होंने कहा—'मेरे दो पुत्रों को सरहिन्द में नवाब वजीर खाँ ने जीवित दीवार में चिनवा दिया। पंजाब जाकर अपना कार्य करना चाहिए। उन्होंने अपनी तलवार, पाँच तीर, एक नगाड़ा, एक झण्डा और अपने विश्वस्त २५ अनुयायी उन्हें देकर कहा—'आप सिख जाति का उत्थान कीजिये, वह आपकी अनुयायी रहेगी।'

गोविन्दसिंह का आदेश पंजाब में पहुँच गया। माधोदास के वहाँ पहुँचने पर हजारों सिखों ने एकत्र होकर उनका अभिवादन किया और इस प्रकार सिख लोग आगे बढ़ते गये। सिखों में फिर से आत्म-विश्वास की नींव जमी। माधोदास को उन्होंने 'बन्दा बैरागी' की उपाधि दी।

बन्दा ने पंजाब आकर अपना विवाह भी किया और सिखों का नेतृत्व भी परन्तु साधु वेश नहीं छोडा। सैन्य संग्रह कर अम्बाला, संवाटा, कैथल, दामला, कंजपुर आदि दखल कर लिये। औरंगजेब दूर दक्षिण में युद्धों में फँसा हुआ था। उसने बन्दा बैरागी के कारनामे सुने और सूबेदारों को उसे नष्ट करने के हुक्म भेजता रहा। परन्तु बन्दा बैरागी साधारण व्यक्ति नहीं था। उसमें असाधारण दैवी शक्ति थी।

सधौरा का शासक उस्मान खाँ बहुत प्रबल और जालिम सूबेदार था।

बन्दा ने उससे दो दिन युद्ध करके मार डाला। मुखलिसगढ़ पर अधिकार करके उसका नाम लोहगढ़ रख दिया। सरहिन्द में गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्रों को नवाब वजीर खाँ के आदेश से जीवित दीवार में चिना गया था। अपने पुत्रों की मृत्यु सुनकर गोविन्दसिंह की माताजी ने भी सरहिन्द मे प्राण त्यागे।

सरहिन्द के चमकौर और माछीवाला के जंगलों मे गोविन्दसिंह को घेरकर वजीर खाँ ने घोर कष्ट दिया। इन सब कारणों से सिखों की दृष्टि सरहिन्द की ओर अधिक थी। माझा और मालवा से हजारों सिखों ने आकर बन्दा की सेना में भरती की और सरहिन्द पर आक्रमण करने की प्रार्थना की। सिखों की भारी तैयारी सुनकर वजीर खाँ ने भारी तैयारी की और सरहिन्द से दस मील दूर छप्पड चीरी स्थान पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ। सरहिन्द और रोपड़ के युद्ध में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मुसलमान सूबेदार मारे गये। इस मुहिम में घमासान युद्ध हो रहा था, पर बन्दा युद्ध-भूमि से तीन मील दूर भजन गाने में लीन था। एक सिख दूत ने युद्ध की भयानकता बताकर कहा कि मुस्लिम फौज बहुत अधिक है, सिखो के पैर उखड़ रहे हैं। बन्दा वायु वेग से घोड़े पर सवार होकर युद्ध-क्षेत्र में पहुँचा। उस समय मुसलमानी फौज भाग खड़ी हुई और वजीर खाँ को तलवार से काट डाला गया। मुसलमान बड़ी-बड़ी तोपों, बहुत-सी युद्ध सामग्री और खजाना अपने पीछे छोड़ गये। बन्दा के तीक्ष्ण बाणों ने भागती मुस्लिम सेना के सिर उड़ा दिये। सिख विजयी हुए। सरहिन्द शहर में एक भी मुसलमान जिन्दा नहीं छोडा गया। तीन करोड़ रुपया लूटा गया तथा सुच्चानंद को, जिसने गुरु गोविन्दसिंह के दोनों पुत्रों को पकड़वाया, रस्सियों से बाँधकर सारे शहर में घुमाया गया। उसपर जूतियों की इतनी मार पड़ी कि उसी से उसकी मृत्यु हो गई। मलारकोटला, जिगरांव, शाहकोट, मलवारा, तलवण्डी अधिकृत कर लिये गये। अधिकांश पंजाब को मुस्लिम सत्ता से मुक्त करके बन्दा अमृतसर पहुँचा और दरबार साहेब में बहुत-सा धन चढ़ाया था। उसकी सामर्थ्य और शक्ति से प्रभावित होकर हजारों लोगों ने सिख धर्म ग्रहण कर उससे आशीर्वाद प्राप्त किया। राजा-महाराजा भी उसके शिष्य होने लगे।

दिल्ली से लाहौर तक सारा प्रदेश जीतकर लोहागढ़ को केन्द्र बनाकर बन्दा ने गुरु नानक के नाम पर सिक्का चलाया, उस पर लिखा था 'सिक्का जद बर हर आल तेरा नानक वाहब अस्त। फतह गोविन्दसिंह शाहे शाहाँ फजले सच्चा साहब अस्त ॥'

उसकी मोहर पर लिखा था—

वेगों तेगो फतह और नसरत बेदरंग।
आफत अज नानक गुरु गोविन्दसिंह ॥

अमृतसर में उसने दरबार किया और अपना साधु वेश त्याग राजसी वेश में सुशोभित हुआ। इसी समय औरंगजेब दक्षिण में मर गया। बहादुरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा और भारी सैन्य-संग्रह कर पंजाब पर आक्रमण किया। परन्तु बन्दा बैरागी की दिव्य-शक्ति के आतंक रूप ने पंजाब में सारी सेना के पैर उखाड़ दिए। सहारनपुर के राजा अली मुहम्मद ने इस्लाम के नाम पर मुसलमानों का आह्वान किया, परन्तु घमासान युद्ध होने पर वह मारा गया और सहारनपुर बन्दा के अधिकार में आ गया। बन्दा की चमत्कारी शक्ति से कुछ सिख ईर्ष्या करने लगे। जब फर्रुखशियर दिल्ली के तख्त पर बैठा तब गुरु गोविन्दसिंह की माता सुन्दरी और साहब देवी दिल्ली में रहती थीं। बन्दा को पराजित करना असम्भव समझकर फर्रुख-शियर ने उन्हें कहलवाया कि हमारे पूर्वज आपके पूर्वजों के सेवक रहे हैं, यह बन्दा व्यर्थ ही देश को तबाह कर रहा है।

सुन्दरी ने बन्दा को पत्र लिखा कि तुम्हारी वीरता से हम प्रसन्न हैं। तुम गुरु के सच्चे सेवक हो, लेकिन अब युद्ध बन्द करो क्योंकि बादशाह जागीर देने को तैयार है।

बन्दा ने उत्तर दिया—मैं बैरागी साधु हूँ, गुरु का सिख नहीं हूँ। अपने बल से गुरु-पुत्रों का बदला लेने के लिए मैंने युद्ध विजय किये हैं। मैं जागीर या दया का भिखारी नहीं हूँ।

बन्दा के इस उत्तर से माता अपमानित हुईं, उन्होंने सिख सरदारों को कहला भेजा कि बन्दा का साथ न दें।

सिखों ने बन्दा का साथ छोड़ दिया और बैसाखी मेले में एकत्र होकर बन्दा का अपमान किया। इससे मर्माहित हो बन्दा ने सिखों को छोड़कर

हिन्दुओं का संगठन किया। सिखों को बन्दा से पृथक् होते देख बादशाह ने बन्दा से सैनाकोट के समीप जमकर युद्ध किया परन्तु हारकर लौटा। बन्दा ने आगे बढ़कर लाहौर पर आक्रमण किया परन्तु रुष्ट सिखों ने ही बन्दा के विपरीत युद्ध किया। इससे खिन्न होकर बन्दा गुरदासपुर चला आया। यहाँ बादशाह ने फिर एक भारी फौज भेजी। भयानक युद्ध हुआ और बन्दा लोहे के सींखचों में बाँध लिया गया। उसके साथ उसके स्वामिभक्त सात सौ चालीस सैनिक भी गिरफ्तार हुए। सबको काजी के सामने पेश किया गया।

काजी ने कहा—'मुसलमान हो जाओ तो तुम्हें जाँ बक्सी।'

परन्तु किसी ने भी उत्तर नहीं दिया। घृणा से मुँह फेर खड़े हो गये। काजी ने फिर कहा—तुम्हें कुल्हाड़ों से काटा जायेगा। परन्तु फिर भी वे मुँह फेरकर खड़े रहे।

निदान सबको कत्ल करने की सजा सुनाई गई। प्रतिदिन सबको एकत्र कर उनमें से सौ व्यक्तियों के सिर काटे जाते थे। इस प्रकार सात दिन तक सिर काटे जाते रहे। आठवें दिन बन्दा की बारी आयी। उससे पूछा गया—'तुम्हें कैसी मौत पसन्द है?'

बन्दा ने हँसकर कहा—'जैसी तुम्हें पसन्द हो।'

बन्दा के चारों ओर भालों की कतार गाड़ दी गई जिन पर उसके सात सौ चालीस साथियों के सिर टँगे हुए थे। उनके बीच में तलवार और बन्दा का शिशु पुत्र रखकर कहा गया—इस तलवार से बच्चे के टुकड़े-टुकड़े कर डालो।

बन्दा ने घृणा से मुँह फेर लिया। तब जल्लाद ने उसके सामने बच्चे को रखकर काट डाला और उसके टुकड़े बन्दा के ऊपर फेंक दिये। इसके बाद गर्म की हुई सलाखों को उसके शरीर में घुमाया गया। अँगारे से लाल तपे हुए चीमटों से माँस को नोंचा गया, यहाँ तक कि हड्डियाँ दीखने लगीं।

जल्लादों ने हैरत से कहा—'इतनी तकलीफ पाकर भी खुश हो!'

बन्दा ने उत्तर दिया—'आत्म-जननी सब दुःखों से दूर है।'

जल्लाद ने तेजी से उसकी छाती में कई सलाखों को घुसेड़ दिया। बन्दा प्राणहीन हो गया।

४

आदि मनु

बहुत साल पूर्व जब तक कि आर्य जाति का और वेदों का निर्माण भी नहीं हुआ था, और समूचे एशिया और अफ्रीका महा भू-खण्ड में भारत वंश का अखण्ड एकछत्र शासन था—तब की बात हम कह रहे हैं। पृथ्वी पर इस समय चाक्षुष मन्वन्तर चल रहा था, यह सात युग का चतुर्थ चरण था।

स्वायंभुव मनु आदि मनु थे। उनकी पत्नी का नाम 'शतरूपा' था। उनके दो पुत्र थे—एक प्रियव्रत दूसरे उत्तानपाद। ज्येष्ठ होने के कारण प्रियव्रत ही पृथ्वी के स्वामी हुए। उन्होंने पृथ्वी के भाग किये—और देशों के नाम रखे। एशिया के चार खण्ड—सुग्द—मर्व—हरिपुर और निशानाम से किए गये—पीछे कुछ काल बाद—हरपू (हड़प्पा) हरितपुर, हिरातपुर, हिरात और बक्ति (काबुल) को मिलाकर दो साम्राज्य संगठित किये, जो पूर्वी साम्राज्य और पश्चिमी साम्राज्य के नाम से विख्यात हुए। कालान्तर में इन दोनों साम्राज्यों को तेरह राज्यों में विभक्त कर उन पर 'शत्रप' का शासन रहा। उस काल में मातृगोत्र प्रचलित था—अतः शरुपा के पुत्र होने के नाते उन्हें यह 'शत्रप' नाम दिया गया था।

प्रियव्रत ने जम्बूद्वीप अपने ज्येष्ठ पुत्र अग्नीन्ध्रु को दिया था। अग्नीन्ध्रु ने उसके नौ भाग करके अपनी नौ पुत्रों को बाँट दिये। मध्य भाग अपने ज्येष्ठ पुत्र नाभि को दिया—नाभि के पुत्र तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके पुत्र महाज्ञानी भरत हुए। जिनके नाम पर भरत वंश पृथ्वी पर फैला—और भारतवर्ष नाम भी इस देश का पड़ा। प्रियव्रत के वंश में ३५ प्रजा-पति और स्वायंभुव सहित पाँच मनु हुए। इसके बाद उत्तानपाद के वंश मे शासनाधिकार गया। जिसमें चाक्षुष मनु प्रतापी हुए। चाक्षुष मनु के अत्यराति, जानन्तपति, अभिमन्यु, उर, पुर तपोरत और सुद्युम्न नाम के ७ पुत्र हुए। उर के पुत्र अंगिरा महा तेजवान हुए। मनु के पाँच पुत्रों तथा अंगिरा ने अमित पराक्रम प्रकट कर ईरान, मिस्र, पैलस्टाइन, बेबिलोनिया और अफ्रीका को विजय करके वहाँ अपने महाराज्य प्रतिष्ठित किये।

महाराज आनन्तपति अत्यराति प्राचीन बारह चक्रवर्तियों में सर्वोपरि माने जाते हैं। इन्हें आसमुद्रक्षितीश कहा गया है। उनके साम्राज्य की सीमा पश्चिम में आर्दपुर एवं यूनान सागर तक थी। पशिया का जो पूर्वी प्रान्त भारत को छूता है और सत्यगिरी कहाता है उस समय उसका नाम सत्यलोक था। उसी के सामने सुमेरु के निकट इसी काल में बैकुण्ठ धाम की स्थापना हुई थी। आजकल ईरानियन पैराडाइज कहाता है और देमावन्द एलवुर्ज पर है। यही बैकुण्ठ धाम महाराज अत्यराति की राजधानी थी। अत्यराति के वंशज आज तक भी अरांटे कहाते हैं और आरबीनिया प्रान्त में रहते हैं। ईरान का अर्रार पर्वत भी महाराज अत्यराति के नाम पर है। अत्यराति के भाई अभिमन्यु—मन्यु नाम से भी प्रसिद्ध हुए। इन्हीं ने अर्जनम् में दुर्ग निर्माण किया था और ट्राय के प्रसिद्ध युद्ध में अपनी राजधानी सुषा से आकर सम्मिलित हुए थे। इन्हीं के वीरत्व की प्रशंसा 'आडेसी' काव्य में गाई गई है। इनकी राजधानी सुषा आज भी संसार का प्राचीनतम नगर माना जाता है, जो सुमेरु प्रान्त में अम्बुद (पशिया की खाड़ी) पर अब तक है। कुछ वर्ष पूर्व उसकी खुदाई हुई थी और आर्मिलोजी को वहाँ ८ हजार वर्ष पूर्व की प्राचीन वस्तुएँ मिली थीं। अजनम में अभिमन्यु दुर्ग के निर्माता और ट्राय युद्ध के विजेता अभिमन्यु की पहली यही प्राचीन पुरी सुषा थी। फारस और अरब के मध्यवर्ती प्रदेश पर लोक-उरजन (चाल्लिया) में उर की राजधानी थी। उर का राजवंश एलाम की प्राचीन परम्परा में बहुत दिन तक चलता रहा। उर ने अफ्रीका—सीरियाओं के बेबिलोनिया को भी विजय किया और चिरकाल तक उसी के वंशज बेबिलोनिया पर राज्य करते रहे। उन्होंने अबराहिम को उर देश से निकाला था। पशिया में उर के अनेक चिह्न हैं। उर बेबिलोनिया का एक प्रदेश ही है। उरल पर्वत है। उर राट वश है। उरमियाँ प्रदेश में वह नगर है, जहाँ जोरास्टर का जन्म हुआ था। उर के भाई पुर थे।

पुर के नाम पर ही पार्शिया या पारस—फारस देश का नाम पड़ा। उर और पुर नाम के नगर फारस में हैं। पुर उनकी राजधानी थी। एलवुर्ज के निकटवर्ती क्षेत्र में ही बसा हुआ पुरसिया नगर इन्हीं के नाम पर है। तपोरत

की राजधानी तबूरिया प्रान्त में थी जिसे आजकल मजादिरन कहते हैं। उर के पुत्र अंगिरा—अफ्रीका कुश द्वीप के महान विजेता और 'अंगरा पिक्यूना' के निर्माता थे। इन छहों विजेताओं के वर्णन ईरानी प्राचीन इतिहास में भरे पड़े हैं और इन्हीं नामों से पशिया में उनकी पूजा होती है। अवस्ता के 'अहिरमन' भी यहीं हैं। इनके सर्वग्रासी आक्रमण भीषण थे। ईरान में लोग इन्हें अमर उपास्य देव अहितदेव—अहिरमन या शैतान कहने लगे थे। वास्तव में ये वहाँ महाविक्रम अयुद्ध्य भरतवंशी विजेता थे। मिल्टन ने अपने स्वर्गनाश (पैराडाइस लास्ट) की कथा में जिस शैतान का उल्लेख किया है तथा बाइबल में वर्णित शैतान और अवस्ता का अहिरमन, वे वास्तव में छः भरतवंशी थे। इन्होंने ईरान—एशिया माइनर, ग्रीस व सीरिया विजय किये और अन्त में इन देशों के उपास्य देव बन गये थे।

जिस समय महाराज अभिमन्यु सुषा में शासन कर रहे थे उस समय वहाँ प्रलय हुई। यह प्रलय संसार की एक महान घटना थी। संसार की सब प्राचीन पुस्तकों में इसकी चर्चा है। मिस्री, यहूदी, बाबल, सुमेर, दक्षिण अमेरिका की प्राचीन जातियाँ और भारतीय समान-भाव से इस अप्रत्याशित घटना को जानते हैं। निस्संदेह इस युग में से सब जिनियों के पूर्वज पुरखे एक ही स्थान पर रहते थे और उन्होंने यह महा विपत्ति देखी थी। भारतीय साहित्य में शतपथ ब्राह्मण, अथर्व, मत्स्य पुराण, महाभारत और वाल्मीकि में उसका वर्णन है। बेबिलोनिया की गिलगमेश कथा में, बेबिलोनियान बैरीसस कृत वर्णन में, मिस्र के प्राचीन साहित्य में जिसमें तेम मनुष्यों के पिता का सम्बन्ध है तथा ग्रीस के क्लासीकल वर्णन में, बाइबल के नूह के वर्णन में प्रलय की कथा वर्णित है। बाइबल का कहना है कि उस समय चालीस दिन और रात वर्षा हुई थी। यह घटना सम्भवतः ईसा से कोई पैंतीस सौ वर्ष पूर्व हुई थी। प्रलय का प्रभाव वर्तमान में सोपोटामिया और एशिया उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में हुआ था। पशिया का यह भाग दक्षिण में फारस की खाड़ी और उत्तर में काश्यप सागर से दबा हुआ है। पशिया के उत्तर-पश्चिम कोण में जो आर्मीनिया प्रदेश है उन दिनों उस समूचे प्रदेश पर महाराज अत्यराति जानन्तपति के भाई अभिमन्यु या मैनन का आधिपत्य था। इसी प्रदेश के बर्फीले पर्वतों से फरात नदी निकलकर मेसापोटानिया

में आई है। यह नदी मेसापोटानिया की खास नदी है। यह बहुत बड़ी नदी है तथा इसका बहुत बड़ा विस्तार है। यहाँ वर्षा के साथ ही दैव संयोग से वहाँ ज्वालामुखी का विस्फोट हो गया। ज्वालामुखी के विस्फोट से बर्फ की चट्टान टूट गयी और फरात तथा दजला नदी का उद्गम, काश्यप सागर और फारस की खाड़ी इन सबने मिलकर उस समूचे प्रदेश को जो फारस की खाड़ी और काश्यप सागर के बीच में था, जलमग्न कर दिया। वृक्ष, वनस्पति, मनुष्य, पशु-पक्षी सभी नष्ट हो गये। पैलस्टाइन का वह समूचा भूभाग जो फारस की खाड़ी के पश्चिम-दक्षिण में है और समुद्र तल से केवल छः हजार फीट ऊँचा है, सर्वथा जलमग्न हो गया और वह स्थान मृत्युलोक बन गया जो आगे दोजख या नर्क के नाम से विख्यात हुआ। केवल वह भूभाग इस प्रदेश का जलमग्न होने से बच गया, जो समुद्र तल से अठारह हजार फीट ऊँचा था। यह प्रलय चालीस दिन और चालीस रात वैसी ही रही।

५
रोशन आरा

किले में नौ की नौबत बजी। शाहजादी रोशनआरा अलसायी-सी अपने कमरे में आकर मसनद पर लुढ़क गई। वह कुछ थकी हुई थी। कुछ चिंतित भी थी। परन्तु वासना की तीखी चमक उसकी आँखो में थी—और किसी उत्तेजना से उसका चेहरा असाधारण रूप से लाल हो रहा था। वह ढाके की महीन मलमल की तीहरी पोशाक पहने थी। फिर भी उसमें उसका मनोरम शरीर छन रहा था। उसकी चोटी निहायत नफासत से गुँथी थी और सुगन्धित तेलों से तर थी, माथे पर लापरवाही से हल्के फिरोजी रंग की एक जरवफ्त की ओढ़नी पड़ी थी, उसकी गर्दन में पाँच बड़े-बड़े लालों की एक माला पड़ी थी। जिसके सिरों पर मोतियों के गुच्छे लगे थे। यह माला उसके पेट तक लटक रही थी। माथे पर मोतियों की बिंदी जो उसकी चिकनी काली केशराशि पर खूब फब रही थी। उसके

पास ही एक जड़ाऊ तौक था जिसके बीच म अत्य त तेजस्वी एक लाल जडा था। आसपास मोती थे। कानों में जड़ाऊ फूल थे। छाती पर एक हार झूल रहा था, जिसमें आश्चर्यजनक बड़े-बड़े हीरे जड़े थे। कलाई पर नीलम की पहुँचियाँ थीं, जिनमें जगह-जगह मोतियों के गुच्छे लगे थे। उसकी प्रत्येक अंगुली में अँगूठियाँ थीं। दाहिने हाथ के अँगूठे पर एक आरसी थी जिसके आइने के इर्द-गिर्द मोती जड़े थे। कमर के चारों ओर सोने का दो अँगुल चौड़ा पटका था, जो बड़ी कारीगरी से जवाहरात से जडा हुआ था। इजारबन्द के दोनों सिरों पर दो अँगुल लम्बी पाँच-पाँच मोतियों की लड़ें लटक रही थीं। पैरों में भी पायजेब की जगह बड़े-बड़े मोतियों की लड़ें पड़ी थीं। पोशाक इत्र में सराबोर थी।

कुछ देर शाहजादी चुपचाप मसनद पर उठंगी पड़ी रही। फिर उसने दस्तक दी। एक बाँदी ने आकर शाहजादी का इशारा पा उसका कबा उतार दिया और पैरों पर एक कीमती शाल डाल दिया, इसके बाद उसने शराब की सुराही और जाम सामने चौकी पर रख दिया। यह दुजानू होकर बेगम के पास बैठ गई और जाम भर-भर कर देने लगी।

शाहजादी चुपचाप सुवासित मदिरा पीने लगी। दो-चार प्याले पीने पर उसने बाँदी को रोशनी तेज करने और गानेवालियों को बुलाने की आज्ञा दी। क्षणभर में कमरे में सुरीले गायन की सुरलहरी भर गई। गानेवालियाँ यद्यपि अपनी कलाएँ दिखाकर शाहजादी को खुश करना चाह रही थी परन्तु शाहजादी का दिल आज खुश न था। शराब और संगीत दोनों ही उसे प्रसन्न न कर सके। उसने ऊबकर गानेवालियों को चले जाने का हाथ से संकेत किया। उस समय शराब की उत्तेजना से उसका चेहरा लाल हो रहा था। उसकी खास बाँदी फहमिया बानू चुपचाप हाथ बाँधे हुक्म के इन्तजार में खड़ी थी।

बेगम ने पूछा—

'हजरत सलामत इस वक्त कहाँ है?'

'हुजूर, वे अभी गुसलखाने के दरबार में हैं।'

'क्या बकाएनवीस रोजनामचा सुना गया?'

'अभी नही हुजूर, खुदावन्द हुजूर इस वक्त बड़ी बेगम से कुछ जरूरी

मश्वरे में मशगूल हैं।'

'तू जा और देख कि वकाएनवीस क्या नयी खबर सुनाता है।'

'जो हुक्म।'

'ठहर, खुफियानवीस को दारोगा के यहाँ भेज दे।'

'जो हुक्म।' बाँदी अदब से सिर झुकाकर चली गई।

उसके चले जाने पर शाहजादी ने अपने हाथ से दो प्याला शराब ढाली, उसमें गुलाब दिया और चुपचाप गटागट पी गई। इसके बाद उसने प्याला कालीन पर एक तरफ फेंक दिया और छत में जलती सुगन्धित काफूरी मोमबत्तियों की तरफ एकटक देखती रही। कुछ ठहर कर उसने दस्तक दी। पहरेदार बाँदी ने हाजिर होकर कोर्निश की।

शाहजादी ने कहा—'क्या तू जानती है कि नर्गिस इस वक्त कहाँ है?'

'वह हुजूर के हुक्म के इन्तजार में बैठी है।'

'उसे भेज दे, और देख, चाहे जैसा भी जरूरी काम हो, कोई आने न पावे।'

'जो हुक्म।' बाँदी झुककर चली गई।

नर्गिस ने आकर शाहजादी को सलाम किया।

शाहजादी ने अलसायी नजर से देखकर कहा—'काम हुआ?'

'जी हाँ, सरकार।'

'भवानी ज्योतिषी मिला?'

'जी हाँ।'

'वह बात कही?'

'हुजूर, सब ठीक हो गया है।'

'उसने दारा को तेरे कहे मुताबिक बरगलाया?'

'जी हाँ, सरकार।'

शाहजादी फिर मसनद पर लुढ़क गई। वह देर तक कुछ सोचती रही। इसके बाद उसने एक प्याला चढ़ाकर कहा—

'दूसरा काम?'

'वह भी हो गया, हुजूर।'

'इत्मीनान से?'

'जी हां, खुदावन्द'

'कौन है वह ?'

'हुजूर, एक मसखरा अफीमची है, मैं उसे मुद्दत से जानती हूं।'

'काम बहुत नाजुक है।'

'सरकार, आप बेफिक्र रहें।'

'एक प्याला सीराजी का दे।'

बाँदी ने एक प्याला भरकर पेश किया। बेगम ने कहा—

'बैठ, तीसरा काम ?'

'हुजूर, हो गया।'

'कहाँ है ?'

'हुजूर के खास कमरे में।'

बेगम ने गले से मोतियों की माला उतारकर उस पर फेंक, फिर मुस्कराकर शराब देने का संकेत किया। बाँदी प्याले पर प्याला देने लगी।

फहमिया बानू ने आकर आदाब बजाया। बेगम ने नर्गिस से जाने का इशारा किया। उसके जाने पर उसकी ओर झूमते नेत्र घुमाकर कहा—

'बादशाह सलामत क्या आरामगाह में तशरीफ ले गए ?'

'जी नहीं, हुजूर।'

'बकाएनवीस का रोजनमचा सुन लिया गया ?'

'जी हाँ, खुदावन्द।'

'कोई खास बात ?'

'शाहजादा दारा ने उन चालीसों कैदियों के हाथ कटवा डाले हैं जो शुजा की लड़ाई में गिरफ्तार हुए थे।'

बेगम ने होंठ काटकर हुंकारा भरा। फिर पूछा—'और कुछ ?'

'हुजूर, बादशाह सलामत और वालिएअहद में बहुत हुज्जत हो रही है।'

'किस अम्र में !'

'बादशाह सलामत फरमा रहे हैं कि फौरन सुलेमान शिकोह को वापस बुला लो, मगर वालिएअहद की राय है कि उसे शाहजादा शुजा का बंगाल

तक पीछा करने दिया जाय।'

बेगम मुस्करा दी—'बहुत खूब फहमिया बानू, तुम हजरत सलामत के ख्वाबगाह जाने तक वहीं हाजिर रहो।'

'जो हुक्म।' कहकर फहमिया बानू चली गई। बेगम ने दस्तक दी। नर्गिस हाजिर हुई।

'भवानी ज्योतिषी ने दारा से क्या कहा था ?'

'हुजूर, उसने उन्हें समझा दिया है कि सुलेमान शिकोह इस मुहिम में पूरी फतह करके लौटेंगे। उनके सितारे बुलन्द हैं। लगे हाथ उन्हें बंगाल, बिहार और उड़ीसा भी दखल कर लेना चाहिए।'

'बहुत खूब नर्गिस।'

'हुजूर···।'

'तूने कहा—वह खूबसूरत है।'

'हुजूर अमीरजादा है।'

'शीराजी दे।'

बाँदी ने प्याला भर दिया। बेगम ने प्याला खाली कर कालीन पर लुढ़का दिया। फिर अँगड़ाई लेकर कहा—'चल कमरे खास का रास्ता दिखा।'

बाँदी ने शाहजादी को सहारा देकर उठाया और वह लड़खड़ाती हुई कमरे खास की ओर चली।

६

दलित कुसुम

आइए हम अब जरा शाइस्तखाँ के मकान की एक झाँकी देखें। शाइस्तखाँ की विशाल हवेली फैज बाजार में थी। वह शाहजहाँ बादशाह का साला था और एक चतुर और उच्चाशय अमीर था। उसकी स्त्री एक ईरानी अमीर की इकलौती बेटी थी। वह बड़ी सती सच्चरित्र और पवित्रात्मा थी। वह जैसी अद्वितीय सुन्दरी थी वैसी ही अस्मत वाली भी

थी वह नयी उम्र की बड़ा नाजुक मिजाज भावुक युवती थी।

शाहजहाँ की उस पर एक अमीर के यहाँ दावत में दृष्टि पड़ी। रिश्तेदार होने के कारण वह बादशाह के सामने आने को विवश की गयी थी। बूढ़े कामुक बादशाह ने अपनी बड़ी बेटी जहाँआरा के द्वारा उसे एक जियाफत देने रंगमहल में बुलवा लिया। बेगम जफरअली उसे फुसलाकर बादशाह के उस रहस्यपूर्ण कमरे में ले गई, जिसमें अनगिनत सतियों का सतीत्व लूटा जा चुका था। भोली-भाली लड़की जैसे दाव में फँस गयी और जब वहाँ उसने अपने को बादशाह के चंगुल में फँसकर असहायावस्था मे पाया तो छूटने को बहुत हाथ-पैर मारे, बड़ी छटपटाई पर वह अपने को बचा न सकी। बादशाह ने उसका सतीत्व भंग कर दिया। फिर वह बहुत-सी भेंट और नजराने देकर वापस भेज दी गई।

परन्तु मुगल राज्य में जिस प्रकार की अन्य अमीरों की औरतें होती थीं—वह वैसी न थी। उसने घर आकर सब हाल अपने पति से कह दिया और खाना-पीना तथा वस्त्र बदलना भी छोड़ दिया। इस घटना को पन्द्रह दिन बीत चुके थे। वह कुचली हुई फूलमाला की तरह बिस्तर पर पड़ी रहती थी। तमाम घर भर में उदासी छायी हुई थी। प्रातःकाल का समय था, उसके नेत्रों में मरने का दृढ़ संकल्प था। उसके पलंग के पास उसका प्यारा पति बैठा था। दोनों खूब रो चुके थे। अब जिस प्रकार एक कठोर संकल्प करने का भाव उस सती के मुख पर था, उसी प्रकार बदला लेने का उस वीर युवक अमीर के मुख पर भी था।

उसने कोमलता से पत्नी का हाथ अपने हाथ में थामकर कम्पित स्वर से कहा—'प्यारी, अपना यह खौफनाक इरादा छोड़ दो, जीती रहो—मेरी नजर में तुम पाक-साफ हो। मैं उस जालिम बादशाह से ऐसा बदला लूँगा कि दुनिया देखेगी।' बात पूरी करते-करते उसकी आँखों से आग निकलने लगी और बदन काँपने लगा।

बेगम ने पति का हाथ दोनों हाथों में लेकर अपनी छाती पर रखा। वह कुछ देर चुपचाप आँखें बन्द किये पड़ी रही। फिर उसने क्षीण स्वर मे कहा—'मेरे प्यारे शौहर, इतने ही दिनों में मैंने तुमसे वह प्यार पाया कि जिन्दगी का सब लुत्फ उठा लिया। अब मेरी जिन्दगी में किरकिरी मिल

गई। मैं नापाक कर दी गई, अब मैं तुम्हारे लायक न रही प्यारे, मेरे जिस जिस्म को उस नापाक कुत्ते ने छुआ है, मैं उसमें न रहूँगी न रहूँगी। और ताकयामत तक तुम्हारा इन्तजार करूँगी।'

'मगर प्यारी बेगम, मैं तुम्हारे बिना कैसे दुनिया में जिन्दा रहूँगा? मेरी जिन्दगी तुम हो, मेरी आँखों में सिर्फ तुम्हारी रोशनी है। तुम्हारे बिना दुनिया में मेरा कोई नही है।'

युवती की आँखों से आँसू ढरकने लगे। उसने पति के हाथों को प्यार से चूमकर कहा—'रहना पड़ेगा मेरे मालिक, मैं जिन्दा नहीं रह सकती, मैं आबोदाना नही ले सकती, आह! उस जालिम ने न मालूम मुझ जैसी कितनी बेबस कमजोर औरतों को बर्बाद किया होगा। मुमकिन है वे सब अस्मतफरोश न हों, लेकिन इस मुगल सल्तनत में एक भी ऐसा बहादुर आदमी नहीं जो हम बेबसों को उस जालिम भेड़िये से बचाये। मेरे प्यारे मालिक, तुम वादा करो कि बदला लोगे।'

'मैं वादा करता हूँ प्यारी, कि जब तक मैं तुम्हारी बेहुर्मती का बदला न ले लूँगा, चैन से न बैठूँगा। परवाह नही, चाहे जान भी चली जाये।'

'तो प्यारे, फिर मैं बड़ी खुशी से मर सकती हूँ, इसका मुझे बड़ा फख्र है।'

'मगर मेरी प्यारी बेगम—तुम अपने इस इरादे को बदल दो, खुदा के लिए मुझ पर रहम करो, मैं तुम्हें उसी तरह आँखो का पुतला बनाकर रखूँगा।'

'नहीं प्यारे, मेरी गैरत यह इजाजत नही देती, इस तरह जलील होकर मैं किस तरह जिन्दा रह सकती हूँ? नहीं, नहीं, किसी भी तरह नही। मालिक, एक मर्द की तरह तुम मुझे विदा करना—हम फिर मिलेंगे—और वैसे ही पाक-साफ जैसे उस दिन थे जबकि हम पहली बार मिले थे।' इतना कहते-कहते उस बेगम की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी। उसकी साँस जोर-जोर से चलने लगी और उसका सारा शरीर थरथर काँपने लगा।

कुछ सुस्ताकर उसने कहा—'प्यारे, तुम्हें वह दिन याद है, जब मैंने अपने मेंहदी से रंगे हाथ तुम्हारे सुपुर्द किये थे, तुम्हें अपना बनाया था,

और तुमने मुझे [illegible] निहाल किया था। हम लोग कितना हँसते थे, दुनिया कितनी मीठी लगती थी, दिन कैसे सुहावने थे, सूरज कैसा चमकता था, कोयल कैसी कूकती थी, रात कैसे हँसा करती थी, चाँद दूध बखेरकर दुनिया को कैसा बना देता था। हम लोग बातें करते थे, हँसते थे, रूठते थे, प्यार करते थे, लड़ते थे, फिर एक हो जाते थे, आह! इतनी जल्दी वे सब दिन खत्म हो गए।'

शाइस्तखाँ ने उन्मत्त की तरह अपनी पत्नी को छाती से लगाकर कहा—'नहीं, नहीं, प्यारी, यह दुनिया वैसी ही है। देखो बाहर सूरज है, चाँद है, फूल हैं, उनमें खुशबू है, कोयल है, प्यारी यह दुनिया वैसी ही मीठी है। आओ एक बार हम फिर उसी तरह हँसें, लड़ें, रूठें और फिर प्यार करें।'

उसने विह्वल होकर मुमूर्षु पत्नी के अनगिनत चुम्बन ले डाले। फिर वह उसकी छाती पर सिर रखकर फफक-फफककर रोने लगा।

बेगम भी रो रही थी। कुछ देर रो लेने पर जब जी हल्का हो गया तो शाइस्तखाँ ने कहा—'तो प्यारी कह दो कि हम लोग जियेंगे।'

'नहीं प्यारे, हमारी जिन्दगी में कीड़ा लग गया है। अब हम उस तरह नहीं जी सकते। औरत की जिन्दगी उसकी अस्मत है, वह गई तो जिन्दगी भी गई। मेरे प्यारे शौहर, मुझे जाना होगा—मुझे मरना होगा। मगर ओफ, यह कभी न सोचा था कि इतनी जल्द। ओफ! ओफ!'

७

प्रेम वार्त्ता

देवगिरि के अंचल में एक क्षीण कलेवरा नदी बहती थी। ग्रीष्म-काल में वह और क्षीण कलेवरा हो जाती थी, किन्तु वर्षा में वह उन्मादित हो उठती थी। अभी वर्षा का पहला चरण था। केवल पहली ही बरसात हुई थी, उसकी सौंधी सुगन्ध वातावरण में भर गई। नदी किनारे एक बाग था, बाग का सम्बन्ध राजप्रासाद से था। बाग से राजप्रासाद के पृष्ठ भाग

तक एक सँकरा मार्ग जाता था। बाग चारों ओर से ऊँची प्राचीर से घिरा था। सर्वसाधारण का वहाँ जाना निषिद्ध था। वह केवल अन्तःपुरवासिनी महिलाओं की क्रीड़ा के निमित्त था।

अभी पूर्णतया रात्रि नहीं हुई थी—परन्तु पूर्ण चन्द्रोदय हो चुका था सन्ध्या के धूमिल प्रकाश से मिलकर, चन्द्रज्योत्सना नदी कूल के सिक्त मैदान में बड़ी भली लग रही थी। उसी सिक्त प्रांगण के एक किनारे पर नदी धीर मन्थर गति से बह रही थी।

बाग में श्वेत पत्थर की अनेक चौकियाँ पड़ी थीं, उन्हीं में से एक चौकी पर एक बाला उदास मन बैठी थी। यही बाला देवल देवी थी। उसी के निकट उसी वय की एक दूसरी स्त्री भी बैठी थी। वह उसकी अपेक्षा परिपुष्टाङ्ग थी। किन्तु रूप में वैसी न थी। जहाँ ये दोनों स्त्रियाँ बैठी बातें कर रही थीं—वहाँ एक झापुट वृक्ष पर एक लता झूल रही थी। लता पर इस समय बहार आई हुई थी और वह सफेद फूलों से लदी हुई थी।

दूसरी स्त्री ने कहा—'इतनी उदास क्यों हो बहिन ?'

'उदास होने ही से क्या होगा ?'

'नहीं होगा, तभी तो कह रही हूँ।'

'पर बहिन, उदास क्या अपने मन से हुआ जाता है ?'

'देखो यह जुही की लता कितने फूलों से लदी है, इसकी सुषमा भी तुम्हारे ही समान है। आओ तनिक मैं तुम्हारे जूड़े को इसके फूलों से सजा दूँ।'

'इससे क्या होगा ?'

'कुमार प्रसन्न होंगे।'

'कुमार को प्रसन्न करके मैं क्या करूँगी ?'

'वाह, अब तो उनसे तुम्हारा विवाह होने वाला है। वह तुम्हारे भावी स्वामी हैं। उनके प्रसन्न होने से तुम्हारे सब हित सिद्ध होंगे।'

'उनका विवाह तो प्रभावती से हो चुका है। प्रभावती उनकी पत्नी है।'

'तो इससे क्या हुआ ? क्या एक पुरुष की दो पत्नियाँ नहीं होती ?'

'होती क्यों नहीं। पर एक स्त्री के तो एक ही हृदय होता है।'

'अरे, तो क्या तुम किसी को अपना हृदय दे चुकी हो ?

'नहीं, यह बात नहीं है। परन्तु यहाँ हम राजपूत बालाओं का यह भाग्य कहाँ है कि विवाह के मामले में दिल का लेन-देन भी हो।'

'यह कैसी बात कह रही हो तुम! क्या तुम कुमार को प्रेम नहीं करतीं ?'

'यह मैं नहीं जानती। पर इतना मैं अवश्य जानती हूँ कि मेरा उनसे विवाह होगा। यह निर्णय करने से प्रथम मेरे पिता ने मुझसे कुछ पूछा भी नहीं है और पूछकर भी क्या होगा। यह विवाह, विवाह थोड़े ही है। आपत्काल की मर्यादा है। एक बार देवगिरि के महाराज ने अपने कुँवर के लिए मुझे माँगा था—पर तब उन्होंने इन्कार कर दिया था। उस समय वे महामहिम गुर्जरेश्वर थे। देवगिरि के यादव उन्हें छोटे लग रहे थे। सोलंकियों से इन यादवों की जाति मर्यादा की भला क्या तुलना हो सकती है ?'

'ओह, क्या अब भी तुम्हारे मन में ऐसे विचार हैं ?'

'ऐसे विचार रखने ही से क्या होगा ? अब तो मेरे पिता महामहिम गुर्जरेश्वर नहीं रहे। मेरी माता कुलशील त्याग कर दिल्ली चली गई। सुना है वह सुलतान की बेगम बनी है। इसके बाद सुल्तान का दूत दिल्ली से मुझे माँगने के लिए आया। अब इसी बात से डर कर निरुपाय हो मेरे पिता कुमार के गले मुझे लटका रहे हैं। यह विवाह भी भला विवाह है !'

'राजकुमारी, विवाह यह क्यों नहीं है। देवगिरि के यादव कोई हीन क्षत्रिय नहीं है। उनकी राजमर्यादा भी ओछी नहीं है। फिर राजपुत्र शकरदेव स्वयं वीर हैं।'

'किन्तु मैंने उनकी वीरता अभी नहीं देखी है।'

'वह भी समय पर देख लोगी।'

'तो अब तुम मुझे यहाँ इस समय किस अभिप्राय से लाई हो ?'

'राजकुमार तुमसे एकान्त वार्त्ता करना चाहते है।'

'किस प्रकार की वार्त्ता ?'

'यह मैं नहीं जानती।'

'मैं भी नहीं जानती। यह भी नहीं जानती कि वार्त्ता से क्या लाभ

होगा

'लाभ क्यों नहीं होगा ? उससे तुम्हारा ब्याह होगा। तुम उनकी पत्नी बनोगी।'

'तो वार्त्ता की ऐसी क्या जल्दी है ? सारा जीवन ही वार्त्ता के लिए पड़ा है।'

'तुम भी कैसी हो राजकुमारी, तुम्हें कुमार के प्रति इतना अनुदार नहीं होना चाहिए।'

'शायद नहीं होना चाहिए। क्योंकि हम लोग उनके आश्रित है।'

'ऐसा तुम क्यों सोचती हो भला ! क्या हमारे महाराज ने आपका यथेष्ट सत्कार नहीं किया ?'

'बहुत किया है। इससे अधिक क्या सत्कार हो सकता है कि वह मुझ अभागिन को अपनी पुत्रवधू बना रहे हैं !'

'पुत्रवधू ही क्यों, तुम तो एक दिन देवगिरि साम्राज्य की महारानी बनोगी। हमारे महाराज के एक ही तो पुत्र है—युवराज शंकरदेव।'

'मैं नहीं जानती मैं क्या बनूँगी। मेरे भाग्य में क्या लिखा है। खैर, तो कहाँ हैं तुम्हारे राजपुत्र ?'

इसी समय राजपुत्र शंकरदेव हँसते हुए झाड़ी के पीछे से निकल आये। यह देख वह दूसरी स्त्री वहाँ से खिसक गई।

उन्होंने हँसते-हँसते कहा—'तुम मेरी ही बात कर रही थी राजकुमारी।'

'जी हाँ, कहिए आपने मुझे यहाँ क्यों बुलाया है ?'

'यह क्या अनुचित हुआ है ?'

'शायद नहीं हुआ है। पर आप अपना अभिप्राय कहिए।'

'तुम्हें शायद मेरा यहाँ मिलना अच्छा नहीं लगा।'

'नहीं, यह बात नहीं है।'

'तो तुमने तो मेरा अभिनन्दन ही नहीं किया।'

'यहाँ बैठिए राजकुमार, यह तो आप ही का घर है। यहाँ मैं राज्य-भ्रष्ट राजा की बेटी आपका क्या अभिनन्द कर सकती हूँ भला ?'

'किन्तु यह सब तो तुम्हारा ही हो चुका।'

'यह भी आपके पिता का अनुग्रह है युवराज। वे मुझे नहीं स्वीकार
ते तो मेरे लिए ठौर कहाँ थी !'
'लेकिन अब तो तुम मेरी रक्षा में आ गई हो। अब तुम्हें क्या चिन्ता
'
'आप तो राजकुमार वीरों की भाषा बोल रहे है।'
'तो क्या मैं वीर नहीं हूँ ?'
'मै नहीं जानती। मैंने आपकी वीरता देखी नही है।'
'सो समय पर देख लेना।'
'तो इस समय आपने मुझे यहाँ क्यों बुलाया ?'
'केवल यह पूछने के लिए कि क्या तुम मुझसे प्रेम करती हो ?'
'मै केवल वीर पुरुष से प्रेम कर सकती हूँ।'
'मैं भी वीर पुरुष हूँ।'
'यह तो मैं अभी सुन चुकी। पर आपकी वीरता मैंने देखी नहीं।'
'मैने कहा न कि समय पर देख लेना।'
'समय अपने आप नहीं आता। वह लाया जाता है राजकुमार।'
'तो मैं उसे लाऊँगा।'
'क्या आप मेरे पिता के शत्रु से बदला ले सकते हैं ? दिल्ली के सुलतान
लोहा ले सकते हैं ?'
'इसके लिए तो मेरे हाथ खुजला रहे है राजकुमारी ! एक दिन सुल-
न को मेरी तलवार का पानी पीना होगा।'
'तभी मैं तुमसे प्रेम कर सकूँगी।'
'पर राजकुमारी, हमारा तुम्हारा ब्याह तो अभी हो रहा है।'
'हो जाय ब्याह। लड़कियों के ब्याह तो होते ही रहते हैं।'
'तो क्या इस विवाह से प्रसन्न नहीं हो ?'
'प्रसन्न-अप्रसन्न होने का प्रश्न नही है। राजपूत रमणी को क्या प्रसन्न
कर जौहर व्रत धारण करना पड़ता है ? उसका तो जन्म ही जूझ मरने
लिए है।'
'जूझ मरना तो हम भी जानते हैं।'
'ठीक है, मर्द लोग बाहर युद्ध में जूझते हैं और हम स्त्रियाँ समझ कर

घर में।

'खैर, अब तो हमारा ब्याह हो ही रहा है। धीरे-धीरे सब समझ लेना।'

'खैर, एक बात पूछूं ? सुलतान का दूत मुझे माँगने आया था, उसका क्या जवाब दिया।'

'और जवाब क्या हो सकता था, यह तलवार ही हमारा जवाब था। हमने कहा हमारी यह तलवार ही हमारा जवाब है।'

'और अब यदि सुलतान अपनी तलवार लेकर यहाँ आ जाये ?'

'वह क्या खाकर यहाँ आयेगा ? उसका क्या इतना साहस है ?'

'साहस यदि हो तो ?'

'हो तो हमारी २० हजार सैन्य उसके स्वागत के लिए तैयार है। वह यहाँ से जीवित न लौटेगा।'

'भगवान करे ऐसा ही हो। लेकिन इसके विपरीत हुआ तो क्या होगा ?'

युवराज का मुँह सूख गया ! उसने कहा—'ऐसा क्यों सोचती हो ?'

'सोचना तो सभी बातों को चाहिए।'

'अशुभ बातों का न सोचना ही उत्तम है।'

'फिर भी।'

'तो हम अपना कर्तव्यपालन करेंगे। तुम अपना कर्तव्यपालन करना।'

'यह बात तो तुमने वीरोचित कही कुमार।'

'कहता हूँ समय आने पर मेरी वीरता का प्रमाण देख लेना। किन्तु अभी तो हमें प्रेम की बात करनी चाहिए। देखो कैसी स्निग्ध चाँदनी है।'

'यह प्रेम वार्ता का काल नहीं है कुमार। शौर्य दिखाने के लिए कटिबद्ध होने का है।'

'अच्छा कहो, यदि मैं युद्ध में वीरता प्रकट करूँ तो क्या तुम मुझे प्यार करोगी ?'

'अवश्य।'

'और युद्ध में मेरी मृत्यु हो गई तब ?'

तब भी

'बस-बस इतना ही यथेष्ट है। अब तुम अन्तःपुर में जाओ। मैं भी पिताजी की सेवा में जाता हूँ।' इतना कहकर कुमार चले गये। देवल देवी चुपचाप बैठी आकाश के टिमटिमाते तारों को देखती रही।

८

जीनतुन्निसां

चैत का सवेरा था। दिन गर्म होते थे और रातें ठण्डी। औरंगाबाद के शाही हरम में हलचल होने लगी थी। लौंडिया-बाँदियाँ नींकें लेती-गिरती-पड़ती उठ अपने-अपने काम में लग रही थीं। औरंगजेब की द्वितीय पुत्री शाहजादी जीनतुन्निसां आसमानी दुशाले से अपना स्वर्ण गात लपेटे सुबह की मीठी झपकियाँ ले रही थी। दो बाँदियाँ चुपचाप मोरछल लिये छपरखट के पास खड़ी मक्खियाँ उड़ा रही थी, कि कहीं ऐसा न हो कि कोई मक्खी उसे जगा दे। मखमल का गद्दा और रेशम के तकियों में शाहजादी अपनी गोरी-गोरी बाँहों को बगल में दबाए कवियों की सारी उपमाओं को वेकार कर रही थी।

इसी समय शाहजादी की पुरानी विश्वासी बूढ़ी बाँदी नादिरा ने आकर धीरे से कहा—'अय-हए, अभी तक शाहजादी सो रही हैं!'

शाहजादी के उनींदे कानों में आवाज गई। धीरे-धीरे आँखें खोली, अगड़ाई ली, बाल सम्हालती उठी। बाँदियों ने कपड़े सम्हाल दिए।

शाहजादी की नजर सामने खड़ी नादिरा पर पड़ी। त्यौरियों में बल पड़ गए—'अलामा दहर, चुड़ैल, नींद बर्बाद कर दी, किसी के दर्द को भी देखती है, जरा मक्खियाँ तक नहीं उड़ाई जातीं, भला री ठहर, आज तेरे बल निकालूंगी।'

नादिरा ने बलैया ली, कहा—'बहुत सो लीं हुजूर, मैं सदके, अब उठिए और दीनो-दुनिया की खबर लीजिए।'

'तो तुझे क्या? सोते हैं तो अपना ही वक्त खोते हैं।'

परन्तु नादिरा को जवाब देने का समय नहीं मिला। महलों में इधर से उधर बाँदियाँ, अन्ना मानी, हप्फा छूछू, वारी गई, बलिहारी गई के तार बाँधती एक-एक करके कितनी इकट्ठी हो गईं, एक से बढ़कर एक का सिंगार, कुछ लौंडियाँ चाँदी की किश्तियों में विविध इत्र लेकर आईं और शाहजादी को इत्र से सराबोर करने लगीं। इतने में नाचनेवालियों का हजूम आ गया। बाँदियों ने मसनद सजा दी और नाचने वालियाँ अदा से नाचने लगीं। सब एक-एक पर बोलियाँ, ठठोलियाँ मारने लगी। सबने बूढ़ी नादिरा को देखा तो उसे घेरकर बैठ गईं। एक ने कहा—'अच्छी बुआ, तुम यहाँ क्यों आईं?'

दूसरी ने नखरे से कहा—'देखो तो जरी, सींग कटाकर बछड़ों में आ मिली है।'

तीसरी ने कहा—'अय हय, उस पोपले मुँह में मिस्सी की बहार तो देखते ही बनती है।'

चौथी ने कहा—'दरगारे तुम्हारी सूरत, कब्र में जाने को बैठी हो पर बिना नाच देखे चैन नहीं पड़ा।'

पाँचवीं ने कहा—'बुआ, ये तुम्हारे बाले-बुन्दे तो गजब ढा रहे हैं।'

छठी ने कहा—'तो जली क्यों मरती हो, उनके मियाँ ने पहनाए हैं। अपना-अपना शौक!'

शाहजादी ने यह चुहुल सुनी और हँस दी। उसने कहा—'अच्छा, हम गुस्ल करेंगे।' शाहजादी उठ खड़ी हुई। छम-छम करती सब जशिनयाँ तुर्किनियाँ, कल्लाकनियाँ, उर्दूबेगनियाँ, जसोलनियाँ और ख्वाजासरा पीछे-पीछे चलीं।

शाहजादी का यह जुलूस महल के हम्माम में पहुँचा। समूचा हम्माम अठपहलू संगमरमर का बना हुआ था, दीवारों पर रोशनदान थे जिनसे रोशनी आती थी, धूप नहीं आती थी। यह हम्माम गर्मियों में ठण्डा और सर्दियों में गर्म रहता था। बीच में एक बड़ा हौज था, जिसमें सुगन्धित जल भरा था, उसमें गुलाब के ताजा फूल तैर रहे थे। बाँदियों ने शाहजादी की पोशाक उतारी। वे आपस में नोकझोंक करने और शाहजादी के साथ जलक्रीड़ा करने लगीं। जीवित सौन्दर्य वहाँ अपना सौरभ बखेरने लगा।

अप्रतिम सौन्दर्य की प्रतिमाएँ केलि क्रीड़ाएँ करने लगीं। हौज खिले कमल के समान एक बड़ी रकाबी के आकार के थे, जिनमें भरे निर्मल जल में नीचे की काँपती हुई पच्चीकारी और सुमुखी सुन्दरियों का काँपता प्रतिबिम्ब परस्पर प्रतिस्पर्द्धा-सा करता दीख पड़ता था।

हौज से शाहजादी निकली। बाँदियों ने एक हल्की तनजेब से उसका शरीर ढक दिया। तनजेब से छन-छन कर शाहजादी का यौवन झाँकने लगा। इसी समय तोशेखानेवालियाँ कमख्वाब का बुकचा लेकर आ उपस्थित हुई। बाँदियों ने शाहजादी को पोशाक पहनाई, इत्र लगाया, बाल गूँथे, सिंगार किया। बाँदियाँ जड़ाऊ गहनों की भरी किश्तियाँ लिए अदब से आ खड़ी हुई। मनपसन्द जेवरात शाहजादी ने पहने। अब शाहजादी बारहदरी में आई। चाँदी का नक्काशीदार तख्त बिछाया, पीछे तकिया, आगे तीन सीढ़ियाँ, पायों में फूल-पत्ते, ऊपर करकरी ताश का तख्तपोश।

सामने जश्नियाँ, तुर्किनियाँ, कल्लानियाँ बैठीं, बगल में मुँह लगी लौंडियाँ और अर्दाबेगनियाँ। मिठाई और मेवों के सजे खाने पेश हुए। एक चाँदी की बड़ी भारी किश्ती मे बड़ा सा कलावा, पाँच पानों का एक बीड़ा, हरी दूब, मिश्री के कूजे, चाँदी के छल्ले, ऊपर कमख्वाब का कश्ती पोश, जिसमें कलाबत्तू की झालरें। जसोलिनी ने दस्तबस्ता अर्ज की—'हजरत तशरीफ लाए हैं।'

शाहजादी अदब से खड़ी हो गई। हजरत अलीबेग आए। काला आबनूस का रंग, पाँच हाथ का नंगतड़ंग शरीर, तीन मन की लाश, मेंहदी रंगी दाढ़ी, पान कचरते, होंठ फड़काते। नंगा बदन हजरत मसनद पर बैठे। उन्होंने पहले हजरत फातमा बाबर बादशाह आदि की नयाजें दीं, फिर किश्ती से कलावा निकाला। सुबहान अल्लाह-अल रहमान रहीम कहकर उसमें गिरह दी। दूसरी गिरह में पान का बीड़ा बाँधा, तीसरी में हरी दूब और मिश्री की डली बाँधी। चौथी में चाँदी का छल्ला बाँधा, पाँचवीं गिरह शाहजादी के सिर से छुआकर उस कलावे में लगाई। होंठों मे बड़बड़ाए। दुआ दी और चल दिए। इन सब झंझटों से शाहजादी थक गई। फौरन नौबहार, सदाबहार नर्गिस, भानकुँवर, भौन कुँवर तलुए सहलाने और पाँव दाबने लगीं।

शाहजादी ने मुँह बनाकर कहा—'हमारे सर में दर्द है।

बाँदियों के होश उड़ गए। वे दौड़ी शाही हकीम के पास।

अन्नामानी-हफ्फा-छछू सब इकट्ठी हो गई—'हाय, हाय, किसी कल्जनी ने हुजूर शाहजादी को होंस दिया।'

अन्ना ने गम्भीरता से शाहजादी को देखकर कहा—'जरा दौड़ो कोई, कल्हारी के पाँव तले की मिट्टी चूल्हे में जलाओ।' कई बाँदियाँ दौडी।

छूछू ने कहा—'बलाये लूँ। मै हजरत फातिमा, हजरत मुहम्मद के नाम की खैरात बोलती हूँ।'

शाहजादी खिलखिलाकर हँस पड़ी। लौडी-बाँदियाँ सब 'सुभान अल्लाह' चिल्ला उठी।

शाहजादी ने कहा—'अच्छी अन्ना, अब हम गुड़िया खेलेंगे।'

बाँदियाँ दौड़ चलीं और शाहजादी की गुड़िया उठा लाई। छोटी-बडी अनेक, जरबफ्त और जवाहरात से सजी-धजी। शाहजादी गुड़िया खेलने लगी। एक ने कहा—'अय मैं वारी, हुजूर की इस छोटी गुड़िया की तो आज सालगिरह है।'

बस, अब तो नाच-मुजरा और मुबारकबादी की झड़ी लग गई। शाहजादी बहुत खुश हो गई। उसने अँगूठी, छल्ला, माला, अशर्फी, मुहर, रुपए जो हाथ में आया बाँदियों पर फेंकना शुरू कर दिया। बाँदियाँ मालामाल होने लगीं।

उसी समय नादिरा बीबी ने फिर कक्ष में प्रवेश किया। उसने क्रोध भरी नजर से इस हुजूम को देखा। लौडियाँ उसे देख मुँह बनाने लगीं। पर उसने उनकी परवा न की—वह सीधे शाहजादी के पास तक चली गई। उसने घुड़ककर सबको चले जाने का हुक्म दिया। मतलब सबका पूरा हो गया था। नादिरा बीबी को शाहजादी मानती है, यह वे सब जानती थी। वे सब भाग गई। शाहजादी अकेली रह गई। अकेली होने पर उसने कहा—

'शाहजादी, आप गुड़िया खेल रही हैं और सल्तनत में बगावत की आग भड़कना चाहती है।'

शाहजादी ने अपनी गुड़िया को गोद में सुलाते हुए कहा—'तो मैं क्या करूँ?'

'हुजूर, शाहजादा जंग करने के लिए आगरे जा रहे है ?'

'इससे क्या होगा ? अब्बा का इस कदर परेशान होने का मक्सद ?'

'हुजूर शाहजादी, उनका जल्द आगरे जाना निहायत जरूरी है।'

'इस शिद्दत की गर्मी में ?'

'अभी गर्मी कहाँ है ?'

'रात ही तो ठण्डी है, दिन में मुई आग बरसती है, अब्बा सफर की जहमत बर्दाश्त कर सकेंगे ?'

'क्यों नहीं, अगर तख्त पर उन्हें कब्जा करना है तो सब कुछ बर्दाश्त करना पड़ेगा। जरूरत हुई तो जंग भी करनी पड़ेगी।'

'तौबा, तौबा, जंग भी ?'

'तब क्या शाहजादी समझती हैं तख्तेशाही यों ही मिल जायगा, आप जानती हैं कि शाहजारी रोशनआरा ने हजरत शाहजादा को बुलवाया है।'

'तो मैं क्या करूँ ?'

'आप भी शाहजादी रोशनआरा को खत लिखें।'

'क्या उन्होंने खत लिखा है ?'

'बेशक, हजरत शाहजादा को खत मिला है।'

'तो मैं भी खत लिखूँगी। दवात-कलम लाओ और मुगलानी बीबी को बुलाती लाओ।'

'बहुत खूब, मगर याद रखिए शाहजादी, यदि हजरत शाहजादा तख्त-नशीन हुए तो हुजूर का इकबाल ही आगरे के रंगमहल में बुलन्द रहेगा।'

'वह रहना ही चाहिए, तू दवात-कलम ला—मैं अभी खत लिखूँगी।'

नादिरा ने मुजरा किया और चली गई। शाहजादी फिर अपनी गुड़ियों से खेलने लगी।

९
जेबुन्निसा

शाहजहाँ का तीसरा बेटा औरंगज़ेब था। वह गौरवर्ण और आग्रही स्वभाव का था। वह अपने सब भाइयों से निराला, संजीदा और अपने कार्य गुप्त रूप से निकालने का अभ्यस्त था। उसका चित्त कुछ रोगी-सा था और सदा कुछ-न-कुछ करता रहता था। उसका उद्देश्य यह रहता था कि बात की तह तक पहुँचकर कार्य करे। उसे यह बड़ी चाह थी कि दुनिया उसे बुद्धिमान, चतुर और न्यायरक्षक समझे। दान-पुण्य वहीं करता था—जहाँ आवश्यकता होती थी।

उसके हरम में दो बेगम और दो चहेती थीं। बड़ी बेगम दिलरस बानू से तीन पुत्रियाँ जेबुन्निसा, जीनत उन्निसा, जुब्दत उन्निसा और एक पुत्र मुहम्मद आज़म थे।

जेबुन्निसा का शब्दार्थ है—स्त्रियों की शोभा। वह अत्यन्त भावुक, प्रतिभाशाली, और विदुषी कवयित्री थी। उसकी कविता में करुण रस का उत्कर्ष बहुल रहता था। उसकी माता दिलरस बानू का विवाह ई० स० १६३७ में औरंगजेब से हुआ। वह ईरान के सफवी राजवंश के मिरज़ा रुस्तम कन्धारी के पुत्र मिर्जा वदी उज्जमा शाहनवाज की पुत्री थी। मिरज़ा रुस्तम स्वयं अच्छे कवि थे। जेबुन्निसा का जन्म ई० स० १६४० में हुआ। इसके जन्म से औरंगजेब इतना प्रसन्न हुआ कि उसने अपने नाम का आधा शब्द 'ज़ेब' इसके नाम के साथ जोड़ दिया। ६ वर्ष की आयु ही में वह मरियम हाफिज़ा की निगरानी में दे दी गई जो शुकुल्ला नैशापुरी की स्त्री थी। इसने इस शाहज़ादी को राजमर्यादा तथा कुरान का पाठ पढ़ाया। आठ वर्ष की आयु में इसने समग्र कुरान कण्ठस्थ कर अपने पिता को सुना दिया, जिस पर प्रसन्न होकर उसने तीस हज़ार अशर्फियाँ इनाम में दीं और कई जलसे किये। फिर उसने उच्च शिक्षा के लिए माजिदरान के विद्वान सैयद मुल्ला अशरफ़ को अध्यापक नियुक्त किया। उसने इसे फारसी और अरबी की उत्तम शिक्षा दी और शाहज़ादी अरबी-फारसी के साहित्य की

अच्छी समझ हो गई।

उसने फारसी की लिपि में भी दक्षता प्राप्त कर ली तथा अल्प आयु में ही कविता लिखने लगी। उसकी कल्पना शक्ति और आशु काव्यकला शीघ्र ही सर्वतोमुखी हो उठी। शीघ्र ही कवियों का दरबार उसके यहाँ जुड़ने लगा। नासिरअली 'सरहिन्दी', मिर्जा मुहम्मद अली 'सायब', मुल्ला ताहिर 'गनी', नेअमत खाँ 'आली' बहरोज आदि कवि उसके काव्य सहचर थे। अनेक संग्रह-ग्रन्थ और मौलिक रचनाएँ इसे समर्पित की गई, जिनमें एक 'जेबुत्तफ़ासीर' है जो तफ्सीरे-कबीर का अनुवाद है। इसे मुल्ला सफ़ी उद्दीन अर्दबेली ने लिखा था, जो शाहजादी की सेवा में नियुक्त थे।

इनके अतिरिक्त रक़वाफ़ के निवासी आकिल खाँ मीर 'अस्करी' ने, जो मंसबदार और औरंगजेब का अमीर था, 'राजी' उपनाम से एक दीवान और मसनवी लिखा।

दरबार और कवि सम्मेलनों में वह मुँह पर नक़ाब डालकर उपस्थित होती थी, इसीसे उसका नाम 'मकफ़ी' प्रसिद्ध हो गया। इसी नाम से वह कविता करती थी। मुगल शाही खानदान की दो और महिलाएँ नूरजहाँ और सलीमा बेगम भी कविता करती थीं तथा उनका भी उपनाम यही था। जेबुन्निसा दारा से बहुत प्रेमभाव रखती थी। उसने अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ दारा को ही समर्पित की हैं। राजनीतिक कारणों से उसके अन्तिम दिनों में औरंगजेब ने अपनी इसी विदुषी प्रिय पुत्री को सलीमगढ़ के दुर्ग में कैद कर दिया था, जहाँ उसने अत्यन्त मर्मस्पर्शी कविताएँ लिखीं। वह अपने प्रेमी से विवाह न कर सकी, इससे वियोग शृङ्गार की उत्तम रचना कर सकी। वह आजन्म कुमारी रही। ई० स० १७०१ में उसकी लाहौर में मृत्यु हुई। उसकी कविता का संग्रह 'दीवाने मकफ़ी' के नाम से प्राप्त है।

१०
कन्दरा में शेर

विक्रम संवत् १७३५ की पौष की दशमी को जमरूद के थाने में मारवाड़ अधिपति जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह का देहान्त हुआ। यह

समाचार पाते ही औरंगजेब ने मारवाड़ पर दखल कर लेने के लिए सेनाएँ भेज दीं और स्वयं भी अजमेर को चला गया। जब जमरूद में ठहरे हुए राजपूत सरदारों को इस बात की सूचना मिली तो वे बिना शाही आज्ञा लिये ही महाराज की गर्भवती महारानी को लेकर जोधपुर की ओर चल दिए। जब वे लाहौर पहुँचे तो वहाँ संवत् १७३५ की चैत्र कृष्ण चौथ को हाड़ी रानी के गर्भ से कुँवर अजीतसिंह का जन्म हुआ। इस कारण सरदारों को लाहौर में कुछ दिन रुकना पड़ा।

इस बीच में बादशाह ने जोधपुर को दखल कर लिया। इसलिए ठाकुर दुर्गादास की अध्यक्षता में ये सरदार लोग नवप्रसूता महारानी औरनवजात शिशु को लेकर दिल्ली की ओर बढ़े। बादशाह ने जब यह सुना तो वह भी दिल्ली लौट आया। दिल्ली आकर उसने बालक राजकुमार को हस्तगत करने की बहुत चेष्टा की, लेकिन दुर्गादास और मुकुन्ददास के कौशल से राठौर सरदारों के साथ वीरांगना रानी बचकर निकल गई। मुकुन्ददास खींची और दुर्गादास ने प्राणों पर खेलकर बालक की रक्षा की। मुकुन्ददास सँपेरे के वेश में बालक को लेकर शाही सेना के बाहर निकल गये। रास्ते मे मेडानियाँ सरदार विजयचन्द्र की माता तीर्थयात्रा को जा रही थी। इस दल में ये लोग मिल गए और मेवाड़ की ओर चले गए। दुर्गा धाय ने, जो जाति की सैन थी, अपने बच्चे को राजकुमार कहकर बादशाह के सुपुर्द कर दिया और बादशाह ने उसे जसवन्तसिंह का पुत्र समझकर बड़े यत्न से पाला और पाँच वर्ष का होने पर उसे मुसलमान बनाकर उसका नाम मुहम्मद रखा।

जो मुट्ठी-भर राजपूत इस अवसर पर जमरूद से बचकर आये थे, उनमे से बहुत मारे गए और कुछ इधर-उधर चले गए। मुकुन्ददास नवजात बालक को लेकर सिरोही के पहाड़ों में जा छिपे। दुर्गादास ने उदयपुर पहुँचकर राणा राजसिंह से सहायता माँगी। उनके संरक्षण में दुर्गादास राजपूतों को संगठित करके जहाँ-तहाँ शाही छावनियों और थानों को लूटने लगे।

इसी प्रकार दिन पर दिन बीतते गए। १७४४ तक राठौर सरदार इस प्रकार लूट-मार करते रहे। जब अजीतसिंह ९ वर्ष के हुए तब उन्हें प्रकट

किया गया इस अवसर पर उत्साहित होकर राठौरा ने नागौर और सिवाना के किले बादशाह से छीन लिये। सन् १७६३ के फाल्गुन के महीने मे दक्षिण में औरंगजेब का देहान्त हो गया। उस समय अजीतसिंह की आयु लगभग ३० वर्ष की थी। औरंगजेब की मृत्यु का हाल सुनते ही अजीतसिंह ने जोधपुर पर दखल कर लिया और वहाँ के हाकिम निजाम जफर कुलीखाँ को मार भगाया।

इसके बाद शाहजादा मुअज्जम अपने भाई आजम को कत्ल करके बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। जब वह अपने दूसरे भाई कामबख्श से, जो कि दक्खिन में फौज की तैयारी कर रहा था, लड़ने के लिए अजमेर की तरफ अग्रसर हुआ, उसने अजीतसिंह के जोधपुर पर दखल कर लेने की बात सुनी, तो महराब खाँ को भेजकर फिर से जोधपुर पर दखल कर लिया। जयपुर के महाराज जयसिंह ने शाहजादा आजम की तरफ से मुअज्जम से लड़ाई की थी, इसलिए इस मौके पर उसने जयसिंह से भी जयपुर छीन लिया और जयपुर की गद्दी जयसिंह के भाई विजयसिंह को दे दी। बाद में खानजमा के साथ अजीतसिंह ने पीपड़ा के थाने मे जयसिंह के साथ बादशाह से मुलाकात की और बादशाह से उसकी सन्धि हो गई।

बादशाह ने अजीतसिंह को महाराजा का खिताब, साढ़े तीन हजारी जात, तीन हजार सवारों का मनसब और शाही खिलअत दिया, लेकिन जोधपुर नहीं दिया। इसके बाद बादशाह लड़ाई करने के लिए दक्खिन को रवाना हुआ। ज्यों ही बादशाह का लश्कर थानेश्वर के पास नर्मदा नदी के पार पहुँचा, त्योंही अजीतसिंह और जयसिंह अपना डेरा-डण्डा वहीं छोड़कर लौट आये और महाराणा उदयपुर से मुलाकात की। महाराणा ने उदय सागर की पाल पर डेरा डलवाया और गाड़वाँ गाँव तक उन दोनों राजाओ के स्वागत के लिए गए। महाराणा ने पहले अजीतसिंह से और फिर जयसिंह से मुलाकात की।

इन दोनों राजाओं के महाराणा से मिलने की खबर शाहजादा मुइजुद्दीन जहाँदारशाह ने बादशाह को दी और बादशाह के कहने से उसने महाराणा को लिखा कि इन दोनों बागियों को समझाकर माफी की अर्जियाँ लिखवा

कर भेज दें। महाराणा ने अपनी पुत्री चन्द्रकुँवर का ब्याह अजीतसिंह के साथ कर दिया और तीनों राजाओं में इस अवसर पर एक अहदनामा हुआ जिसमे यह शर्तें लिखी गई कि—तीनों राजा मिलकर एक-दूसरे के शत्रु को शत्रु और एक-दूसरे के मित्र को मित्र समझें और यह भी तय हुआ कि उदयपुर की राजकुमारी का पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी हो, चाहे राजकुमारी छोटी रानी क्यों न हो। यदि कोई कन्या उदयपुर की राजकुमारी के हो तो वह मुसलमानों को न दी जाय। इसके बाद तीनों राजाओं की सम्मिलित सेना जोधपुर पहुँची, और उसे फतह कर लिया और फिर जयपुर पहुँच उसे भी फतह कर लिया। जोधपुर का शाही फौजदार मह्राबखाँ जोधपुर छोडकर भाग गया और आमेर का शाही फौजदार हुसैनखाँ भी निकालकर बाहर कर दिया गया।

पौने पाँच वर्ष राज्य करके बहादुरशाह मर गया। इसके बाद शाहजादा मुइजुद्दीन जहाँदारशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसको मारकर फर्रूख-सियर सैयद बन्धुओं की सहायता से गद्दी पर बैठा।

इस बीच मे अजीतसिंह ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था और जयसिंह को अपनी कन्या ब्याह दी थी। इस अवसर पर दोनों की सम्मिलित सेना ने साँभर को भी फतह कर लिया। विक्रम सं० १७७१ में बादशाह फर्रूखसियर ने सैयद हुसेनअली को फिर मारवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। अजीतसिंह वीर चम्पावत और राव भगवानदास को जोधपुर की रक्षा का भार सौंपकर स्वयं सैन्य-संग्रह मे जुट गए। लेकिन इस समय बादशाह और महाराज में सन्धि हो गई। बादशाह ने महाराज को छः हजारी जात, छः हजार सवारों का मनसब दिया और अहमदाबाद का हाकिम बनाकर गुजरात भेज दिया। वि० सं० १७७५ में बादशाह ने महाराज अजीतसिंह को दिल्ली बुलाया। पहले तो बादशाह ने अजीतसिंह का बहुत आदर किया, पर फिर नाराज होकर उन्हें मार डालने का षड्यन्त्र रचा। वजीर सैयद अब्दुल्लाखाँ ने महाराज अजीतसिंह से दोस्ती करके बादशाह फर्रूखसियर के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। उसने अपने भाई हुसेन अली खाँ को दक्षिण से बुला लिया और विक्रम सं० १७७५ में जनानखाने मे घुसकर छिपे हुए बादशाह फर्रूखसियर को कैद कर लिया और उसकी

जगह रफीउद्दरजात को कैद से निकालकर बादशाह बनाया। उसने जजिये को माफ करने का वचन दिया और महाराज अजीतसिंह को बहुमूल्य भेंट देकर गुजरात भेज दिया।

एक साल बाद फर्रुखसियर मार डाला गया और उसी समय में सैयद बन्धुओं ने जयपुर महाराज के विरुद्ध सेनाएँ भेजी, लेकिन महाराज ने मामला सुलझा दिया। इसी साल रफीउद्दरजात मर गया और महाराज की सलाह से सैयद बन्धुओं ने उसके भाई रफउद्दौला को कैद से निकालकर शाहजहाँ सानी नाम से गद्दी पर बैठाया, लेकिन यह बदनसीब भी सिर्फ दो महीने राज्य करके भादों के महीने में मर गया। तब महाराज और सैयद बन्धुओं ने मिलकर बहादुरशाह के पोते और जहाँदारशाह के पुत्र रोशन अख्तर को जोकि कैद में था, वहाँ से निकालकर मुहम्मदशाह के नाम से बादशाह बनाया। लेकिन पाँसा पलट गया। त्रिकूट की शक्ति बढ़ गई थी और वह उससे डरता था।

इस प्रकार जिस महाराज अजीतसिंह का जन्म खतरे में हुआ और जिसका बचपन क्षण-क्षण पर खतरे में बीता, उसी के हाथ मुगलतख्त के भाग्य-निर्माण की शक्ति आई और उसने अपने हाथ से तीन बादशाहो को दिल्ली के तख्त से उतारा और तीन को बैठाया।

मुहम्मद शाह ने मौका पाकर सैयद बन्धुओं को मरवा डाला और इसके बाद राजा के नवयुवक पुत्रों द्वारा भयंकर षड्यन्त्र रचाकर उनके ज्येष्ठ पुत्र बख्तसिंह द्वारा जहर दिलवाकर अजीतसिंह को मरवा डाला। इस प्रकार इस प्रबल योद्धा और राजनीतिज्ञ राजा का देहान्त हुआ।

११
तलवार गुम

हैदरअली के दादा वलीमुहम्मद एक मामूली फकीर थे, जो गुलबर्गा मे दक्षिण के प्रसिद्ध साधु हजरत बन्दोनवाज गैसूदराज की दरगाह में रहा करते थे। इनके खर्च के लिए दरगाह से छोटी-सी रकम बंधी हुई थी।

इनका एक पुत्र था, जिसका नाम मोहम्मद अली था।

वह कुछ दिन बीजापुर में रहा, पीछे कर्नाटक के कोलार स्थान में आकर ठहरा। कोलार का हाकिम शाहमुहम्मद दक्षिणी शेखअली का बड़ा भक्त था। शेखअली के चार बेटे थे। उन्होंने बाप से नौकरी की इजाजत माँगी। पर उसने समझाया—'हम साधुओं को दुनिया के धन्धों में फँसाना ठीक नहीं। निदान, वे पिता की मृत्यु तक उनके पास रहे। पिता की मृत्यु पर बड़ा तो पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ, और सबसे छोटा अरकाट के नवाब के यहाँ फौज में जमादार हो गया, और तंजोर के फकीर पीरजादा बुरहानुद्दीन की लड़की से शादी कर ली। इससे उसे दो पुत्र हुए—जिसमें छोटे का नाम हैदरअली था। इस समय उसका पिता सिरा के नवाब के यहाँ बालापुर कलां का किलेदार था। जब हैदरअली तीन वर्ष का था, तब उसका पिता किसी युद्ध में मारा गया। उनका सब सामान जब्त कर लिया गया और हैदरअली को भाई सहित नक्कारे में बन्द कराकर नक्कारे पर चोटें लगवानी शुरू करा दी गईं। इस अवसर पर उसके चाचा ने धन भेजकर उसका उद्धार किया और उसे अपने पास रक्खा। वहाँ उसने युद्ध-विद्या सीखी और समय आने पर दोनों भाई मैसूर की सेना में भर्ती हो गये।

मैसूर रियासत मरहठों को चौथ देती थी। इस समय निजाम और मैसूर राज्य का मिलकर अंग्रेजों से युद्ध हुआ। इस युद्ध में हैदरअली एक साधारण सिपाही की भाँति लड़ा।

इस युद्ध में हैदर ने जो कौशल दिखाया, उसपर मैसूर के दीवान की दृष्टि पड़ी और उसने हैदर को डिण्डीगल का फौजदार नियत कर दिया। यहाँ उसने अपनी सेना को फ्रान्सीसी रीति से युद्ध करने की शिक्षा दी और तोपखाने में भी फ्रान्सीसी कारीगर नियुक्त किये।

धीरे-धीरे उसका बल बढ़ता गया, और वह प्रधान सेनापति हो गया। शीघ्र ही वह मैसूर का प्रधान मन्त्री हो गया। उस समय प्रधान मन्त्री ही राज-काज के कर्ता-धर्ता थे। महाराज तो साल में एकाध बार प्रजा को दर्शन देते थे। हैदरअली ने शीघ्र ही मैसूर की सम्पूर्ण सत्ता अधिकार में कर ली, और प्रधान मन्त्री की पदवी उसकी खानदानी पदवी हो गई।

दिल्ली के सम्राट् ने भी उसे सीरा प्रान्त का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

अब हैदरअली ने राज्य की व्यवस्था की ओर ध्यान दिया और शीघ्र ही प्रबन्ध उत्तमता से होने लगा। इसके बाद उसने आस-पास के प्रान्त में विजय प्राप्त कर रियासत को बढ़ाना प्रारम्भ किया।

यह वह समय था, जब मराठों की शक्ति बढ़ रही थी। मराठों के मैसूर पर चार आक्रमण हुए, पर अन्त में उन्हें हैदरअली से सन्धि करनी पड़ी।

इस समय अंग्रेजी कम्पनी की शक्ति भी किसी शक्ति की वृद्धि सहन न कर सकती थी। उन्होंने छेड़छाड़ की, और हैदरअली के मित्र कर्नाटक के नवाब को भड़काकर फोड़ लिया। हैदर ने यह देख, निजाम से सन्धि की. और दोनों ने मिलकर कर्नाटक और अंग्रेजी इलाके पर हमला कर दिया। निजाम की ओर से ५० हजार सेना सहायतार्थ आई थी। इतनी ही अंग्रेजी सेना जनरल स्मिथ की अधीनता में मद्रास से बढ़ी। हैदर के पास २ लाख सेना थी। इसमें से ५० हजार सेना लेकर उसने अंग्रेजी सेना की गति रोकी। परन्तु निजाम को भी अंग्रेजों ने फोड़ने की चेष्टा की। यह देख, हैदर ने सन्धि की चेष्टा की पर, हैदर युद्ध को सन्नद्ध हो गया और शीघ्र ही समस्त छिना हुआ प्रदेश लौटा लिया तथा अंग्रेजी सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया।

इस समय हैदर के पुत्र टीपू की आयु १८ वर्ष की थी और वह पिता के साथ युद्ध के मैदान में था। हैदर ने उसे ५ हजार सेना देकर दूसरे रास्ते से मद्रास भेज दिया। वह इतना शीघ्र मद्रास पहुँचा कि उसकी सेना को सिर पर देख, अंग्रेज घबरा गया, और वे लोग भाग खड़े हुए। टीपू ने सेण्ट टॉमस नामक पहाड़ी पर कब्जा किया और आस-पास के अंग्रेजी इलाके भी कब्जे में कर लिये।

उधर त्रिचनापल्ली में हैदर और जनरल स्मिथ का मुकाबला हुआ। ऐन मौके पर अपनी तमाम सेना को निजाम के अफसर ने इस बुरी तरह पीछे हटाया कि हैदर की तमाम फौज में खलबली मच गई। यह विश्वास-घात देख हैदर ने अपनी सेना कुछ हटाई।

उधर अंग्रेजों ने उड़ा दिया कि हैदर हार गया और टीपू को भी समाचार भेज दिया। टीपू उस समय मद्रास से एक मील दूर था। वह अंग्रेजों

के भरें में आ गया और मद्रास छोडकर पिता से मिलने चल दिया।

इधर हैदर बेनियमबाड़ी के किले की ओर बढ़ा और उसे फतह करके आम्बूर की ओर गया। वहाँ उसे बहुत से हथियार और गोला-बारूद हाथ लगा। जनरल स्मिथ हार-पर हार खाकर पीछे हटता गया। तब उसकी सहायता के लिए कर्नल उड़ एक नयी सेना लेकर बंगाल से चला।

इस बीच अंग्रेजों ने पादरियों द्वारा हैदर के योरोपियन अफसरों को फोड़ने की पूरी-पूरी कोशिश की और सफलता भी प्राप्त की। पर अन्त मे हैदर ने अपना तमाम इलाका अंग्रेजों से छीन लिया। उधर अग्रेजों ने बगलौर को हथिया लिया। उसे टीपू ने छीना। इस युद्ध में अनेक अंग्रेज अफसर सेनापति सहित गिरफ्तार किये गये।

हैदर वीर पुत्र सहित सेना को खदेड़ते हुए मद्रास तक जा पहुँचा। अग्रेजों ने कप्तान बूक को सुलह की बातचीत करने भेजा। हैदर ने जवाब दिया—'मैं मद्रास के फाटक पर आ रहा हूँ। गवर्नर और उसकी कौन्सिल को जो कुछ कहना होगा, वहीं आकर सुनूँगा।'

वह साढ़े तीन बजे के अन्तर १३० मील दूर का फासला तै करके अचानक मद्रास जा धमका, और किले से १० मील दूर छावनी डाल दी। अग्रेज काँप उठे। हैदर और अंग्रेजी सेना के बीच 'सेण्ट टॉमस' की पहाड थी। अंग्रेजों ने देखा कि यदि हैदर इस पर अधिकार कर लेगा तो खैर नहीं। वे जल्दी-जल्दी वहाँ तोपें जमा रहे थे। पर हैदर एक चक्कर काट-कर मद्रास के किले के दूसरे फाटक पर आ पहुँचा। अंग्रेजी सेना किले के दूसरी ओर फसील से दो-तीन मील के फासले पर थी। अंग्रेजों के भय का ठिकाना न था। पर हैदर ने पूर्व वचन के अनुसार गवर्नर को कहला भेजा—'कहो, क्या कहना चाहते हो ?'

गवर्नर ने तुरन्त डुगे और वैंशियर को सुलह की बातचीत करने भेजा। डुगे भविष्य के लिए गवर्नर नियुक्त हो चुका था। वैशियर उस समय के गवर्नर का सगा भाई था।

अन्त में सन्धि हुई। उसमें कम्पनी का किसी प्रकार का राजनीतिक अधिकार नहीं माना गया। सन्धि-पत्र हैदर ने जैसा चाहा, वैसा ही इंगलिस्तान के बादशाह के नाम से लिखा गया। इस सन्धि के आधार पर

हैदरअली और इग्लैण्ड के राजा मे मित्रता कायम रही दोनो ने अपने प्रान्त वापस लिये और हैदर ने एक मोटी रकम युग के खर्च के लिए ली। दूसरी सन्धि के आधार पर अरकार का नवाब मैसूर का सूबेदार समझा गया और बतौर खिराज के ५ लाख रुपया सालाना का देनदार बना। इसके अतिरिक्त एक नया युद्ध का जहाज जिस पर उम्दा ५० तोपें थी, हैदरअली को अंग्रेजों ने भेंट किया।

इस सन्धि का यह असर हुआ कि इंग्लैण्ड में इसकी खबर पहुँचते ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिस्सों की दर ४० फि-सदी गिर गई।

कुछ दिन बाद मराठों ने मैसूर पर आक्रमण किया। हैदर ने अंग्रेजों से मदद माँगी पर उन्होने इन्कार कर दिया। हैदर अंग्रेजों की चाल समझ गया। उसने टीपू को मराठों पर सेना लेकर भेजा, और ६ वर्ष के लिए दोनों में सन्धि हो गई। जब हैदर को यह निश्चय हो गया कि अंग्रेज सन्धि तोड़ रहे हैं, तो उसने अंग्रेजों पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दी और निजाम से मदद माँगी। पर, निजाम इस बार भी ऐन मौके पर दगा कर गया।

इसी बीच में नाना फडनवीस ने हैदर से सन्धि कर ली। अंग्रेजो ने फिर सन्धि की बहुत चेष्टा की, पर हैदर ने स्वीकार नही किया। कर्नाटक का नवाब मुहम्मद अली अंग्रेजों का मित्र था। हैदर ने पहले उसी की ओर रुख किया, और सेना के कई भाग कर, तमाम प्रान्त में फैला दिये। अंग्रेजों और नवाब की सेनाएँ हार-पर-हार खाने लगीं। अन्त में तमाम प्रान्त को हैदर ने अपने कब्जे में कर लिया। नवाब भागकर मद्रास चला गया। हैदर की सेनाएँ भी मद्रास जा धमकीं। अंग्रेजों की दो सेनाएँ उनके मुकाबले को उठीं। घनघोर युद्ध हुआ और हैदर ने अंग्रेजी सैन्य को बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सरकार के किले और नगर पर भी अधिकार हो गया। वहाँ उसने एक हाकिम नियत किया और शासन-प्रबन्ध ठीक किया।

उस समय वारेन हैस्टिंग्स गवर्नर-जनरल थे। यह समाचार सुन, वह घबरा गये। बंगाल की हालत भयानक हो गई थी। भयानक दुर्भिक्ष था। पर, फिर भी ५ लाख रुपया नकद और एक भारी सेना उसने मद्रास के

लिए भेजी। मद्रास पहुँचकर इस सेना के सेनापति ने सात लाख रुपये मुहम्मद अली से और वसूल किए और सैन्य-संग्रह कर हैदर अली के मुकाबले को बढ़ा। कई बार मुठभेड़ हुई और अंग्रेजों को भारी हानि उठा कर पीछे हटना पड़ा। अन्त में सेनापति सरकूट बंगाल लौट गये। हैदर ने लगभग समस्त अंग्रेजी इलाका फतह कर लिया था। पर अचानक उसकी मृत्यु हो गई। हैदरअली की पीठ में काँखकल फोड़ा हो गया था। उमी मे उसकी मृत्यु हुई। मृत्यु के समय वह साठ वर्ष का था।

मृत्यु के समय उस तमाम इलाके को छोड़कर, जो उसने युद्ध में अपने शत्रुओं से विजय किया था, शेष का क्षेत्रफल अस्सी हजार वर्ग मील था, जिसकी सालाना बचत, तमाम खर्चा निकालकर तीन करोड़ रुपये से अधिक थी। उसकी स्थाई सेना तीन लाख चौबीस हजार थी। खजाने मे नकदी और जवाहरात मिलाकर सब अस्सी करोड़ से ऊपर था। उसकी पशुशाला में सात सौ हाथी, छः हजार ऊँट, ग्यारह हजार घोड़े, बीस लाख गाय और बैल, दस लाख भैंसे, साठ हजार भेड़े थी। शस्त्रागार में छः लाख बन्दूकें, दो लाख तलवारें और बाईस हजार तोपें थी।

यह पहला ही हिन्दुस्तानी राजा था, जिसने अपने समुद्र तट की रक्षा के लिए एक जहाजी बेड़ा, जो तोपों से सज्जित था, रखा हुआ था। यह जलसेना बहुत जबर्दस्त थी, और उसके जल-सेनापति अलीरजा ने मल-द्वीप के बारह हजार छोटे-छोटे टापुओं को हैदर के राज्य में मिला लिया था।

वह पढ़ा-लिखा न था। बड़ी कठिनता से अपने नाम का पहला अक्षर 'है' लिखना सीख पाया था। पर, इसे भी वह उल्टा-सीधा लिख पाता था। फिर भी उसने योरोप के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के दाँत खट्टे कर दिये थे। उसकी स्मरण-शक्ति ऐसी अलौकिक थी कि वह एक साथ कई काम किया करता था। एक साथ वह तीस-चालीस मुन्शियों से काम लेता था।

उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र टीपू ने युद्ध उसी भाँति जारी रखा। अंग्रेजों ने लल्लो-पच्चो करके सन्धि की। वह वीर था पर अनुभवशून्य था। उसने अंग्रेजों से मित्रता की सन्धि स्थापित की और जीता हुआ प्रान्त उन्हें लौटा दिया। कम्पनी ने उसे मैसूर का अधिकारी स्वीकार कर

लिया था।

कुछ दिन तो चला। पीछे जब लार्ड कार्नवालिस गवर्नर होकर आये तो उन्होंने देखा कि टीपू ने निजाम और मरहठों से बिगाड़ कर लिया है। कार्नवालिस ने झट निजाम के साथ टीपू के विरुद्ध एक समझौता किया। इसके बाद उसने टीपू और मराठों मे होती हुई सुलह में विघ्न डालकर मराठों से भी एक समझौता कर लिया। तीन बार उसने इंग्लैण्ड स कुछ गोरी फौज तथा पाँच लाख पौण्ड कर्ज भी मँगवाये।

अब बावनकौर के राजा से भी युद्ध छिड़वा दिया गया और अंग्रेज उसकी मदद पर रहे। मुठभेड़ होने पर फिर टीपू ने अंग्रेजी सेना को हार पर हार देनी आरम्भ की। अन्त में स्वयं कार्नवालिस ने सेना की बागडोर हाथ में ली। निजाम और मराठे उसकी सहायता को सेनाएँ लेकर उससे मिल गये। ठीक युद्ध के समय टीपू तमाम योरोपियन अफसर और सिपाही शत्रु से मिल गये। टीपू के कुछ सेनापति और सरदार भी घूंस से फोड़ लिये गये।

यद्यपि टीपू की कठिनाइयां असाधारण थीं, पर उसने वीरता और दृढ़ता से कई महीने लोहा लिया। अन्त में बंगलौर अंग्रेजों के हाथ में आ गया, टीपू को पीछे हटना पड़ा।

अब कार्नवालिस ने मैसूर की राजधानी रंगपट्टन पर चढ़ाई की। टीपू ने युद्ध किया और सुलह की भी पूरी चेष्टा की। अंग्रेजों ने लाल बाग में हैदरअली की सुन्दर समाधि पर अधिकार कर लिया और उसे लगभग नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अन्त में दोनों दलों में सन्धि हुई और टीपू का आधा राज्य लेकर कम्पनी, निजाम और मरहठों ने बाँट लिया। इसके सिवा टीपू को ३ किस्तों में ३ करोड़ ३० हजार रुपये दण्ड देने का वचन देना पड़ा और इस दण्ड की अदायगी तक अपने दो बेटों को, जिनमें एक की आयु १० वर्ष और दूसरे की ८ वर्ष की थी, बतौर बन्धक अंग्रेजों के हवाले करना पड़ा।

इस पराजय से टीपू का दिल टूट गया और उसने पलंग-बिस्तर छोड़कर टाट पर सोना शुरू कर दिया और मृत्यु तक उसने ऐसा ही किया।

टीपू ने ठीक समय पर दण्ड का रुपया दे दिया और बड़ी मुस्तैदी से

वह अपने राज्य, राजकोष और प्रबन्ध को ठीक करने लगा। युद्ध के कारण जो मुल्क की बर्बादी हुई थी, उसे ठीक करने में उसने अपनी सारी शक्ति लगा दी। सेना में भी नयी भर्ती करना और उन्हें शिक्षा देना उसने आरम्भ किया। इस प्रकार शीघ्र ही उसने अपनी क्षतिपूर्ति कर ली।

उधर अंग्रेज सरकार भी बे-खबर न थी। उधर भी सैन्य-संग्रह हो रहा था। निजाम सबसीडियरी सेना के जाल में फँस गया था, और पेशवा के पीछे सिन्धिया को लगा दिया गया था। पर प्रकट में दोनों ओर से मित्रता और प्रेम के पत्रों का भुगतान हो रहा था। अन्त में सन् १७९९ की ३ फरवरी को हठात् टीपू को वेलेजली का एक पत्र मिला, उसमें लिखा था—'अपने समुद्र तट के समस्त नगर अंग्रेजों के हवाले कर दो, और २४ घण्टे के अन्दर जवाब दो।'

९ फरवरी को अंग्रेजी फौजें टीपू की ओर बढ़ने लगी। टीपू युद्ध की तैयारी में न था। उसने सन्धि की बहुत चेष्टा की, पर वेलेजली ने कुछ भी ध्यान न दिया। जल और थल दोनों ओर से टीपू को घेर लिया गया था। गुप्त साजिशों से बहुत से सरदार फोड़े जा रहे थे। अंग्रेजों के पास कुल ३० हजार सेना थी।

प्रारम्भ में टीपू ने अपने विश्वस्त सेनापति पुर्णियाँ को मुकाबले को भेजा। पर वह विश्वासघाती था। वह अंग्रेजी फौज के इधर-उधर चक्कर लगाता रहा और अंग्रेजी सेना आगे बढ़ती चली आई। यह देख टीपू ने स्वयं आगे बढ़ने का इरादा किया। पर विश्वासघातियों ने उसे धोखा दिया और उसकी सेना को किसी और ही मार्ग पर ले गये। उधर अंग्रेजी सेना दूसरे ही मार्ग से रंगपट्टन आ रही थी। पता लगते ही टीपू ने पलटकर गुलशनाबाद के पास अंग्रेजी सेना को रोका। कुछ देर घमासान युद्ध हुआ। सम्भव था, अंग्रेजी सेना भाग खड़ी होती, पर उसके सेनापति कमरुद्दीन खाँ ने दगा दी, और उलटकर टीपू की ही सेना पर टूट पड़ा। इसमें अंग्रेज विजयी हुए।

इसी बीच टीपू ने सुना कि एक भारी सेना बम्बई की तरफ से चली आ रही है। टीपू वहाँ कुछ सेना छोड़ उधर दौड़ा, और बीच में ही उस पर टूट कर उसे भगा दिया। परन्तु उसके मुखबिर और सेनापति

सभी विश्वासघाती थे टीपू को वे बराबर गलत सूचना देते थे ज्यों ही टीपू लौटकर रंगपट्टन आया कि अंग्रेजी सेना ने शहर घेर कर आग बरसानी शुरू कर दी।

टीपू ने सेनाएँ भेजीं। पर सेनापतियों ने युद्ध के स्थान पर चारों ओर चक्कर लगाना शुरू कर दिया। अंग्रेज फतह कर रहे थे और टीपू को गलत खबरें मिल रही थीं। क्रोध में आकर टीपू ने तमाम नमकहरामों की सूची बनाकर विश्वस्त कर्मचारियों को दी और कहा—'उन्हें रात को ही कत्ल कर दो।' पर एक फर्राश की नमकहरामी से भण्डाफोड़ हो गया।

उसी दिन टीपू घोड़े पर चढ़कर किले की फसीलों का निरीक्षण करने निकला और एक फसील पर अपना खेमा लगवाया। कहते हैं ज्योतिषियों ने उससे कहा था—आज का दिन दोपहर के ७ घड़ी तक आपके लिए शुभ नहीं।

उसने ज्योतिषियों की सलाह से स्नान किया, और हवन-जप भी किया और दो हाथी—जिन पर काली झूलें पड़ी थीं—और जिनके चारों कोनों में सोना, चाँदी, हीरा, मोती बँधे थे—ब्राह्मण को दान दिये। गरीबों एवं मोहताजों को भी अटूट धन दिया। इसके बाद वह भोजन करने बैठा ही था कि सूचना मिली—किले के प्रधान संरक्षक अब्दुलगफ्फार को कत्ल कर डाला गया है। टीपू तत्काल उठ खड़ा हुआ और घोड़े पर सवार हो, स्वयं उसकी जगह चार्ज लेने किले में घुस गया। कुछ खास-खास सरदार साथ में थे।

उधर विश्वासघातियों ने सैयद गफ्फार को खत्म करते ही सफेद रूमाल हिलाकर अंग्रेजी सेना को संकेत कर दिया। वह देख, टीपू के सावधान होने से प्रथम ही दीवार के टूटे हिस्से से शत्रु के सैनिक किले में घुस गये।

एक नमकहराम सेनापति मीर सादिक यह खबर पा सुलतान के पीछे गया और जिस दरवाजे से टीपू किले में गया था, उसे मजबूती से बन्द करवाकर दूसरे दरवाजे से मदद लेने के लिए निकल गया। वहाँ वह पहरेदारों को यह समझा रहा था कि मेरे जाते ही दरवाजा बन्द कर लेना और हरगिज न खोलना, कि एक वीर ने, जो उसकी नमकहरामी को जानता था, कहा—'कम्बख्त मलऊन। सुलतान को दुश्मनों के हवाले करके

यों जान बचाना चाहता है। ले, यह तेरे पापों की सजा है।' कहकर खट् से उसके टुकड़े कर दिये।

पर टीपू अब फँस चुका था। जब वह लौटकर दरवाजे पर गया तो उसी के बेईमान सिपाही ने दरवाजा खोलने से इन्कार कर दिया। अंग्रेजी सेना टूटे हिस्से से किले में घुस चुकी थी। हताश हो, वह शत्रुओं पर टूट पड़ा। पर कुछ ही देर में एक गोली उसकी छाती पर लगी। फिर भी वह अपनी बन्दूक से गोलियाँ छोड़ता ही रहा। पर, फिर और एक गोली उसकी छाती मे आकर लगी। घोड़ा भी घायल होकर गिर पड़ा। उसकी पगड़ी भी जमीन पर गिर गई। तब उसने पैदल खड़े होकर तलवार हाथ मे ली। कुछ सैनिकों ने उसे पालकी में लिटा दिया। कुछ लोगों ने सलाह दी कि अब आप अपने को अंग्रेजों के सुपुर्द कर दें। पर उसने अस्वीकार कर दिया। अंग्रेज सिपाही नजदीक आ गये थे। एक ने उसकी जड़ाऊ कमर-पेटी उतारनी चाही, टीपू के हाथ में अब एक तलवार थी। उसने उसका भरपूर हाथ मारा और सिपाही के दो टूक हो जा पड़े। इतने में एक गोली उसकी कनपटी को पार करती निकल गई।

रात को जब उसकी लाश मुर्दों में से निकाली गई तो तलवार अब भी उसकी मुट्ठी में कसी हुई थी। इस समय उसकी आयु ५० वर्ष की थी।

१२
बाबर

बाबर का आगमन भारत में मुगल साम्राज्य की नींव जमाने का कारण हुआ और मुगलों का आगमन भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना का कारण हुआ। उस समय चित्तौड़ की गद्दी पर प्रबल पराक्रमी राणा सागा उपस्थित थे। उन्होंने १८ बार दिल्ली के पठान बादशाहों को विजय किया था।

बाबर एक उद्यमी और साहसी योद्धा था। वह दयालु और उदार भी था। वह तैमूर की छठी पीढ़ी में था और इसलिए दिल्ली को अपनी

सम्पत्ति समझता था। उसने सरहिन्द और बुखारा प्राप्त करने की बड़ी चेष्टा की पर विफल रहा। तब उसने काबुल फतह किया और वहाँ राज किया। इसके बाद उसने भारत पर धावा बोल दिया और अनायास ही दिल्ली तथा आगरा उसके हाथ आ गये। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने पुत्र हुमायूँ को आस-पास के प्रान्त विजय करने को भेज दिया और शीघ्र ही बयाना, धौलपुर, ग्वालियर और जौनपुर उसके अधिकार में आ गये। उसकी इस सफलता में उसके हिन्दू वजीर रेमीदास का भारी श्रेय है जो अत्यन्त बुद्धिमान, चतुर और दूरदर्शी आदमी था।

अन्त में उसे राणा सांगा के साथ युद्ध करना पड़ा। कनुआ के मैदान में मुठभेड़ हुई और बाबर को सांगा से हार खानी पड़ी और सन्धि कर साँगा को कर देने का प्रण किया। परन्तु इसी बीच में कुछ विश्वासघातियो के कारण साँगा को हार खा कर भागना पड़ा और बाबर विजयी होकर लौट आया। इस विजय के उपलक्ष में जो उत्सव मनाया गया था उस समय शाही तम्बू के सामने खून की नदी बह निकली थी।

बाबर को दिल्ली के तख्त पर बैठना नसीब नही हुआ, वह शीघ्र ही मर गया। उसका पुत्र हुमायूँ भी जीवन-भर युद्ध करता और इधर-उधर भागता फिरा। इस बीच में एक बार पठान राजा शेरशाह और उसके एक हिन्दू सरदार हेमू ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। हुमायूँ काबुल को भाग गया। शेरशाह ने बहुत सराएँ बनवाई, जिनमें एक विवाहित गुलाम रखा जाता था। उसका यह काम था कि मुसाफिरों के लिए भोजन बनावे, पीने को ठण्डा पानी और नहाने को गर्म पानी का प्रबन्ध रखे। सराय मे प्रत्येक मुसाफिर के लिए एक चारपाई चादर सहित मिलती थी। इन सबका खर्च सरकारी खजाने से मिलता था। बहुत-सी सराएं सेठों और साहूकारों ने भी बनवाई थी जिनमें बाग, तालाब और आराम की बहुत-सी चीजे थी।

इसी बादशाह के राज्य में तौल नियत की गई। बाट बनाये गये। गज नियत किये गये और सिक्के ढाले गये। इससे पहले प्रायः कपड़ा बालिश्तों से तथा जिन्स नजर से अन्दाज करके बिकती थी। वह प्रजा का हित करने की चेष्टाएँ करता था। एक बार उसने चित्तौड़ के राणा संग्राम

सिंह पर धावा बोल दिया, परन्तु भारी हार खाकर अन्तिम दिनों वह बंगाल में रहा और वहीं मरा।

उसके मरने पर देश भर में अशान्ति मच गई। उस समय एक फकीर शाहदोस्त रहते थे। उन्होंने अपने एक चेले को हुमायूँ के पास एक जूता और एक चाबुक लेकर भेजा। हुमायूँ ने फकीर का मतलब समझ लिया और उसने फिर से भारत पर चढ़ाई की तैयारियाँ कीं। शाह फारस से उसने सहायता माँगी। हुमायूँ ईरान, काबुल घूम-फिर कर १५ हजार सेना इकट्ठी करके फिर भारत में आया और दिल्ली तथा आगरे पर कब्जा कर लिया, परन्तु ६ मास बाद ही मर गया।

उस समय उसका पुत्र अकबर सिर्फ १३ वर्ष का था, और राज्य की परिस्थिति अनिश्चित थी। दिल्ली और आगरे को छोड़कर उसके पास और कुछ न था। फिर सिकन्दर और हेमू उसके विरुद्ध तैयार हो रहे थे। बाबर ने अपने मित्र बैरम खाँ के हाथ में अकबर को सौंपा। बैरम खाँ एक वीर सेनापति और उच्च वंश का तुर्क था। अकबर ने उसे प्रधानमन्त्री और संरक्षक बनाया। बैरम ने पानीपत के मैदान में सिकन्दर और हेमू की संयुक्त सेना को पराजित किया। हेमू कत्ल कर दिया गया और सिकन्दर को पंजाब में पराजित कर क्षमादान दे बंगाल जाने दिया गया। दो वर्ष बाद अकबर ने स्वाधीन होकर राज्य सँभाला और बैरम को मक्का भेज दिया, पर वह मार्ग ही में मार डाला गया।

उस समय अकबर की शक्ति डाँवाडोल थी। पंजाब, ग्वालियर, अजमेर, दिल्ली और आगरा तो उसके अधीन हो गये थे पर बंगाल में अफगानों की शक्ति अभी शेष थी। उसकी फौज में भी जो सिपाही थे, अधिकांश तुर्की लुटेरे थे जो लूट-मार के लालच से ही सेना में भरती हुए थे। जो सेनापति थे वे अपने-अपने अधिकारों को बढ़ाने की चिन्ता में ही रहते थे। जो सरदार जिस प्रान्त में शासक बनाकर भेजा गया, वह वहाँ का हाकिम बन बैठा। पर अकबर बड़ा मुस्तैद सिपाही था। वह रात-दिन कूच करके उनके सावधान होने से प्रथम ही उन्हें धर दबाता। इस प्रकार ७ वर्ष इसे अपनी अनुयाइयों को दबाने में लगे। अन्त में काबुल के शासक ने पंजाब पर धावा किया, जो उसका भाई था, परन्तु वह हरा कर भगा

दिया गया।

अब आन्तरिक विवादों को मिटाकर वह राजपूतों को दबाने के लिए झपटा। उसकी नीति पूर्ववर्ती मुसलमान शासकों से भिन्न थी। वह सिर्फ यही चाहता था कि राजे अपने राज्य पर बने रहें, केवल उसकी अधीनता स्वीकार करलें।

आमेर का राजा उसका मित्र बन गया और अपनी पुत्री अकबर को ब्याह दी। अकबर ने उसके पुत्र को प्रधान सेनापति बना दिया। जोधपुर और अन्य राजपूत शक्तियाँ थोड़ा विरोध करके उसके अधीन हो गई। ये सब लोग उसके सहायक और मित्र बन गये और अकबर ने इन हिन्दू राजवंशों से अपने वंश में रिश्तेदारियाँ करलीं। केवल चित्तौड़ ही अकेला रह गया था, जिसने अब तक विरोध किया और अधीनता स्वीकार नहीं की।

अकबर ने स्वयं चित्तौड़ को घेरा। राणा उदयसिंह पर्वतों में चले गये और राठौर जयमल ने युद्ध किया।

भयानक युद्ध के बाद चित्तौड़ का पतन हुआ। सहस्रों स्त्रियाँ जल गई और बचे हुए योद्धा केसरिया बाना पहनकर जूझ मरे। महाराणा प्रताप ने २२ वर्ष अकबर से युद्ध किया और चित्तौड़ के अतिरिक्त सब प्रदेश छीन लिया। अब राजधानी उदयपुर बसा दी गई।

अकबर बड़े जीवट का मर्दाना आदमी था। जैसी उसकी बुद्धि थी वैसा ही उसका साहस और पराक्रम था। मुगलों के जमाने में मस्त हाथी फौज के जरूरी भाग थे। बहुधा इन हाथियों से बड़े-बड़े काम निकल आते थे। खासकर नदी पार करने में या किले के फाटक तोड़ने में ये बड़े काम आते थे। परन्तु इन पर सवार होना और इन्हें काबू में रखना बड़ा ही खतरनाक था। महावत को पल-पल पर जान जोखिम का खतरा था। जब कभी कोई महावत ऐसे हाथी पर सवार होकर जंग को जाता था तो उसकी औरतें सुहाग के सब चिह्न उतार कर विधवा का रूप धारण कर लेती थीं। अच्छा खासा मातम मनाया जाता था और उसके जीते आने की बहुत कम आशा रहती थी।

राजा को शाही लश्कर ने घेर रखा था परन्तु किला किसी तरह फतह

नहीं होता था। बादशाह ताकीद पर ताकीद भेज रहा था। अनन्त वह स्वयं भेष बदल कर मुहिम पर पहुँचा। उसने देखा, किले के मजबूत फाटक को तोड़ना मुश्किल हो रहा है। जो मस्त हाथी फाटक पर हूला जा रहा है वह महावत के काबू में नहीं आ रहा है, किले की सफीलो पर से गर्म तेल और तीर बरस रहे हैं।

बादशाह ने यह देखा और फुर्ती के साथ झपट कर घोड़ों और प्यादो की कतार में घुस गया। वह बिजली की तरह उस कालरूप हाथी के बगल से निकल कर उसके विशाल दाँतों पर पैर रख गर्दन पर सवार हो गया। इसके बाद महावत के हाथ से अकुश ले हाथी को फाटक पर हूल दिया। वेदना से चिंघाड़ता हुआ हाथी फाटक पर टूट पड़ा और उसके एक बार ही धकेलने मे फाटक अर्रा कर टूट गया। नदी के प्रवाह की भाँति सेना किले में घुस गई और किला फतह हो गया। बादशाह इस गड़बड़ी मे गायब होकर चुपचाप अपने खेमे में आ गया।

बुरहानपुर और असीरगढ़ के किले अजेय थे। बादशाह अकबर स्वयं असीरगढ़ को ६ मास तक घेरे पड़ा रहा, परन्तु किलेदार मलिक मुस्तफा ने बड़ी वीरता से बादशाह का मुकाबिला किया। किले पर न तो किसी हथियार की मार ही काम दे सकती थी और न किसी तरह उसकी फसीलो तक पहुँचना ही सम्भव था।

धीरे-धीरे क़िले में रसद की कमी होने लगी। सबसे ज्यादा बात तो पानी की थी। पानी बिल्कुल खत्म हो चुका था और सिपाहियों को भूख के साथ प्यासे मरने तक की नौबत आ गई थी। किले में बड़ी बेचैनी फैली।

मलिक मुस्तफा वीर तो था ही, साहसी, दूरदर्शी तथा उन्नत मन भी था। उसने एक साहसपूर्ण कार्य किया। उसने फाटक खोल दिया और अकेला केवल पाँच सेवको को साथ लेकर बाहर निकला और सीधा शाही लश्कर की ओर चला।

पहरे वालों ने उसे घेर लिया। मलिक ने निर्भय होकर कहा—'मुझे शाहनशाह के पास ले चलो।'

सिपाही उसे बादशाह के पास ले गए। उसने आदर से वीर शत्रु का

स्वागत किया और आने का कारण पूछा।

मुस्तफा ने कहा—'और तो सब खैराफियत है सिर्फ पानी सूख गया, किले में आज रात भर का पानी बाकी है, आप बड़े भारी शाहंशाह हैं। मेरे सब दोस्त-सलाहकार इस मुहिम में मारे गये, इसलिए मैं आप ही से मशवरा करने आया हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए।'

बादशाह ने कहा—'आपने दुश्मन पर दोस्त की तरह भरोसा किया है, इसी तरह खुदा पर भरोसा कीजिए। आप कहते हैं, रात भर के लिए पानी है। जिसके बीच में रात, उसकी फिर क्या बात! देखिये खुदा को क्या मंजूर होता है?'

मुस्तफा मलिक किले में लौट आया। बादशाह की बात से उसे बहुत धीरज बँधा। ईश्वर की कृपा से रात में ऐसी घनघोर वर्षा हुई कि किले के सब खत्ते तालाब पानी से भर गये और शाही लश्कर उस आँधी-पानी में बिल्कुल तबाह हो गया। बादशाह ने सुबह की नमाज पढ़ी और ईश्वर से दुआ की, 'ऐ खुदा, तू मुस्तफा की ओर है तो बन्दा आज रुख्सत होता है।'

बादशाह ने उसी समय मुहासिरा उठाने की आज्ञा दे दी।

अहमदनगर की चाँद बीबी ने भी बड़ी वीरता से तलवार लेकर सम्राट् अकबर के दाँत खट्टे किये थे। परन्तु निरन्तर लड़ने तथा किले में घिर जाने और रसद की कमी से उसे आत्मसमर्पण करना ही पड़ा। परन्तु वह अपने अटूट स्वर्ण भण्डार को बादशाह के हाथों सौंपना नहीं चाहती थी। सोच-विचार कर उसने एक अद्भुत युक्ति काम में ली। उसने अपने तमाम सोने को गलाकर चार-चार सेर वजन के गोले ढलवा लिये और उन पर यह वाक्य खुदवा दिया कि यह गोला उसी की मिल्कियत है जो इसे पाए, दूसरा कोई आदमी उससे इसे नहीं छीन सकेगा।

इन गोलों को तोप में भरवा कर उसने बादशाह की सेना पर फायर करा दिए और आत्मसमर्पण कर दिया।

खेत से लौटते समय एक घसियारे को एक गोला मिल गया। वह नहीं जानता था कि यह ठोस सोने का गोला है, वह उसे उठाकर अपने घर ले आया। उसका लड़का उस गोले को पाकर बहुत खुश हुआ और उसके

साथ गाव भर के बालक उस गोले से खेलते रहे फिर उसने शहर मे जाकर उसे किसी बर्तन के बदलने के लिए कसेरे को दिया।

कसेरा उसे देखकर डर गया। उसने कहा यह तो सरकारी गोला है तुझे कहाँ मिला ?

परन्तु वह गोला ठोस सोने का है, यह उसने भी नहीं जाना। उसने घसियारे को कोतवाल के सुपुर्द कर दिया।

धीरे-धीरे यह मामला बहादुरखाँ के फौजदार के सामने पहुँचा। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि गोला ठोस सोने का है, और जब उसने उसकी इबारत पढ़ी तो उसको लालच आया और कहा—'यह गोला तो हमीं ने पाया है और यह हमारा है।' गोला बहादुरखाँ ने छीन लिया। घसियारा बेचारा जान बचाकर भागा, उसने समझा, जान बची लाखो पाये। वह अब भी नहीं समझ सका कि गोला सोने का था।

किन्तु यह खबर छिपी न रही और घूमते-फिरते बादशाह सलामत के कानों तक पहुँची। बादशाह ने बहादुर खाँ और घसियारे को अपने सम्मुख बुलाकर सब किस्सा सुना। गोला घसियारे को दिलाया और बहादुर खां का रुतबा कम कर दिया।

बंगाल में दाऊद खाँ अफगान की अलमदारी अब भी थी। समय पाकर अकबर ने आगमदल के युद्ध में सदा के लिए उनका भी नाश कर दिया। राजा टोडरमल बंगाल के हाकिम बने। वे प्रथम श्रेणी के सेनापति और प्रबन्धक थे। मुसलमान बादशाह का यह पहला हिन्दू सरदार था। इसके बाद उसने काश्मीर, सिन्धु और कंधार को फतह किया था। इन प्रान्तों को राजा बीरबल ने फतह किया और वहीं काम भी आये।

जिस समय दिल्ली मे बैठकर अकबर समस्त उत्तर भारत को अधिकृत कर रहा था, उस समय दक्षिण में एक प्रबल हिन्दू राज्य था जो विजय नगर का था। यहाँ के राजा के पास ७ लाख सेना थी और वहाँ का वैभव अद्भुत था। उस प्रबल राज्य को पड़ोसी मुसलमान राज्य ने मिलकर तालीकोट के मैदान में विजय कर लिया और बड़ी क्रूरता से हिन्दुओं का विध्वंस किया। फिर वे स्वयं परस्पर लड़ने लगे। अवसर पाकर अकबर ने अपने पुत्र मुराद को सेना लेकर दक्षिण में भेजा और शीघ्र ही अहमदनगर,

बराड़ और खानदेश अधिकृत कर लिय।

उसने अपनी चतुराई और विलक्षण राजनीति से शक्तिशाली राजपूतो को मित्र बना लिया। उसने राजपूत सरदारों की अधीनता में राजपूतो की सेनाएँ भेजी और उन्हें परास्त किया। उसने गुजरात को विजय किया। फिर बुरहानपुर और दौलताबाग तक फतह करता चला गया और दक्षिण मे अपना पूरा दबदबा पैदा कर लिया। इसके बाद उसने काश्मीर को फतह किया जिसमें उसको कुछ भी कष्ट न उठाना पड़ा। उसके बाद उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और बड़ी कठिन लड़ाई के बाद उसे विजय किया। इसके बाद उसने बंगाल और सिन्ध का इलाका फतह किया। इसी बीच में बादशाह के पुत्र सलीम ने विद्रोह किया। पर वह कैद कर लिया गया। इसके बाद उसने फतहपुर सीकरी और आगरा बनवाया। क्योंकि मथुरा साम्राज्य के विद्रोह का एक मजबूत अड्डा था। उसने आगरे के महल और किला ताम्बे का बनाने का इरादा किया था परन्तु कारीगरों के सहमत न होने से लाल पत्थर के बनवाये।

अकबर को छोटे-छोटे विद्रोहों को दबाने में बारम्बार बहुत परिश्रम उठाना पड़ा। इन विद्रोहियों को पकड़कर बहुधा इनके सिर काट डाले जाते थे। ये सिर २४ घण्टे शाही दालान में रखे रहकर मार्ग मे दरख्तो या मीनारों पर लटका देने को भेज दिये जाते थे। मीनारें खास तौर पर इसी काम के लिए बनाई गई थी। हर एक मीनार में १०० सिर आ सकते थे। ये सिर अपनी बड़ी-बड़ी मूँछों, लाल रंग और मुड़े हुए सिर से पहचाने जाते थे। आगरे से दिल्ली जाती बार रास्ते मे सड़कों पर वध किये इतने सिर लटके रहते थे कि बदबू के मारे मार्ग चलने वालों को नाक पर कपड़ा देकर रास्ता तय करना पड़ता था।

अकबर ने तोपखाने की उन्नति की और फिरंगी तोपची रक्खे। एक बार उसने तोपों की चाँदमारी देखने की इच्छा प्रकट की। प्रधान तोपची को बुलाया गया। जमना पर चादर तानी गई, पर तोपची ने जान-बूझकर गलत गोला चलाया। बादशाह ने क्रुद्ध होकर उसे सम्मुख बुलाया और कहा—

'क्या तुम ऐसे ही निशानेबाज हो? तुम्हारी तो बहुत तारीफ सुनी

थी।

तोपचा ने अर्ज की—'खुदावन्द, बन्दा निशाने को देख नहीं सका, यदि शराब पी होती तो सम्भव था निशाना खाली न जाता।'

बादशाह ने शराब लाने का हुक्म दिया। तोपची ने सारी बोतल चढ़ा ली और फिर मूंछें पूंछता हुआ बोला—'हुजूर, चादर हटा ली जाय और एक लकड़ी पर एक बर्तन रख दिया जाय।'

यही किया गया। तोपची ने ऐसा गोला मारा कि लकड़ी और बर्तन के धुर्रे उड़ गये। बादशाह ने तब से फिरंगियों को अपने पीने के लिए शराब खींचने की आज्ञा दे दी।

वह बहुधा कहा करता था—फिरंगी और शराब साथ ही साथ पैदा हुए हैं। शराब के बिना उनकी वही दशा होती है जो पानी के बिना मछली की।

अकबर के दरबार में सुनार, तोपची, डाक्टर आदि बहुत से फिरंगी नौकर थे। उन्होंने अर्ज की कि हमें एक पादरी दिया जाय। तब अकबर ने गोआ से पादरी बुलवाया और आगरे में गिरजा बनाने की आज्ञा दे दी।

बादशाह ने अपनी पुत्री की शादी एक अमीर के साथ कर दी थी। कुछ दिन बाद वह विद्रोही हो गया और उसे प्राणदण्ड दिया गया। उसी समय से उसने यह कानून बनाया कि शाही खानदान की लड़कियों की शादियाँ न की जायें।

आगे चलकर अकबर के इस कानून को औरंगजेब ने अपनी बेटी की शादी करके तोड़ा। शाहजादियों की शादी न होने से मुगल खानदान में बहुत से भीतरी गुल खिलते रहे।

अकबर पठानों से सदा सतर्क रहता था और उसका हुक्म था कि किसी पठान को चार हजार रुपये वार्षिक से अधिक वेतन न दिया जाय, न सूबे का अधिकारी बनाया जाय। बादशाह ने यह भी नियम बनाया था कि दरबार में सिवा शाहजादों और एलचियों के सब सरदार खड़े रहें। यह नियम मुगल दरबार में अन्त तक बना रहा। इसके बाद उसने 'दीने इलाही' नामक मजहब चलाया।

बादशाह को शिकार का बहुत शौक था। एक बार वह एक शेर के

पीछे दौड़ते-दौड़ते बीहड़ जंगल में घुस गया। अन्त में एक स्थान पर थककर सुस्ताने लगा। उसने देखा कि एक अगरवानी रंग का साँप पेड़ से उनकी तरफ आ रहा है। बादशाह ने एक तीर से उसे बींध दिया। तीर साँप को मारकर बादशाह के पास आ गिरा। इतने ही में एक हिरन चौकड़ी भरता उधर से गुजरा। बादशाह ने वही तीर उठाकर हिरन पर छोड़ दिया। यद्यपि तीर ने हिरन को छुआ ही था कि हिरन मर गया। बादशाह यह देख कर आश्चर्यचकित हो गया। इतने में शिकारी लोग आ पहुँचे। बादशाह ने उन्हें हुक्म दिया कि हिरन को यहाँ घसीट लाओ। उन्होंने हिरन को छुआ ही था कि उसके बन्द-बन्द अलग हो गये। यह देख शिकारी बोले—जहाँ-पनाह, यहाँ से जल्दी भागिए, वरना इस जहरीले साँप की हवा से हम सब मर जावेंगे। हुजूर हवा के रुख के विरुद्ध बैठे हैं यही खैरियत हुई है।

बादशाह ने उस साँप को एक बोतल में बन्द करके रखने का हुक्म दिया और एक अलमर नियत किया कि जब बादशाह चाहे, जहर तैयार करे। तब से एक महकमा इसी जहर का बन गया जो कई भाँति के विष तैयार रखते थे। यह विष तब काम में लाए जाते थे जब बादशाह किसी सरदार को गुप्त रीति से मारने के काम मे लाते। यह विष या तो वस्त्रों में लगाकर उसको दरबार में पहना दिया जाता था, या यदि वह दूर पर हो तो भेज दिया जाता था जिसे सम्मान प्रदर्शन करने के लिए उसे पहनना पड़ता था और उसके प्राण चले जाते थे। मुगल खानदान में इस रीति से प्राण नाश करने का रिवाज पीछे तक जारी रहा।

इस महान बादशाह की मृत्यु ऐसी ही एक दुर्घटना से हुई। बादशाह यदि अपने हाथ से किसी को पान देते थे तो वह उसकी गहरी प्रतिष्ठा समझी जाती थी। इस प्रतिष्ठा को पाकर कुछ ही मिनटों में बहुत से सरदार जीवन-लीला समाप्त कर चुके थे। बादशाह के पानदान में तीन खाने थे। जिनमें एक में पान, दूसरे में सुगन्धित गोलियाँ थीं जिन्हें बादशाह स्वयं खाता था, तीसरे में वैसी ही सुगन्धित गोलियाँ थी, परन्तु वह हलाहल जहर होती थी। बादशाह प्रसन्न होने पर एक खुशबूदार गोली देता—पर जिसे मारना होता, उसे जहर की गोली देता था। एक बार किसी को जहर की गोली देते हुए भूल से वह स्वयं ही गोली खा गया और इस प्रकार अजमेर में

उसकी मृत्यु हुई। इसने ४६ वर्ष ७ मास ३ दिन राज्य किया और अनेक मुल्क विजय किये तथा मुगल सल्तनत कायम की।

उसके अन्तिम दिन अशान्ति ही में कटे। इसके सभी पुत्र शराबी और लम्पट थे। शराब ही के कारण मुराद दान्याल की मृत्यु हुई। आमेर का मानसिंह चाहता था, उत्तराधिकारी के रूप में उसके भानजे खुसरू को तख्त पर बैठाया जाय। मगर अकबर सलीम को बादशाह बनाना चाहता था।

अकबर ने आगरे से तीन फर्लाङ्ग के फासले पर एक विशाल मकबरा बनाया और एक भारी बाग लगाया जिसका नाम सिकन्दरा रखा। यह मकबरा बहुत ऊँचा और भारी गुम्मद वाला था। यह संगमरमर और बहुमूल्य जवाहरात से जड़ा हुआ था। तमाम छत पर गिलिट का काम बहुत कारीगरी का किया हुआ था और भाँति-भाँति के रंग से दीवारें रंगी थीं। बाग बहुत बड़ा और सफीलों से घिरा था, जगह-जगह बैठने के स्थान बने थे। बाग के बड़े द्वार पर सलीब कुँवारी मरियम और स्पेर इगनेस के चित्र थे। गुम्मद की छत पर फरिश्तों के, बलियों के और दूसरे कई प्रकार के चित्र थे एवं कई एक ऊदसोज थे—जिनमें प्रति दिवस ऊद जलाया जाता था। इस कमरे में चारों तरफ भिन्न प्रकार के पत्थर लगे थे। मकबरे के बाहर बाग में बहुत से मुल्ला कुरान पढ़ते थे। खुद गुम्मद के बाहर की तरफ सबसे ऊँची चोटी पर एक गुम्मद था और इस पर गिलट का बना हुआ दीनार था। सन् १६९१ ई० में जिन दिनों औरंगजेब शिवाजी से लड़ रहा था, पत्थर और सुनहरी काम चुरा लिया और बादशाह की हड्डियों को मकबरे में से निकालकर जला डाला। बाद में औरंगजेब ने उसकी सब चित्रकारी पर सफेदी करा दी थी, क्योंकि वह चित्रकारी को इस्लाम के विरुद्ध समझता था।

१३
नवाब

दिल्ली इस्लाम की परम प्रतापी राजधानी अवश्य रही, परन्तु इस्लामी नजाकत, जो ऐयाशी और मद से उत्पन्न हुई थी, उसका जहूर तो अवध की

राजधानी लखनऊ ही मे नजर आया आज भी लखनऊ अपनी फसाहत और नजाकत के लिए मशहूर है। लखनऊ के नवाबों के एक से एक बढ़कर मजेदार और आश्चर्यजनक कारनामे सुनने को मिलते हैं। वह बाँकपन, वह अल्हड़पन, वह रईसी बेवकूफ़ी दुनिया में सिर्फ लखनऊ ही के हिस्से में आई थी। आज भी वहाँ सैकड़ों नवाब जूते चटकाते फिरते हैं। यद्यपि अंग्रेजी दौर-दौरे ने लखनऊ को पूरा ईसाई बना दिया, पर कुछ बुड़्ढ़ अब भी गज-भर चौड़े पाँयचे का पायजामा और हल्की दुपल्ली टोपी पहनकर उसी पुराने ठाठ से निकलते हैं। ताजियेदारी के पुराने शाही जल्बो के दिन मानो लखनऊ कुछ देर के लिए भूल जाता है कि अब हम इक्कीसवी सदी के द्वार पर हैं।

भारत के हृदय में अवध स्थित है। भारत में अंग्रेजों के आगमन के समय भी इस भूमि में अनेक उपयोगी आकर्षण थे। बाँस के जंगलों मे लहराते हुए शोभायमान दृश्य आम्रवृक्षों की घनी शीतल छाया और हरी-भरी फसलों से लहलहाती हुई शस्य श्यामला को अत्यन्त वैभवशाली और मनोरम बनाया था। इमली के वृक्षों की घनी छाया से, नारंगियों की सुगन्ध से, अंजीरों के मनोहारी रंगों से और पुष्प रेणुओं से सर्वत्र महकती हुई मधुर सुगन्ध से इस प्रवृत सुन्दर भूमि के वैभव में चार चाँद लग गए थे।

लखनऊ की नवाबी की नींव नवाब सआदत खाँ बुर्हानुलमुल्क ने डाली थी। उसका असली नाम मिरजा मुहम्मद अमीन था। उन दिनों दिल्ली के तख्त पर मुहम्मदशाह रंगीले मौज कर रहे थे। अवध में तब शेखों ने बड़ा ऊधम मचा रक्खा था। उनकी देखा-देखी दूसरे जमींदार भी सरकश हो उठे थे। जो कोई अवध का सूबेदार बनकर जाता, उसे ही मार डालते थे। इसलिए बादशाह किसी जबरदस्त आदमी की तलाश में थे। मिरजा साहब का दिल्ली दरबार में बड़ा भारी दबदबा था। यहाँ तक कि स्वय बादशाह सलामत भी इससे सशंक रहते थे। वे इन्हें दरबार से हटाना चाहते थे, और अन्त में अवध की सूबेदारी देकर उन्होंने इन्हें दूर किया।

बादशाह ने मिर्जा साहब को अवध की सूबेदारी और खिलअत तो दे दी थी, पर फौज का कोई भी बन्दोबस्त न था। मिर्जा साहब ने हिम्मत

न हारी। दिल्ली के आवारा और बेकार मुसलमान युवकों को बटोरकर संगठित किया और कहा—क्यों पड़े-पड़े बेकार जिन्दगी बरबाद करते हो? खुदा ने चाहा तो अवध पर दखल करके मजा करेंगे।

कुछ ही दिनों में हजारों आदमी जमा हो गये। कुछ तोपें और हथियार शाही शस्त्रागार से मिल गये। इस फौज को दिल्ली से अवध तक ले जाने और सामान के लिए बैलगाड़ी खरीदने को मिरजा ने अपनी बेगम के जेवर तक बेच डाले।

जब मिरजा इस ठाठ से चले, तो रास्ते में आगरे के सूबेदार ने इनकी खातिरदारी करनी चाही। पर आपने कहा—जो रुपया मेरी खातिर-तवाजे में खर्च करना चाहते हो, मुझे नकद दे दो, क्योंकि रुपये की मुझे बड़ी जरूरत है।

आगरे के सूबेदार ने यही किया। वहाँ से बरेली पहुँचे, तो वहाँ के सूबेदार से भी दावत के बदले रुपया लेकर फर्रुखाबाद आये। वहाँ नवाब ने कहा—लखनऊ के शेख बड़े लड़ाके और अवध के आदमी भारी सरकश हैं। आप एकाएक गंगा पार न कर पहले आस-पास के जमींदारों और रईसों को मिला लें, तब सबकी मदद लेकर लखनऊ पर चढ़ाई करें।

मिर्जा ने यही किया और जब वे धूमधाम से लखनऊ पहुँचे और शेखों को अपने आने की सूचना दी, तो वे इनकी सेना से डर गये और कहा—'आप गोमती के उस पार मच्छी भवन में डेरा डालिये।'

मच्छी भवन को अनायास ही दखल हुआ देखकर मिर्जा बहुत खुश हुए, क्योंकि उन्हें आशा न थी कि बिना रक्त-पात हुए सफलता मिल जायेगी।

नवाब ने अपने सुप्रबन्ध और चतुराई से थोड़े ही दिनों में सूबे की आमदनी सात लाख रुपया कर ली और अट्ठाईस वर्षों तक बड़ी सफलता के साथ शासन किया। मृत्यु के समय खजाने में नौ करोड़ रुपये जमा थे।

उनकी मृत्यु पर उनके भानजे और दामाद मिर्जा मुहम्मद मुकीम अबुल मन्सूर खाँ सफदर जंग के नाम से वजीरे नवाब नियुक्त हुए। वे अपनी राजधानी लखनऊ से उठाकर फैजाबाद ले गये। यहाँ नवाब की सेना की छावनी थी। वे बुद्धिमान न थे, इसलिए उनका जीवन युद्ध और

झगड़ों में गया। उनके समय में शेख फिर सिर उठाने लगे। अन्य सरदार भी बागी हो गये।

उनमें एक गुण था कि वे एक नारी व्रती थे। उनकी पत्नी नवाब सदरजहां बेगम युद्ध-स्थल में भी छाया की भाँति उनके साथ रहती थी। वे सोलह वर्ष नवाबी भोगकर मरे।

उनके बाद मिर्जा जलालुद्दीन हैदर नवाब शुजाउद्दौला के नाम से मसनद पर बैठे। वे २४ वर्ष की आयु के वीर युवक थे, पर चरित्र ठीक न था। गद्दी पर बैठते ही किसी हिन्दू स्त्री का अपमान करने के कारण हिन्दू बिगड़ गये। परन्तु उनकी माता ने बहुत कुछ समझा-बुझाकर हिन्दू रईसों को शान्त किया। उन्होंने २२ वर्ष तक नवाबी की। उनके जमाने में दिल्ली की गद्दी पर बादशाह शाहआलम थे और बंगाल की सूबेदारी के लिए मीरकासिम जी जान से परिश्रम कर रहा था। शुजाउद्दौला बादशाह के वजीर और रक्षक थे। मीरकासिम ने उनसे सहायता माँगी थी। उस समय अंग्रेजी कम्पनी के अधिकारियो ने मीर जाफर को नवाब बनाया था। शुजाउद्दौला ने एक पत्र अंग्रेज कौंसिल को लिखकर बादशाह के अधिकार और उनके कर्तव्यों की चेतावनी दी। युद्ध हुआ भी, परन्तु अंग्रेजो की भेद-नीति से शुजाउद्दौला की हार हुई। इसमें नवाब को हर्जाने के पचास लाख रुपये और इलाहाबाद तथा कड़ा के जिले अंग्रेजों को देने पड़े। अंग्रेजों का एक एजेंट भी उनके यहाँ रक्खा गया, और दोनों ने परस्पर के शत्रु-मित्रों को अपना शत्रु-मित्र समझने का कौल-करार भी कर लिया।

नवाब को इमारतों का भी बड़ा शौक था। १० लाख रुपये के लगभग वे इमारतों पर भी खर्च किया करते थे। इनकी बनवाई इमारतें आज भी लखनऊ की रोशनी हैं। दौलतगंज या दौलतखाना, जहाँ नवाब स्वयं रहते थे, इन्द्र भवन के समान शोभा रखता था।

वह यह समय था जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कौंसिल में वारेन हैस्टिंग्ज का दौरा था और मुगल तख्त आलम के पैरों के नीचे डगमगा रहा था। हम कह आये है कि लखनऊ में भी कम्पनी का एक रेजीडेण्ट रहता था। उस समय तक रेजीडेण्टों को नवाब के सामने आने पर दरबार के नियमों का पालन करना पड़ता था और अन्य दरबारियों की भाँति

उन्हें भी अदब के साथ नवाब से मिलना पड़ता था। नवाब ने रेजीडेण्ट के रहने के लिए एक विशाल इमारत बनवाई थी।

एक बार नवाब घोड़े पर सवार होकर सैर को निकले, तो एक चूहा उनके घोड़े की टाप के नीचे दब गया। इस पर उन्होंने वहीं उसकी कब्र बनवा दी और एक बाग लगवाया जो 'मूसा बाग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह बाग नवाब को बहुत प्रिय था। इसी में बादशाह जानवरों की लड़ाई देखा करते थे।

उनकी मृत्यु के बाद उनके तीसरे पुत्र मिर्जा अनजीअली खाँ आसफ उद्दौला के नाम से गद्दी पर बैठे। वे प्रारम्भ में ७ वर्ष तक फैजाबाद में रहे। परन्तु बाद में लखनऊ चले आये और उसे ही राजधानी बनाया।

उनके लखनऊ आने से लखनऊ की तकदीर चेती। उस समय तक लखनऊ एक साधारण कस्बा था। आसफउद्दौला ने उसे अच्छा-खासा शहर बना दिया। उन्होंने कई मुहल्ले और बाजार भी बनवाये। वे बड़े शाह खर्च, स्वाधीन प्रकृति के और हिम्मत वाले शासक थे। उन्होंने सब पुराने दरबारियों को निकाल कर नयों को नियुक्त किया। उनके जमाने में दरबार की शानो-शौकत देखने योग्य थी। दाता तो अनोखे थे। उनकी शाह खर्ची से उनकी माँ ने अंग्रेजों से कह-सुनकर खजाना अपने अधिकार में कर लिया था, परन्तु नवाब ने लड़-भिड़कर ६२ लाख रुपये ले लिये। होली, दीवाली, ईद और मुहर्रम के अवसरों पर लाखों रुपये स्वाहा हो जाते थे। ब्याह-शादी की दावतों में ५-५, ६-६ लाख रुपया पानी हो जाता था। नवाब का अपना रोजाना का खर्च भी कम न था। उनके यहाँ १२०० हाथी, ३००० घोड़े, १००० कुत्ते, अगणित मुर्गियाँ, कबूतर, बटेर, हिरन, बन्दर, साँप, बिच्छू और भाँति-भाँति के जानवर थे, जिनके लिए लाखों की इमारतें बनी थीं और लाखों रुपये खर्च होते थे। उनके निजी नौकरों में २००० फराश, १०० चोबदार और खिदमतगार तथा सैकड़ों लौंडियाँ थीं। ४ हजार तो माली थे। रसोई का खर्च २-३ हजार रुपये रोजाना का था। सैकड़ों बावर्ची थे। शाहजादे वजीरअली की शादी में ३० लाख रुपये खर्च किये थे। वे सिर्फ दाता और उदार ही नहीं, एक योग्य शासक और गुणग्राही भी थे। मीर, सौदा और हसरत आदि उर्दू के नामी

कवि थे, जो साल मे सिर्फ एक बार दरबार में हाजिर होकर हजारों रुपये पाते थे। संगीत और काव्य के ऐसे रसिक थे कि एक पद पर हजारों रुपये बरसाये जाते थे।

अंग्रेज कम्पनी ने नवाब से कई बड़ी रकमें बार-बार तलब की थी उधर वारेन हैस्टिंग्ज को रुपये की बड़ी जरूरत थी। वह जहाँ तक बनता, रईसों से रुपया तलब करता था। विवश हो, नवाब ने चुनार के किले मे गवर्नर से मुलाकात की और बताया कि केवल सबसीडियरी सेना की मदद में ही मुझे एक बड़ी रकम देनी पड़ती है।

अन्त में गवर्नर ने नवाब से कहा कि स्वर्गीय नवाब शुजाउद्दौला अपनी मृत्यु के समय अपनी माँ और विधवा बेगम को बड़े-बड़े खजाने दे गया है और फैजाबाद के महल भी उन्हीं के नाम कर गया है तथा ये बेगमें अपनी असंख्य सम्बन्धियों, बाँदियों और गुलामों के साथ वहीं रहती भी है, अत: उनसे यह रुपया लिया जाये। आसफउद्दौला यह शर्त सुनकर बहुत लज्जित हुआ। लाचार उसे सहमत होना पड़ा और इसका प्रबन्ध अंग्रेज अधिकारी स्वयं कर लेंगे, यह निश्चय हो गया।

अंग्रेजों ने बहाना बनाया कि मृत नवाब शुजाउद्दौला अपनी इन बेगमों को अंग्रेजों की संरक्षता में छोड़ गये थे। परन्तु वे अंग्रेजो के ही विरुद्ध संरक्षता से मुक्त होने के लिए काशी के राजा के साथ मिल गई हैं। अत: अब उन पर काशी के राजा चेतसिंह के साथ विद्रोह में सम्मिलित होने का अभियोग लगाया गया और सर एलाइजाह इन्हें कहारों की डाक में बैठाकर इस काम के लिए कलकत्ता से तेजी के साथ रवाना हुआ। लखनऊ पहुँचकर उसने गवाहों के हलफनामे लिये और बेगमों का विद्रोह में सम्मिलित होने का फैसला करके कलकत्ता लौट गया।

फैजाबाद के महलों को अंग्रेजी फौजों ने घेर लिया और बेगमात को हुक्म दिया कि आप कैदी हैं, और आप तमाम जेवरात, सोना, चाँदी, जवाहरात दे दीजिए। जब उन्होंने इन्कार किया तो बाहर की रसद बन्द कर दी गई और वे भूखों मरने लगीं। अन्त में बेगमों ने पिटारों पर पिटारे और खजानो पर खजाने देना शुरू कर दिया। इस रकम का अन्दाजा एक करोड़ रुपये था।

इस घटना से अवध भर मे तहलका मच गया और आसफउद्दौला का दिल टुकड़े टुकड़े हो गया

इसके बाद हैस्टिंग्ज ने कर्नल हैनरी को नवाब के यहाँ भेजा और उसे बहराइच तथा गोरखपुर जिलों का कलक्टर बनवा दिया। उसने उन जिलों पर भयानक अत्याचार किये और तीन वर्ष के अन्दर ही पैंतालीस लाख रुपया कमा लिया। नवाब ने तंग होकर उसे बर्खास्त कर दिया। पर हैस्टिंग्ज ने फिर उसे नवाब के सिर मढ़ना चाहा। तब नवाब ने लिखा—'मैं हजरत मुहम्मद की कसम खाकर कहता हूँ कि यदि आपने मेरे यहाँ किसी काम पर कर्नल हैनरी को भेजा तो मैं सल्तनत छोड़कर निकल जाऊँगा।'

सर जान केमार तीसरे अंग्रेज गवर्नर थे। उन्होंने नवाब की पुरानी सन्धि को तोड़ डाला, और नवाब पर जोर दिया कि वे साढ़े पाँच लाख रुपया सालाना खर्च पर एक अंग्रेजी पलटन अपने यहाँ और रखें। नवाब 'सबसीडियरी' सेना के लिए पचास लाख रुपया सालाना प्रथम ही देता था। उसने इन्कार कर दिया। तब अंग्रेजों ने जबरदस्ती वजीर भाऊलाल को पकड़कर कैद कर लिया। पीछे जब सर जानेमशोर लखनऊ पहुँचे तो नयी फौज का खर्चा नवाब के सिर मढ़ दिया गया।

इस धींगा-मुस्ती से नवाब के दिल को सदमा पहुँचा। वह बीमार हो गया और दवा खाने से भी इन्कार कर दिया। इसी रोग में उसकी मृत्यु हो गई।

उन्होंने २३ वर्ष राज्य करके शरीर त्यागा। उनके बाद वसीयत पर मिर्जा वजीरअली गद्दी पर बैठे। पर उन्होंने एक ही वर्ष में सबकी नाराजगी दूर कर दी। अन्त में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उन्हें बनारस में नजरबन्द कर दिया। वहाँ उन्होंने विद्रोह की तैयारियाँ कीं, तो अंग्रेजों ने उन्हें कलकत्ता बुलाया। जब रेजीडेण्ट मि० चोरी उन्हें यह सन्देश देने गये तो बात बढ़ चली और नवाब ने अपनी तलवार निकालकर साहब को कत्ल कर दिया। मेम साहब भागकर बच गईं। नवाब नेपाल के जंगलों में भेष बदल मुद्दत तक फिरते रहे। अन्त मे एक राजा के विश्वासघात से गिरफ्तार किये गये और लखनऊ में उन पर कत्ल का मुकदमा चला। पर

कोई साक्षी न मिलने से फाँसी से बच गये। उसके बाद उन्हें कलकत्ता में पुन: कैद कर लिया गया, जहाँ २६ वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुए।

इनके बाद नवाब आसफ उद्दौला के भाई सआदत अली खाँ गद्दी पर बैठे। उस समय उनकी उम्र ६० वर्ष थी। वह बुद्धिमान, दूरदर्शी, ईमानदार और योग्य शासक थे। पर लोग उन्हें कंजूस कहा करते थे, क्योंकि वह आसफ उद्दौला की भाँति शाहखर्च न थे। लेकिन खर्च की जगह पीछे न हटते थे। वह अंग्रेज सरकार के बड़े भक्त थे; क्योंकि उनको अंग्रेज सरकार ने ही गद्दीनशीन किया था।

कम्पनी सरकार को इनसे कुल मिलाकर एक करोड़ रुपये से ऊपर धनराशि तथा इलाहाबाद का किला एक ही वर्ष के अन्दर मिल गया। एक शर्त यह भी थी कि कम्पनी के आदमियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी यूरोपियन अवध राज्य में न रहने पावे।

इसके बाद जब लार्ड वेलेजली गवर्नर होकर भारत आये, तब उन्होंने दो वर्ष बाद ही यह सन्धि तोड़ दी। उसने नवाब को अपनी सेना में कुछ संशोधन करने की भी अनुमति दी। उस संशोधन का अभिप्राय था कि मालगुजारी की वसूली आदि के लिए जितनी सेना दरकार हो, उसे छोड़कर शेष सब सेना तोड़ दी जाय और उसके स्थान पर कम्पनी के प्रबन्ध और नवाब के नाम से कुछ ऐसी सेनाएँ रक्खी जायें जिनका खर्चा ७५ लाख रुपये सालाना हो।

नवाब ने इसके उत्तर में एक तर्कपूर्ण और कड़ा उत्तर लिखा और अंग्रेज सरकार को इस प्रकार हस्तक्षेप करने के लिए मीठी फटकार दी।

इस पत्र को लार्ड वेलेजली ने तिरस्कारपूर्वक वापिस कर दिया और नवाब को लिख दिया कि कुछ पेंशन सालाना लेकर सल्तनत से हट जाओ या जो दो पलटनें नयी आ रही हैं, उनके खर्चे के लिए आधा राज्य कम्पनी के हवाले करो।

ये पलटनें भेज दी गई और रेजीडेण्ट को लिख दिया गया कि यदि नवाब चीं-चपड करे तो सेना द्वारा राज्य पर कब्जा कर लो। वेलेजली ने यह भी स्पष्ट लिख दिया कि नवाब की सैनिक शक्ति खत्म कर दी जाय और अवध की सारी सल्तनत के दीवानी और फौजदारी अधिकारी कम्पनी

के अधीन रखे जायें।

नवाब ने बहुत चिल्ल-पौं मचाई पर नतीजा कुछ न हुआ और नवाब को अपनी सल्तनत का आधा भाग जिसकी आय एक करोड़ पैंतीस लाख रुपये सालाना थी और जिससे वर्तमान उत्तर प्रदेश की बुनियाद पडी, सदा के लिए कम्पनी को सौंप देने पड़े।

इसके कुछ दिन बाद ही फर्रुखाबाद के नवाब को, जो अवध का सूबा था, एक लाख आठ हजार रुपया सालाना पेंशन देकर गद्दी से उतार दिया गया।

उनमें एक दुर्गुण भी था। वह शराबी और विलासी थे परन्तु पीछे से तौबा कर ली थी। उन्होंने लखनऊ में बहुत सुन्दर इमारतें बनवाईं। वह लखनऊ को एक खूबसूरत शहर की शक्ल में देखना चाहते थे। उन्होंने बहुत से मुहल्ले और बाजार भी बनवाये।

उनकी मृत्यु पर उनके बेटे नवाब गाजीउद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे।

अवध का नवाब दिल्ली मुगल सम्राट् की अधीनता में एक सूबेदार और मुगल दरबार का वजीर होता था। परन्तु वारेन हैस्टिंग्स ने १८१६ में लखनऊ में दरबार करके नवाब गाजीउद्दीन हैदर को बाजाब्ता 'बादशाह' घोषित किया और उसकी दिल्ली दरबार की अधीनता समाप्त कर दी। बादशाह की पदवी प्राप्त करके उन्होंने अपना नाम 'अबुलमुजफ्फर मुईउद्दीन शाह जिमनगाजीउद्दीन हैदर बादशाह' रक्खा। उन्होंने अपने नाम का सिक्का भी चलाया।

वह भी उदार, साहित्यिक और गुणग्राही बादशाह थे। मिरजा मुहम्मद जानवी किरमाली उनके दरबारी थे। उर्दू के प्रसिद्ध कवि आतिश और नासिख उन्हीं के जमाने में थे। ईद के अवसर पर कवियों को बहुत इनाम मिलता था। उस समय के प्रसिद्ध गवैये रजकअली और फजलअली का भी दरबार में पूरा मान था। वे दोनों 'ख्याल' गाने में अपना सानी नही रखते थे। एक दक्षिणी वेश्या का भी उनके यहाँ बहुत मान था।

उनके प्रधान मन्त्री नवाब मोतमिद उद्दौला आगा मीर थे जो बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने राज्य की बड़ी उन्नति की, खजाना रुपयों से भरपूर रहा। करोड़ों रुपया ईस्ट इण्डिया कम्पनी को कर्जा देते रहे।

बादशाह की प्रधान बेगम बादशाह बेगम कहाती थी, और बड़े ठाट से अलग महल में रहती थी। किसी बात पर बादशाह से बेगम की खटक गयी थी। बेगम ने भी कई अच्छी इमारतें बनवाईं।

प्रसिद्ध शाह नजफा उसने ही बनवाया था। गोमती नदी पर लोहे का पुल बेगम ने विलायत से बनवाकर मँगवाया था, पर उसे पूरा नहीं करा सकी, बीच में ही उनकी मृत्यु हो गई।

उस जमाने में कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत ही नाजुक थी। उसकी हुण्डियों की दर बाजार में बारह फीसदी बट्टे पर निकलती थी। उन दिनों मेजर बेली रेजीडेण्ट थे, जिनके बुरे व्यवहार से नवाब तंग आ गये थे।

नवाब ने गवर्नर से मेजर बेली की शिकायतें कीं। गवर्नर लखनऊ आये, पर नतीजा उल्टा हुआ। मेजर बेली के उद्धत्त प्रभुत्व के नीचे नवाब हर घण्टे आहें भरता था। उसे आशा थी कि गवर्नर जनरल उसके अन्याय से उसे छुटकारा दिला देगा। किन्तु गवर्नर ने मेजर बेली का प्रभुत्व और भी पक्का कर दिया। मेजर बेली छोटी-से-छोटी बात पर भी नवाब पर हुकूमत चलाता था। जब कभी मेजर बेली को नवाब से कुछ कहना होता था, वह चाहे जब बिना सूचना दिये महल में आ धमकता था। उसने अपने आदमियों को बड़ी-बड़ी तनख्वाहों पर नवाब के यहाँ लगा रक्खा था, जो जासूसी का काम करते थे। मेजर बेली जिस हाकिमाना शान के साथ हमेशा नवाब से बात करता था, उससे नवाब अपने ही कुटुम्बियों और प्रजा की नजरों में गिर गया था।

इस यात्रा में गवर्नर ने नवाब से ढाई करोड़ रुपये नकद नेपाल-युद्ध के खर्च के लिए वसूल किये थे। इसके बदले नेपाल से मिली भूमि का टुकड़ा नवाब को दिया गया, जो वास्तव में लगभग बंजर था। इसके बाद नवाब को एक दरबार करके स्वतन्त्र बादशाह का पद दिया गया। इसमें भी एक राजनीतिक छल था क्योंकि इस चाल से ही दिल्ली साम्राज्य को भंग किया गया था। बादशाह बनकर न तो नवाब के अधिकार बढ़े थे, न ही स्वतन्त्रता; यह केवल एक हास्यास्पद प्रहसन था।

गाजीउद्दीन के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र गाजी नसीरुद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे और उन्होंने अपना नाम अबुलबसर कुतुबुद्दीन सुलेमान शाह नसीरुद्दीन

हैदर बादशाह रक्खा। वह पच्चीस वर्ष के युवक थे। उन्होंने गद्दी पर बैठते ही पिता के वजीर को बर्खास्त करके एक पीलवान को अपना वजीर बनाया और उसे एतमुद्दौला का खिताब दिया, पर वह शीघ्र ही मर गया। तब नवाब मुत्जिमुद्दौला हकीम एहदीअली खाँ वजीर हुए। उन्होंने एक अस्पताल, एक खैरातखाना तथा एक लोथी छापाखाना भी खुलवाया। उन्होंने एक अंग्रेजी स्कूल भी खुलवाया।

नसीरुद्दीन बड़े ऐयाश थे। उनके महल में कई यूरोपियन लौंडियाँ भी थीं। लखनऊ की प्रसिद्ध छतरमंजिल उन्होंने ही बनवाई थी। और भी बहुत-सी कोठियों को उन्होंने बनवाया। इन्होंने कर्नल विलकॉस की अधीनता में एक वेधशाला भी बनवायी थी, जो गदर में नष्ट हो गई थी।

इनके जमाने में गवर्नर लार्ड बैंटिक थे। उन्होंने अवध के दौरे में नवाब बादशाह को खूब डरा-धमका कर राज्य में बहुत से उलट-फेर किये। यह अफवाह फैल गई थी कि अंग्रेज अब नवाबी का अन्त किया चाहते हैं। नवाब ने घबराकर इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट में अपील करने के इरादे से कर्नल यूनाक नामक फ्रांसीसी को इंग्लैंड भेजा। पर बैंटिक ने नवाब को डरा-धमका कर बीच ही में उसकी बर्खास्तगी का परवाना भिजवा दिया। उन्होंने दस वर्ष राज्य किया।

उनके बाद बादशाह की वेश्या का पुत्र मुन्नाजान गद्दी पर बैठा। पर नसीरुद्दीन की माता ने उसका भारी विरोध करके उसे गद्दी से उतरवाया। कुछ खून-खराबी भी हुई। अन्त में उसे चुनार के किले में कैद कर लिया गया। उनके बाद नवाब सआदतअली खाँ के द्वितीय पुत्र मिर्जा मुहम्मद अली गद्दी पर बैठे। वे विद्या-व्यसनी और शान्त पुरुष थे। हुसेनाबाद का इमामबाड़ा उन्होंने ही बनवाया था। उन्होंने पाँच वर्ष राज्य किया।

उनके बाद मिर्जा मुहम्मद अजमदअली खाँ गद्दी पर बैठे। वे शाह मुहम्मदअली के बेटे थे। पाँच वर्ष ही राज्य कर मृत्यु को प्राप्त हुए।

उनके बाद प्रसिद्ध और अन्तिम बादशाह वाजिद अली शाह २५ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे। वह बड़े ही शौकीन, नाजुक मिजाज और विनोदप्रिय थे। उन्होंने नये फैशन के अंगरखे, कुरते, टोपी ईजाद

किये। ठुमरी भी उन्हीं की ईजाद है। उनके जीवन मे २४ घण्टे नाच-गाने का रंग रहता। स्वयं भी नाच-गाने में उस्ताद थे। सिकन्दर बाग, कैसर बाग आदि इन्हीं की बनवाई हुई हैं।

लार्ड डलहौजी ने भारत के गवर्नर जनरल बनकर आते ही देसी रियासतों को समेटकर अंग्रेजों के कदमों में ला पटका। सबकी स्वतन्त्र सत्ता नष्ट करके उन्हें अंग्रेजों के आधीन बना दिया। अवध भी उसकी दृष्टि मे नहीं बचा। लार्ड डलहौजी के पिता, जब वे कम्पनी की भारतीय सेना के कमाण्डर-इन-चीफ थे, अपनी पत्नी सहित लखनऊ आये और नवाब से भेंट की। उन्होंने अपनी पत्नी का परिचय नवाब से कराया और देर तक पत्नी की बड़ाइयों की चर्चा करता रहा। नवाब उस समय हल्के सरूर में थे, उन्होंने समझा कि यह अंग्रेज इस अंग्रेज औरत को बेचना चाहता है। नवाब ने तंग आकर अपने खिदमतगार से कहा—

'बहुत हुआ, इस औरत को भगाओ।'

डलहौजी के पिता इसे अपना अपमान समझकर लौट आए। अब लार्ड डलहौजी अपने पिता के उस अपमान का बदला लेने के लिए हैदराबाद और बरार को हड़पकर अवध की ओर बढ़े।

वाजिद अली शाह युवा, उत्साही और बुद्धिमान शासक थे। उन्होने अंग्रेजों की नीयत समझकर अपनी सेना को संगठित करना आरम्भ किया। वह नित्य ही परेड कराने लगे। लखनऊ दरबार की सारी पल्टन प्रतिदिन सूर्योदय से पहले ही परेड ग्राउण्ड में एकत्र हो जाती। वाजिद अली भी फौजी वर्दी पहिनकर घोड़े पर सवार हो पहुँच जाते और दोपहर तक कवायद कराते। परेड में सैनिक की अनुपस्थिति अथवा विलम्ब उन्हें सहन नहीं था। उस पर भारी जुर्माना किया जाता था।

डलहौजी ने वाजिद अली को इस प्रकार की सैनिक व्यवस्था करने से मना किया। नवाब ने उसकी बातों पर ध्यान न देकर अपना कार्य जारी रखा। परन्तु अन्त में डलहौजी की बात उन्हें माननी पड़ी और वह निराश होकर दिन-रात महलों में पड़े रहने लगे।

महलों में सुरा-सुन्दरी ने उनके खाली वक्त को पूरा किया। युवक हृदय की देश-भावना विषय-वासना में बदल गई। डूबे सो डूबे।

अब अंग्रेजों ने भेद-नीति से काम लिया और नवाब के खिदमतगार और मित्रों को लालच और भय से अपनी ओर किया। नवाब सुख-सागर में डूब चुके, तब उन्हें पकड़ने की कोशिश में जाल फैला दिया गया, जिसकी कल्पना भी नवाब ने नहीं की थी।

१४
सूरज नहीं डूबता और खून नहीं सूखता

एक तेरह फीट लम्बी और छः फीट चौड़ी जेल की काल कोठरी में एक कैदी बैठा चुपचाप कुछ सोच रहा था। इंग्लैण्ड में इस साल बड़े कड़ाके की सर्दी थी। कोठरी में बर्फ और पानी की इतनी बौछार आती थी कि सारी कोठरी उससे भर जाती थी। यह कैदी इस कोठरी में जेल-यात्रा का दूसरा साल व्यतीत कर रहा था। उसके आगे जमीन पर बाइबल की एक पोथी पड़ी थी। रह-रहकर वह कभी उस पर उदास दृष्टि डालता और कभी उठाकर उसके दो चार पन्ने पलट लेता था। यह कैदी इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध क्रान्तिकारी जोन्स था। वह सन् १८४८ की क्रान्ति में गिरफ्तार हुआ था। क्योंकि उसने लार्ड और पूँजीपति सत्ता के खिलाफ और उनके भ्रष्ट जीवन पर विचार प्रकट किये थे।

हथियार रख दो, घर जाओ और जब तक हम सुधार करें तब तक तुम प्रतीक्षा करो। उसने कहा था—एक पीढ़ी भूखों मरती है और खत्म होती है। जनता का दुःख दूर करने के लिए पुलिस की संख्या दूनी कर दी जाती है। बड़े-बड़े भवनों में नाच और दावतें होती हैं। बाहर शहरों में चीथड़ों और भुखमरी का राज है। न्याय का उपयोग जनता को आतंकित करने को किया जाता है। लोगों को हर सार्वजनिक स्थान पर सभा करने का अधिकार है, पर पुलिस उन्हें रोकती है। न्यायाधीशों का दिमाग किराए पर उठता है। हम संगठित होते हैं तो यह षड्यन्त्र माना जाता है। मन्त्रिमण्डल या पार्लियामेण्ट की आलोचना करते हैं तो यह राजद्रोह

माना जाता है चर्च की आलोचना कुफ्र है। पूंजीपति गरीबों म कहते हैं—देश बहुत छोटा है, हमारे पैर फैलाने को ही काफी नहीं है। तुम गरीब हो, दूसरे देशों में जा बसो। अमीरों ने यह नुस्खा निकाला है।

भला ये बातें ब्रिटेन की सरकार को कब सहन हो सकती थीं! उसने उसे पकड़कर जेल में ठूँस दिया।

दो साल से वह इस काल कोठरी में अकेला बन्द था, उसे लिखने-पढ़ने की भी सामग्री नहीं दी गई थी। उसे दो वर्ष से यह समाचार भी नहीं मिलते थे कि उसकी पत्नी और बच्चों का क्या हाल है। लन्दन में उन दिनों हैजा फैला था। आदमी फटाफट मर रहे थे और यह धैर्यवान् पुरुष चुपचाप बैठा सोचा करता था कि न जाने उसकी पत्नी और बच्चे मरे हैं या जीते। वह जानता था कि उसकी सजा कम करने के लिए उसकी पत्नी ने सिरतोड़ कोशिश की थी, और इस परिश्रम से वह क्षयरोग से ग्रसित हो गई थी। आज एकाएक ही उसे सूचना दी गई थी कि उसकी पत्नी का देहान्त हो गया है। पर यह नहीं बताया गया कि उसके बच्चे कहाँ, किस हालत में हैं। आज उसका अचल धैर्य भी छूटा जा रहा था। वह सोच रहा था—वैभव में उसने जन्म लेकर और पलकर मेरी गरीबी का साथ दिया। और मैं, गरीबों और मजदूरों के लिए जो पवित्र कार्य कर रहा हूँ, उसमें मेरा हाथ बँटाया। उसके सगे-सम्बन्धी उससे मुँह मोड़ कर चले गये। और आज यदि उनमें से कोई जीवित होगा तो देखेगा कि उच्च कुल और वैभव में पलकर उसे जो नाम मिला था उसकी अपेक्षा मेरी पत्नी की हैसियत से उसका गौरव अधिक है। उसने सोचा—मैं संगमरमर की उसकी समाधि नहीं बना सकता, परन्तु मैं उसे अपने हृदय के उच्च उद्‌गार अर्पण करूँगा। उसने एक बार बाइबल की उस पोथी को उठाकर और उसे उलट-पुलट कर देखा। फिर उसके दो पन्ने फाड़ डाले और उनपर अपने रक्त से लिखना आरम्भ किया—

जय हो, जय हो अमेरिका महादेश की! जिसने अपने शैशव ही में चर्च और बादशाही को खत्म कर दिया। यहाँ पादरियों की कट्टरता और सामन्तों का अहंकार नहीं है। किन्तु हाय इस प्रजातन्त्र पर भी गुलामी का काला धब्बा लगा है। ये श्वेतवर्गी लोग सोने और लोहे के गुलाम बनते जा

रहे हैं। रात दिन यह प्रजातन्त्र भी अपने साम्राज्य स्थापित करेगा। उस जहाज जापान पहुंचेंगे। चीन के मैदानों में उसकी सेना का खून बहेगा युद्ध होगा। हथियारबन्दी होगी। ब्रिटेन धर्म के नाम पर भारत में उत्पीड़न कर रहा है। वहाँ लड़ाई के जहाजों में भरकर बिशप भेजे जा रहे हैं। ईश्वर के वचन के नाम पर निर्दय कृत्य और निर्मम हत्याएँ की जा रही हैं। हिन्दुस्तान में विद्रोह फूटेगा, बूढ़ा ब्रिटेन उसे दबाने को जोर लगा रहा है। लेकिन हिन्दुस्तान का सितारा बुलन्दी पर है। वह डरता नहीं है। अंग्रेजों की संगीनों से एक दस्ता बिखर जाता है तो दूसरा उसकी जगह सामने आता है। ब्रिटेन की फौज के कमीशन खरीदने वाले अफसर उनका मुकाबला नहीं कर पाते हैं। साठ साल का एक बूढ़ा अफसर सेनापति बनाया गया है, पर उसके सैनिकों में उत्साह नहीं है। क्या तुम समझते हो कि सैनिक देशभक्तों की भूमिका अदा करते रहेंगे? अरे ब्रिटेन के श्रमिको, तुम्हारे युवा पुत्रों की सेना दूसरों को गुलाम बनाने गई है। वे उनसे लड़ेंगे, जिन्हें ईश्वर ने उनका शत्रु नहीं बनाया है।

सबसे पवित्र तीर्थ मानव हृदय है। अंग्रेजों के राज्य में सूरज कभी नहीं डूबता, पर उनकी धरती पर खून भी कभी नहीं सूखता।

१५
बीस लाख की जूती

शाहजहाँ स्त्रैण पुरुष था। मुमताज की मृत्यु के बाद तो उसे अन्य स्त्रियों से मिलने में कोई बाधा नहीं रही। वह अपने महल की ही स्त्रियों पर सन्तुष्ट नहीं था, बल्कि उमराओं की स्त्रियों पर भी हाथ साफ करता था। बादशाह के हरम में दो हजार से ऊपर स्त्रियाँ थीं। उस हरम की वैभव, विलास और ऐश-आराम की कहानियाँ अनेक रूप धारण करके देश-देशान्तर में विख्यात हो गई थीं। सर्वत्र उसके ऐश्वर्य की धूम थी। बेगम महल का शाही खर्चा सालाना एक करोड़ रुपये था। इसमें वे खर्चे सम्मिलित न थे

जो समय-समय पर बादशाह या शहजादियाँ प्रसन्न होकर दान, खिलवत या भेंट के रूप में अपने कृपा पात्रों को देते थे। इस पर इत्र और सुगन्धित द्रव्यों की सदैव ही महल में नदी बहती थी। पानों में मोतियों का चूना काम में लाया जाता था। एक-एक बेगम हजारों रुपये रोज का पान का ही खर्च रखती थी।

हरम चारों ओर सफीलों से घिरा था। सफील के बाहर हिजड़े और राजपूत सामन्त, राजा लोग बारी-बारी से पहरा देते थे। दरवाजों पर दर्बान रहते थे।

उन शाही महलों के बीच बादशाह का एक खास कमरा ऐयाशगाह था। यह कमरा चौबीस हाथ लम्बा और आठ हाथ चौड़ा था। उसके चारों ओर बड़े-बड़े कद्दआदम शीशे लगे थे, जो बड़े खर्च से विलायत से मँगाए गए थे। इस कमरे की सजावट में जो सोना खर्च हुआ था, उसकी लागत डेढ़ करोड़ रुपये थी। इसके सिवा जो हीरे-मोती इसमें लगे थे, उनकी कीमत का अन्दाजा बिल्कुल असम्भव था। कमरे की छत में दो विशाल शीशों के बीच सोने की धारियाँ जड़ी थीं, जिनमें जवाहरात जड़े थे। शीशों के किनारों पर बहुमूल्य मोतियों के गुच्छे लटकाए गये थे। दीवारें संगमरमर की थीं। अवर्णनीय शोभा उस कमरे की थी। तमाम शीशे जो उसमें लगाए गये, इस ढंग पर थे कि जब बादशाह अपनी प्रेमिकाओं के साथ विहार करें तो उस दृश्य को अपनी आँखों से देख ले। शीशों के गोशों मे मोतियों के गुच्छे लटकते थे। इस कमरे में हर किसी का आना निषिद्ध था। खास-खास ख्वाजासरा ही इसमें आ पाते थे।

कमरे के बाहर दो सौ तातारी बाँदियाँ नंगी तलवार हाथ में लिये, तीर-कमान पीठ पर कसे, रात-दिन पहरा देती थीं। ये बड़ी फुर्तीली और बहादुर होती थीं तथा शराब नहीं पी सकती थीं। इनकी तनख्वाह और इनाम-इकराम में इन्हें बे-अन्दाज धन मिलता था। इन सबका सरदार एक कद्दावर ख्वाजासरा था, जिसका नाम अबूबास था। वही इस कमरे के भीतरी भेदों का जानकार था। इस कमरे के चारों कोनों पर चार कोठरियाँ थीं, जिनके नाम चारों दिशाओं पर नियत थे। इनमें रहने वालियों के जिम्मे बादशाह के शयनागार का भीतरी प्रबन्ध था। ये बड़ी सुन्दरी थीं और

बड़े ठाठ-बाट से रहती थीं। इनमें जो सरदार थी, उसका नाम सुर्पुबानू था। यह बड़ी चपल, नौजवान और बादशाह के मुँहलगी थी।

बादशाह की प्रेमी औरतों में सबसे प्रमुख स्त्री जफरखाँ की पत्नी थी। उसके प्रेम में अन्धा होकर बादशाह जफरअलीखाँ की जान लेने पर तुला हुआ था। पर उस स्त्री ने अनुनय-विनय करके उसे बचा रखा था।

बादशाह की दूसरी प्रमुख प्रेमिका अमीर खलीलुल्ला खाँ की पत्नी थी। अमीर खलीलुल्ला खाँ एक प्रभावशाली सिपहसालार था।

बादशाह की तीसरी प्रमुख प्रेमिका उसके साले शाइस्ता खाँ की पत्नी थी। इन सभी उमरावों की हवेली फैज बाजार में थी। शाइस्ता खाँ चतुर और उच्चाशय अमीर था। उसकी स्त्री एक ईरानी अमीर की इकलौती बेटी थी। वह बड़ी सती, सच्चरित्र और पवित्रात्मा थी। वह जैसी अद्वितीय सुन्दरी थी, वैसी ही अस्मतवाली भी थी। वह नयी उम्र की बड़ी ही नाजुक मिजाज वाली भावुक युवती थी।

शाहजहाँ की उस पर एक अमीर के यहाँ दावत में दृष्टि पड़ी। रिश्ते-दार होने के कारण वह बादशाह के सामने आने को विवश की गई थी। बूढ़े कामुक बादशाह ने अपनी बड़ी बेटी जहाँआरा के द्वारा उसे एक जियाफत देने रंगमहल में बुलवा लिया। बेगम जफरअली उसे फुसलाकर बादशाह के उस रहस्यपूर्ण खासगाह में ले गई, जिसमें अनगिनत सतियों का सतीत्व लूटा जा चुका था। भोली-भाली लड़की दाँव में फँस गई और जब वहाँ उसने स्वयं को बादशाह के चंगुल में फँसकर असहायावस्था में पाया तो छूटने को बहुत हाथ-पैर मारे, बड़ी छटपटाई, पर वह अपने को बचा न सकी। बादशाह ने उसका सतीत्व भंग कर दिया। फिर वह बहुत-सी भेंट और नजराने देकर वापस भेज दी गई।

परन्तु उस मुगल राज्य में जिस प्रकार अन्य अमीरों की औरतें होती थीं, वह वैसी न थी। उसने घर आकर सब हाल अपने पति से कह दिया और खाना-पीना तथा वस्त्र बदलना भी छोड़ दिया। इस घटना को पन्द्रह दिन बीत चुके थे।

शाइस्ताखाँ ने बहुत कोशिश की कि वह इस घटना को भूल जाय और पुनः सामान्य जीवन जीने की कोशिश करे। परन्तु उस सती स्त्री ने अपने

पति से वचन लिया कि वह उसके अपमान और बेइज्जती का बदला बादशाह से लेगा और अपने प्राण त्याग दिये।

शाइस्ताखाँ ने घबड़ाकर जफरअली को बुलवाने भेजा। जफरअलीखाँ को जब यह ज्ञात हुआ कि बेगम शाइस्ता खाँ ने बादशाह द्वारा सतीत्व भंग होने के कारण आत्मघात करने की ठानी है और उसका सतीत्व भंग कराने में उसी की पत्नी का हाथ है तो वह अत्यन्त क्रोध और गम से घर पहुँचा और पत्नी के इस पतन, विश्वासघात और कुटनी-कार्य के लिए उसे बहुत धिक्कारा। बेगम जफरअली मूढ़ और हतप्रभ हो उठी और बदहवास हालत में बादशाह के पास पहुँची।

दरबार से लौटकर बादशाह सीधे अपने खासगाह के अन्दर आकर एक निहायत मुलायम गद्देदार कोच पर मसनद के सहारे लुढ़के हुए थे। इस समय उनका चित्त प्रसन्न था और आँखें चमक रही थीं, चेहरे पर निरन्तर छाई रहने वाली उदासी इस समय न थी।

अब्बास ने बादशाह के कपड़े बदले और बाअदब झुककर दस्तबस्ता अर्ज की, 'खुदाबन्द, बेगम जफरअली बड़ी देर से हुजूर की कदमबोसी के लिए बैठी हैं।'

बादशाह ने मुस्कराकर कहा—'खुर्शेद को भेज दे और एक गिलास शीराजी भी।'

अब्बास अदब से पीछे हटा और कुछ देर में खुर्शेद धीरे-से कमरे में आई। उसके पीछे दो बाँदियाँ और थीं। एक के हाथ में शीराजी का गिलास और दूसरे हाथ में जड़ाऊ पानदान था। उसने गिलास बादशाह के सामने पेश किया।

शराब पीते-पीते बादशाह ने कहा—'माजरा क्या है बानू? आज बेवक्त बेगम जफरअली क्यों आई है?'

'हुजूर, वे बहुत बदहवास हैं। मैंने इतना समझाया है पर वे रोती ही जा रही हैं।'

बादशाह की भृकुटी में बल पड़े, उसने कहा—'उन्हें भेज दो और ख्याल रख कि भीतर कोई आने न पाये।'

बादशाह को आदाब बजाकर खुर्शेद चली गई। कुछ देर में बेगम ने

आँधी की तरह कमरे में प्रवेश किया। अदब-कायदे का बिना विचार किये ही उसने बादशाह के सामने जाकर कहा—'हुजूर, मैं बर्बाद हो गई, मुझे बचाइये, मेरी इज्जत बचाइये, वरना मेरी जान चली जायेगी।'

बादशाह खड़ा हो गया। उसने बेगम का हाथ अपने हाथों में लेकर तसल्ली के स्वर में कहा—'प्यारी बेगम, हुआ क्या है, जो इस कदर परेशान हो? खुलासा हाल तो कहो।'

'हुजूर, मेरे खाविंद को सब कुछ मालूम हो गया है और वे या तो मुझे मार डालेंगे या तलाक दे देंगे।'

'उसकी इतनी मजाल नहीं हो सकती।' गुस्से से बाहर हो बादशाह ने जवाब दिया—'मैं अभी उसे साँप से डसवाने का हुक्म देता हूँ।' उसने दस्तक देने को हाथ उठाया।

बेगम ने लपककर बादशाह के हाथ चूमते हुए कहा—'नहीं, नहीं, जहाँपनाह, रहम कीजिए। मुझे बेवा न बनाइए। वह एक ऐसा खाविन्द है जो किसी भी औरत के फख्र का बाइस हो सकता है। वह बहुत नेक और दिलेर मर्द है, वह मुझे जान से ज्यादा प्यार करता है। हुजूर, मैं बदबख्त···।' बेगम बादशाह के ऊपर गिरकर फफक-फफककर रोने लगी।

बादशाह को अभी भी गुस्सा आ रहा था, उसने कहा—'मगर वह बदजबान मेरे रास्ते का रोड़ा नहीं हो सकता···वह, जिसे मैंने जमीन से उठाकर आसमान तक पहुँचा दिया है।'

बेगम चुपचाप पड़ी रोती रही। वह बारीक धानी पोशाक पहने थी। उसमें से उसका स्वर्ण शरीर छन-छनकर दीख रहा था, जिस प्रकार स्वच्छ बोतल में से मदिरा दीख पड़ती है। वह २२ वर्ष की, छरहरे बदन की अनुपम सुन्दर स्त्री थी। उसकी रूप-माधुरी में कुछ ऐसी मिठास थी कि उसे देखकर मन उन्मत्त हो जाता था। उसका प्रत्येक अंग साँचे में ढला था साथ ही कोमलता और नजाकत उसके शरीर से छलक रही थी। उस का चेहरा विलास से परिपूर्ण था। उसकी आँखें और बाल गहरे काले थे। आँखें कटीली, मदभरी और बड़ी-बड़ी थीं। रंग उसका खूब गोरा, मुख हल्की ललाई लिये, होंठ खूब सुर्ख और गर्दन लम्बी और पतली थी। उसकी

दन्तपंक्ति जब हास्य बिखेरती थी तो मुक्ता के समान उन दाँतों पर मन मोहित हो जाता था। पतली कमर, उन्नत वक्ष और नितम्ब उसकी चाल में एक मद उत्पन्न करते थे।

इन अत्यन्त दुःखित अवस्था में भी उसकी सुषमा और लावण्य के प्रभाव से बादशाह के मन में राग जाग उठा। उन्होंने क्रोध त्यागकर धीरे से कहा—'हुआ क्या बेगम, मुख्तसर कहो तो, वल्लाह, रोना-धोना बन्द करो, इससे क्या होगा ?'

बेगम ने आँसू पोंछे। वह हटकर एक तरफ बैठ गई। उसने करुण नेत्रों से बादशाह को देखकर कहा—

'उन्हें सब कुछ मालूम हो गया।'

'तो यह तो उसके लिए बाइसेफक्र होना चाहिए।'

'तो वे ऐसे नहीं हैं हुजूर।'

बादशाह की भौंहों में फिर बल पड़ गये। उसने कहा—'तो बेगम तुम्हें भी पछतावा हो रहा है ?'

'जहाँपनाह, इस लौंडी ने तो अपना सब कुछ हुजूर को लुटा दिया, अब आप ऐसी बात क्यों फर्माते हैं ?'

'तो प्यारी बेगम, मैंने भी तुम्हारे खाविन्द को ऊँचा रुतबा दे दिया है।'

'मेरे हुजूर, गैरतमन्द लोग अस्मत को सबसे बड़ी चीज समझते हैं।'

'तो बेगम, शायद तुम्हें अस्मत का बहुत ख्याल है।'

'हुजूर गुस्ताखी न समझें तो मेरी बातें पूरी सुन लें।'

'कहो !'

'शाइस्ताखाँ की बीवी पागल हो गई है।'

यह सुनकर बादशाह एकदम घबड़ा गए। वे कहने लगे—

'खुदा के वास्ते ऐसा न कहो।'

'वे हुजूर का नाम ले-लेकर बुरी-बुरी बातें कह रही हैं और शाइस्ता खाँ ने मेरे खाविन्द को बुलाकर कुछ सलाह की है।'

'सलाह की है ?' बादशाह ने तलवार की मूँठ पर हाथ रखा।

'हुजूर, अजब नहीं कि शाइस्ताखाँ हुजूर के दुश्मनों की कुछ बुराई करें,

हुजूर खबरदार रहें।

बादशाह का चेहरा भय से पीला पड़ गया। उसने कहा—

'क्या उसका इरादा कुछ बद है? मैंने उस हरामी को तीन हजारी जात का रुतबा दिया है।'

'मगर उसकी बीवी का क्या होगा? उसके साथ तो हुजूर ने बहुत ज्यादती की है।'

'यह ज्यादती तो उसके बेमिसाल हुस्न की है, फिर भी मुझे अफसोस है बानू। पर मैं क्या करूँ वह राजी ही न होती थी। मुझे बस मजबूरन जोरोजुल्म करना पड़ा, मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई औरत मेरे हुक्म में दरेग करे।'

'आह हुजूर! आप बड़े बेदर्द हैं।' बेगम ने आँसू भरकर करुणा के स्वर में कहा।

बादशाह का दिल पसीज गया, उन्होंने बेगम के दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर कहा 'नहीं जानेमन! क्या तुमने कभी कोई शिकायत की बात देखी?'

'हुजूर, मैं कुबूल करती हूँ कि लौंडी पर हुजूर की खास मेहरबानी है।'

'खैर तो यह कहो कि किसी तरह उसका मुँह बन्द हो सकता है, तुम उसे समझाओ।'

'उसने आबदाना छोड़ दिया है, जमीन में मुर्दे की तरह पड़ी है, उसका दिमाग फिर गया है, वह न रोती है, न चिल्लाती है, वह पागल हो गई है हुजूर। उसके सामने जाते हुए डर लगता है।'

'यह क्या कहती हो प्यारी बेगम?'

'जहाँपनाह, किसी औरत पर जितना जुल्म किया जा सकता था, हो चुका। वह बर्बाद हो गई। अधखिली कली बीच ही में मसल डाली गई। अफसोस!'

बेगम चुपचाप नीची गर्दन करके बैठ गई। बादशाह भी कुछ देर चुपचाप आँखें नीची किये बैठे रहे। फिर उन्होंने व्याकुल स्वर में पूछा—

'तुम कोई रास्ता बता सकती हो प्यारी बेगम?'

'जहाँपनाह मुझे तो अपनी ही फिक्र है। उसने मेरे विषय में ऐसी बातें

मुँह से निकाली हैं कि मेरा लोगों को मुँह दिखाना भी मुमकिन नहीं रहा। आह, मैंने क्यों इस बुरे काम में हुजूर की मदद की।' वह फिर मुँह ढाँपकर रोने लगी।

'बीती बात को बिसार दो बेगम, अब सलाह दो, मैं क्या करूँ ? तुम कहो तो···।'

'नहीं जहाँपनाह, मेरी एक अर्ज है।'

'जल्द कहो ताकि इसके बाद हम लोग फिर प्यार की बातें करें।'

बेगम ने उपेक्षा के भाव को छिपाकर विनय से कहा—'आप मेरे खाविन्द को पटना का हाकिम बनाकर भेज दें।'

बादशाह मुस्करा दिये। उन्होंने कहा—'अच्छा बेगम, मैं आज ही उसे रवाना होने का हुक्म दे दूँगा।'

'और हुजूर, शाइस्ताखाँ से खूब चौकन्ने रहिये।'

'शाइस्ताखाँ क्या करना चाहता है ?'

बेगम के चेहरे पर भय के चिह्न आए। उसने बादशाह के पास खिसक कर कहा—

'हुजूर, वह छिपे-छिपे औरंगजेब से मिल गया है, वह उसे तख्त के लिए हुजूर के खिलाफ भड़का रहा है।'

बादशाह क्रोध से काँपने लगे। उन्होंने कहा—'तो मैं उसे कत्ल करा डालूँगा।'

'नहीं, हुजूर। इससे तो दूसरे अमीर बदजन हो जायेंगे। उसकी औरत की बात बहुत फैल गई है। फिर वह हुजूर का रिश्तेदार भी तो है।'

'तब क्या तुम चाहती हो कि उसे भी तुम्हारे खाविन्द के पास बंगाल या उड़ीसा भेज दें जिससे वे दोनों मिलकर मेरी तबाही के मनसूबों को अमल में ला सकें ?'

'जी नहीं, उसे आँखों से दूर भेजना खतरनाक है।'

'तब क्या करूँ ?'

'हुजूर, उसे वजीरों में रखिये ताकि उसकी हर एक बात पर नजर रहे और हमेशा उसी तरह चौकन्ने रहिये जैसे साँप से रहा जाता है।'

बादशाह ने बेगम को खींचकर अपनी छाती से लगा लिया और उसे

चूमकर कहा—'वल्लाह बेगम, तुम बड़ी अक्लमन्द औरत हो। इत्मीनान रक्खो, मैं ऐसा ही करूँगा। मगर तुम उस बदनसीब बानू से मिलती रहो। उसे तसल्ली दो—उसे चुप करो।'

बेगम ने बादशाह के बाहुपाश से छूटते हुए कहा—'जो हुक्म, मैं अपने बस भर कोशिश करूँगी ?'

'तो बस अब...।'

'नहीं हुजूर, इस वक्त मेरी तबियत बहुत नासाद है, जाती हूँ, आदाब।'

वह उसी तरह बिजली की भाँति कमरे से निकल गई। बादशाह मसनद पर लुढ़ककर आँखें बन्द किये कुछ सोचने लगे। इसी समय अब्बास ने आकर जमीन चूमकर कहा—'खुदावन्द हुजूर, बड़ी बेगम ने दर्याफ्त किया है कि क्या हुजूर आराम फर्मा रहे हैं। एक निहायत जरूरी खबर हुजूर को देनी है।'

बादशाह ने उसी तरह आँखें बन्द किये हुए कहा—'उन्हें यहीं भेज दो।'

ख्वाजा आदाब अर्ज करके चला गया।

जहाँआरा बहुत उदास थी। वह धीरे-से आकर थकी हुई-सी बादशाह के सामने एक चौकी पर बैठ गई। बादशाह ने घबराई आवाज में कहा—'इस कदर परेशान होने का क्या कारण है प्यारी बेटी ?'

बड़ी बेगम ने गुस्से-भरी आवाज में कहा—'हुजूर, मुझे अभी-अभी खबर मिली है कि बेगम शाइस्ताखाँ ने हीरे की बनी कनी खाकर प्राण दे दिये हैं। यह हरामजादी मरते-मरते मेरी खुल्लमखुल्ला बदनामी कर गई है कि मैं आपकी कुटनी हूँ।'

जहाँआरा रोने लगी और बादशाह विचलित होकर कमरे में इधर से उधर चक्कर काटने लगा।

जफरअली खाँ और खलीउल्ला खाँ दोनों ऊँचे रईस थे। दोनों की तरक्की का मूल कारण उनकी सुन्दर स्त्रियाँ ही थीं। इन दोनों अमीरों की स्त्रियों का शाहजहाँ से सम्बन्ध होने की बात इतनी प्रसिद्ध हो चुकी थी कि जब वे बाहर सवारियों में निकलतीं तो फकीर उन्हें देखकर कहते—

'ऐ नाश्तए शहनशाह, हमें भी याद रखना, ऐ लुक्मए शाहे जहाँ, हमें

भी कुछ देती जा।

ये स्त्रियाँ इन बातों से नाराज न होकर कुछ न कुछ देकर प्रसन्न ही होती थी।

शाइस्ताखाँ की पत्नी की मृत्यु से शाहजहाँ बहुत कुछ क्रुद्ध और परेशान हो गया। अगले दिन उसने दरबार में खलीलुल्ला खाँ से क्रोध से पूछा—'हम सुनते हैं कि तुम्हारी औरत बीस लाख रुपये कीमत के जूते पहनती है, इससे मालूम होता है कि तुम्हारे पास बहुत रुपया है, वह जरूर तुमने रिश्वत और चोरी से इकट्ठा किया होगा, इसलिए हमें अपना हिसाब समझाओ।'

खलीलुल्ला खाँ यह सुनकर चुप हो गया और उसने नीची गर्दन कर ली।

जफरअली खाँ भी दरबार मे हाजिर था। उसने कहा—'जहाँपनाह, गुलाम को जवाब देने की इजाजत दी जाये।'

बादशाह ने कहा—'तुम्हीं कहो।'

इस पर जफरअली खाँ ने नम्रता से कहा—

'हुजूर, खलीलुल्ला की तमाम दौलत इन्हीं जूतों में सुरक्षित है, क्योंकि उसकी औरत रोज सुबह उठकर उसके मुँह पर उन जूतों को मारती है।'

बादशाह यह जवाब सुनकर मुस्करा दिया। सब दरबारी भी हँसने लगे। खलीलुल्ला खाँ लज्जित होकर दरबार से चला गया।

दूसरे दिन वह जफरअली खाँ पर बहुत नाराज हुआ और कहा—

'तुमने मेरे दरबार में मेरी बेइज्जती की है।'

जफरअली खाँ ने कहा—'यार, हम-तुम एक ही किश्ती के सवार हैं, नाराज मत हो। तुम्हें तो मेरा धन्यवाद देना चाहिए क्योंकि उस वक्त जो मैं तुम्हारी मदद न करता तो बादशाह या तो तुम्हारा सिर कटवा लेता या घर लुटवा डालता, क्योंकि बेगम शाइस्ताखाँ के मरने से वह बहुत गुस्से में था।

खलील खाँ यह सुनकर चुप हो गया।

१६
वीर सिंह

सिख धर्म का जन्म एक शक्तिशाली साधुपुरुष नानक ने किया। पंजाब के शेखुपुरा जिले के तलवण्डी गाँव में सन् १४६९ में एक प्रतिभाशाली बालक ने जन्म लिया, पण्डितों ने उसका नाम नानक रखा। आगे चलकर नानक की प्रसिद्धि के कारण इस गाँव का नाम ननकापुरा हुआ, जो अब सिखों का धर्मस्थान है। बालक शान्त प्रकृति और ईश्वर की उपासना के प्रति आकर्षित था। सात वर्ष की आयु होने पर उसे गाँव की पाठशाला में पढ़ने बैठाया गया। उसकी कुशाग्र बुद्धि और ज्ञान गरिमा से उसके शिक्षक और सहयोगी प्रभावित होने लगे। ईश्वर के अस्तित्व और उसकी महिमा का वह गम्भीरतापूर्वक वर्णन किया करता और कभी-कभी घण्टों ध्यानावस्था स्थिति में बैठा रहता था। एक दैविक शक्ति का प्रादुर्भाव उसकी आत्मा में स्पष्ट होने लगा।

उन्नीस वर्ष की आयु में सुलक्षणी नामक कन्या से नानक का विवाह हुआ, जिससे श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द दो पुत्र उत्पन्न हुए। नानक की ईश्वरोपासना दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। पुत्रों की प्राप्ति के बाद नानक को एक दैवी शक्ति प्राप्त हुई और वे अपने मत का जन-साधारण में उपदेश देने लगे। उनकी ख्याति फैलने लगी और लोग उन्हें दैवी पुरुष समझ आदर से उनका मत स्वीकार कर उन्हें गुरु नानक कहने लगे।

गुरु नानक ने सारे भारत का भ्रमण कर उपदेश दिया। वे अफगानिस्तान, बर्मा, स्याम, टर्की, रूस, अरब, मक्का भी गये। उन्होंने जाति-भेद हटाकर सबको सत्य का प्रकाश दिखाया। भ्रमण समाप्त कर वे करतारपुर मे आकर बैठ गए और उपदेश देने लगे। प्रभात वेला में 'जापजी' और 'आसाँ-दी-वार' होता था और फिर भक्तिपूर्ण गीतों की ध्वनि लहराती थी। सन्ध्या समय 'रहरस' और 'आरती' होती थी। शयन के समय 'कीर्तन सोहिल्ला' होता था।

इनकी मृत्यु सत्तर वर्ष की आयु में १५३८ में हुई। मरने से प्रथम

उन्होंने अपने सेवक अंगद को गद्दी सौंपी। उसके बाद वे अपने ऊपर चादर ओढ़कर लेट गए। एक मधुर वाद्य-ध्वनि हुई और उनका अन्तिम श्वास पूर्ण हुआ। हिन्दू उनका दाह करना चाहते थे, मुसलमान उन्हें गाड़ना चाहते थे। परन्तु जब चादर उठाई गई तो उनका शरीर नहीं था, वह पंच तत्त्वों में लीन हो चुका था।

नानक के बाद क्रमश: नौ गुरु गद्दी पर बैठे, जो सब संयमित चित्त योगी की भाँति रहते थे। नानक के शिष्य अंगद १५३९ में गद्दी पर बैठे और १४ वर्ष तक गुरु रहे। उन्होंने नागरी लिपि को बिगाड़कर गुरुमुखी चलाई और वर्णमाला में ३५ अक्षर नियत किये।

अंगद के बाद उनके सेवक अमरदास ७३ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे और २२ वर्ष तक रहे। १५७४ में ९५ वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हुई। उन्होंने अपने पूर्वज गुरुओं की वाणी एकत्रित की और आदिग्रन्थ की रचना की, जिसमें ९०७ वाणियाँ थीं।

अमरदास के बाद उनके दामाद रामदास १५७५ में गद्दी पर बैठे। अकबर ने उन्हें १५७७ में पंजाब में कुछ गाँवों की जागीर दी। इसी जागीर के एक स्थान को उन्होंने उन्नत करके अमृतसर बसाया। पहले यहाँ कच्चा तालाब था, जिसके आसपास झोंपड़े थे। शिष्य यहीं एकत्रित होने लगे और इसका नाम रामदासपुर रख दिया। बाद में उन्होंने तालाब को पक्का बना दिया और उसका नाम 'अमृतसरस' रखा। आगे चलकर इसी के नाम पर रामदासपुर बदलकर अमृतसर कहलाने लगा। इसी तालाब के बीच में एक 'हरिमन्दिर' बनाना आरम्भ किया, जो अब स्वर्ण मन्दिर के नाम से विख्यात है। उन्होंने आदिग्रन्थ में ६७९ वाणियाँ और जोड़ीं। उनका जन्म १५३४ और मृत्यु सितम्बर १५८१ में हुई।

रामदास के बाद उनके तीसरे और कनिष्ठ पुत्र अर्जुनदेव १८ वर्ष की आयु मे १५८१ में गद्दी पर बैठे। उनका जन्म १५६३ में हुआ था। लाहौर मे मुस्लिम शासक ने गुरु का सम्मान किया और उनकी इच्छानुसार एक बावली अपने व्यय से बनवाई। १६२८ में शाहजहाँ ने इसे भरवा कर इसके ऊपर मस्जिद बनवा दी। बाद मे १८३४ में महाराजा रणजीतसिंह ने मस्जिद गिराकर फिर बावली बनवा दी। अर्जुनदेव ने १५८९ में अमृतसर

के हरिमन्दिर का निर्माण-कार्य पूरा किया। सन्तोखसर तालाब का निर्माण भी पूर्ण किया। उन्होंने हरिमन्दिर के एक भाग की नींव मुस्लिम पीर मियाँ पीर के हाथों रखवाई थी। १६०५ में जहाँगीर गद्दी पर बैठा, तब उसके पुत्र खुसरो ने पिता से विद्रोह किया और अर्जुनदेव के पास आया। अर्जुनदेव ने उसका सम्मान किया जो भारी अपराध माना गया। जहाँगीर ने विद्रोही पुत्र को शरण देने के अपराध पर उनपर दो लाख रुपया जुर्माना कर दिया, जिसे देने से उन्होंने इकार कर दिया। इससे प्रथम उन्होंने लाहौर के दीवान चन्दूशाह की पुत्री की सगाई अपने पुत्र हरगोविन्द के साथ करने से मना कर दिया था। इन दोनों कारणों से अर्जुनदेव को लाहौर जेल में बन्द कर दिया गया और अनेक आर्त यातनाएँ दी गईं। बाद में उनके ऊपर गर्म रेत डाला गया और रावी नदी के तट पर ले जाकर उन्हें ठण्डे पानी में डुबकी लगाने को कहा गया। रावी के जल में घुसकर वे ध्यानावस्थित हो गए और वहीं शान्ति से अन्तिम श्वास ली। मृत्यु पर अनेक जोगियों और लाहौर के मुस्लिम सन्त मियाँ पीर ने शोक मनाया। इनकी मृत्यु १६०६ में हुई।

उनके बाद अर्जुनदेव के पुत्र हरगोविन्द ११ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे। उनका जन्म १६ जून, १५६५ में हुआ था। इनके चचा, पृथ्वीमल ने उन्हें साँप से डसवाकर तथा विष देकर मार डालने की चेष्टा की, पर ये बच गए। ये बचपन से युद्धप्रिय थे और तीर तथा बन्दूक चलाने में निपुण थे। वे दो तलवारें बाँधते थे—एक पिता के अपमान के बदले के लिए और दूसरी मुगल साम्राज्य को ध्वंस करने के लिए। वे पहले गुरु थे जिन्होंने सिख जाति में अपने शत्रु के प्रति युद्ध करने की भावना उत्पन्न की। उनके पास ८०० घोड़े, ३०० घुड़सवार बन्दूकची थे। एक बार वे जहाँगीर के साथ शिकार खेलने भी गये थे। जहाँगीर ने उनकी युद्धसाजसज्जा पर शंकित होकर उन्हें ग्वालियर के किले में कैद कर दिया और १२ वर्ष बाद आम माफी के अवसर पर रिहा किया।

उन्होंने पहला युद्ध लाहौर के गवर्नर से अपने कुछ घोड़े हथिया लेने पर किया और विजयी हुए। दूसरा युद्ध १६२८ में अमृतसर के बाहर हुआ, जिसे १६३१ में जय किया। तीसरा युद्ध अप्रैल १६३४ में करतारपुर

में मुगल सेनापति पदाखां से हुआ और विजय पाई। उनके मन में अपने पिता का बदला लेने की तड़प थी। उन्होंने स्वर्णमन्दिर के पास अकाल-तख्त का निर्माण पूर्ण किया। करतारपुर में अपने व्यय से मुसलमानों के लिए मस्जिद बनवाई। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम १० वर्ष ईश्वर-चिन्तन में व्यतीत किए और अपने पौत्र हरीराम को गद्दी सौंपकर अपने पुत्र बाबा गुरुदित्ता के साथ रहने करतारपुर चले गए। १६४५ में सतलुज के किनारे उनकी शान्तिपूर्वक मृत्यु हुई।

हरगोविन्द के बाद उनके पौत्र हरीराम १४ वर्ष की अवस्था में १६४५ में गद्दी पर बैठे। इनका जन्म १६३१ में हुआ था। वह शान्त स्वभाव और भक्ति में लीन रहने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने मालवा में अपने धर्म का प्रचार किया। १६४८ में उन्होंने दारा को औषध भेजकर उसका रोग दूर किया था। बाद में दारा का औरंगज़ेब से युद्ध होने पर उन्होंने अपनी फौज दारा को दी तथा उसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचने में सहायता भी की। औरंगजेब ने उन्हें दिल्ली बुलाया, पर वह नहीं गए। अपने बड़े पुत्र रामराय को सब बातें बादशाह को समझाने के लिए भेज दिया। औरंगजेब ने उससे नर्मी का व्यवहार किया तथा गुरुग्रन्थ साहिब से कुछ श्लोक, जिनमें इस्लाम के खिलाफ लिखा था, निकालने को कहा। रामराय ने गुरु नानक की उस वाणी का हवाला बादशाह के सामने अर्थ बदलकर किया, जिससे गुरु हरीराम बहुत दुःखी हुए और उन्होंने उसे अपना उत्तराधिकारी होने के अयोग्य समझा।

हरीराम ने फुल्कियाँ रियासत की स्थापना की। नाभा, जींद और पटियाला के शासक उसी वंश में हुए जो प्रसिद्ध और समृद्धिशाली शासक रहे। १६६१ में करतारपुर में उनकी मृत्यु हुई।

हरीराम के बाद उनके छोटे पुत्र हरकिशन पाँच वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे। इनका जन्म जुलाई १६५६ में हुआ। इन दिनों इनके बड़े भाई रामराय, जिन्हें हरिराम ने गुरुगद्दी के अयोग्य करार दिया था, दिल्ली में औरंगजेब के दरबार में थे। उसने बादशाह से शिकायत की कि हरिराम गुरुगद्दी की महत्ता को नष्ट कर देगा, वह अयोग्य है। बादशाह ने बालक गुरु को अम्बर के राजा रायसिंह के द्वारा दिल्ली बुलाया। उन दिनों

दिल्ली मे प्लेग फला हुआ था . गुरु ने इस महामारी के विनाश के लिए प्रार्थना की। महामारी कम हुई, परन्तु वे स्वयं चेचक की चपेट में आ गए। उनका रोग बढ़ता गया और कुछ दिन बीमार रहने के बाद १६६४ मे उनकी वहीं मृत्यु हो गई। यमुना के पश्चिमी घाट तिलोखेरी स्थान पर उनकी दाहक्रिया की गई। गुरुद्वारा बालासाहेब उसी स्थान पर बना है। दिल्ली में जहाँ वह ठहरे थे, उस स्थान पर भी एक गुरुद्वारा बंगलासाहेब बनाया गया।

अपनी मृत्यु निकट समझकर उन्होने अपने पितामह के छोटे भाई तेगबहादुर को, जो बकाला गाँव में रह रहे थे, अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

तेगबहादुर गुरु हरगोबिन्द के छोटे पुत्र और गुरु अर्जुनदेव के पोते थे। उनका जन्म गुरु के महल अमृतसर में १६२२ मे हुआ। वे सांसारिक सुखो से उदासीन तथा ईश्वरोपासना की ओर उन्मुख थे। गुरुगद्दी पर बैठने की उनकी इच्छा नही थी, परन्तु अपनी माता की आज्ञा से उन्होंने गद्दी पर बैठना स्वीकार कर लिया। उन्होंने करतारपुर में एक किला बनवाया और वहाँ अपना दरबार जमाया। उन्होने कहलूर के राजा से जमीन खरीदकर माखोवल नगर बसाया जो सिखों के लिए पवित्र स्थान है।

रामराय ने तेगबहादुर के खिलाफ भी औरंगजेब के कान भरने शुरू किये। औरंगजेब रामराय को गुरुगद्दी पर बैठाना चाहता था। परन्तु तेगबहादुर के गुरुगद्दी पर बैठने से उसका क्रोध बढ़ गया। उसने गुरु को दिल्ली बुलाया, परन्तु राजा जयसिंह ने तेगबहादुर की सिफारिश की और अपनी जमानत पर उन्हें आसाम के युद्ध में ले गये। ब्रह्मपुत्र के किनारे तेगबहादुर को बहुत शान्ति मिली। लौटने पर वह पटना रुके और वहीं बसने का निश्चय किया। उन्होंने पटना में सिख कॉलिज की स्थापना की। कुछ वर्ष बाद वे पटना से चलकर फिर पंजाब में आनन्दपुर लौट आये। यहाँ उनसे काश्मीर के कुछ पीड़ित पण्डित आकर मिले और मुगलों के अत्याचारों की कहानी कही। उन्होंने गुरु से सहायता करने को कहा। सुनकर गुरु बहुत दुःखी हुए और सोच में पड़ गए।

गुरु के बालक पुत्र गोबिन्दसिंह ने पिता से कहा—'इन दुःखों से पार

धान का उपाय क्या है ?

गुरु ने उत्तर दिया—'एक बड़े और पवित्र व्यक्ति का बलिदान।'

'तब आपसे बड़ा और पवित्र कौन है, आप बलिदान दीजिये।'

बालक से यह बात सुनकर गुरु प्रसन्न हुए। उन्होंने पण्डितों से कहा कि जाकर औरंगजेब से कहो, पहले तेगबहादुर को मुसलमान बनाओ ने, हम भी मुसलमान बन जायेंगे।

पण्डितों ने दिल्ली पहुँचकर बादशाह से फरियाद की। बादशाह ने तेगबहादुर को गिरफ्तार करके दिल्ली लाने का हुक्म दिया।

गुरु दिल्ली की ओर चले और आगरा पहुँचकर गिरफ्तार हो गये।

भरे दरबार में बादशाह ने कहा—'कुछ करामात दिखाओ।'

गुरु ने कहा—'हमारा धर्म सर्व-शक्तिमान ईश्वर की उपासना करना है। परन्तु तुम्हें हम करामात दिखाने ही आये हैं।' इतना कह उन्होंने कुछ शब्द कागज पर लिखकर गले में ताबीज की भाँति बाँध लिये और कहा—'कि अब मेरी गर्दन तलवार से नहीं काटी जा सकती।'

बादशाह ने डरते-डरते जल्लाद को वार करने का संकेत किया। तलवार पड़ते ही उनका सिर कटकर धरती पर लुढ़क गया। यह देख, बादशाह बिमूढ़ हो गया। कागज में लिखा था—'सिर दिया, सार नहीं।'

उस समय (११ नवम्बर, १६७५) गुरु की आयु ५९ वर्ष की थी। चाँदनी चौक में जहाँ उनका सिर काटा गया, उस स्थान पर सिखों ने विशाल गुरुद्वारा शीशगंज बना लिया। ब्रिटिश काल के आरम्भ में गुरुद्वारा गिराकर मस्जिद बना ली गई, परन्तु जींद के महाराज सरूपसिंह की प्रार्थना पर अंग्रेजों ने मस्जिद को गिराकर गुरुद्वारा बनाने की आज्ञा दी। मुसलमानों ने कलकत्ता हाईकोर्ट से डिग्री लेकर गुरुद्वारा ढहाकर फिर मस्जिद बना ली। राजा रनबीर सिंह ने प्रीवी कौन्सिल में अपील करके केस जीता और १८६१ में मस्जिद ढहाकर फिर गुरुद्वारा बना लिया। वर्तमान शानदार इमारत १९२० में बनाई गई।

गुरु तेगबहादुर के बलिदान की निर्दय घटना तूफान की भाँति फैल गई। तेगबहादुर चलती बार अपने पुत्र गोविन्दसिंह को गद्दी पर बैठा आये थे, जिनकी अवस्था १५ वर्ष की थी। उन्होंने प्राण देने का निश्चय किया

था वह जानते थे कि इससे देश में जागृति होगी गुरु का कटा हुआ सि एक भंगी सिख बड़ी कठिनाई से लेकर आया और उनके पुत्र को दिया इस तेजस्वी बालक ने इसे गले लगा लिया और नंगी तलवार लेकर हुंका भरी और सिखों का संगठन शुरू किया। कई छोटे-छोटे युद्ध मुगलों के साथ हुए, और सबमें उनकी विजय हुई। अन्त में बादशाह ने प्रबल सेना भेजी, जिसमें पराजित होकर गोविन्दसिंह भाग गये। उनके दो पुत्र पकड़े गये और जीवित ही दीवार में चुने गये।

बादशाह ने गुरु को दिल्ली बुला भेजा, पर उन्होंने कहला भेजा—अभी खालसा बादशाह से गुरु का बदला लेंगे। अन्त में वे बादशाह से मिलने को राजी भी हो गये, पर इस मुलाकात से प्रथम ही बादशाह की मृत्यु हो गई। औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने गुरु की बहुत खातिर की, पर उनकी भी अचानक एक पठान के आक्रमण से मृत्यु हो गई। यह घटना नर्मदा तीर के 'नादर' नामक स्थान पर हुई। उस समय गुरु की आयु ४८ वर्ष की थी।

उनके बाद सिख समुदाय एक लौह समुदाय बन गया। एक बार गोविन्दसिंह ने बादशाह को लिखा था—खबरदार रहो। तुम हिन्दू को मुसलमान करते हो, हम मुसलमान को हिन्दू करते हैं। तुम अपने को बेजरर समझते हो, पर मैं कबूतर से बाज का शिकार कराऊँ तो गुरु कहाऊँ।

गोविन्दसिंह के बाद गुरु-परम्परा समाप्त हो गई। गोविन्दसिंह के बाद उनका धर्मग्रन्थ ही गुरु के स्थान पर पूज्य हुआ। सिखों ने रामनगर और चिलियांवाला में ऐतिहासिक अमर कारनामे किये। सिख वीर बन्दा वैरागी ने भी बादशाही को हिला डाला, और अन्त में महाराज रणजीतसिंह ने जन्म लेकर काबुल तक को थर्रा दिया।

१७
चित्तौड़-गाथा

मेवाड़ का गौरव चित्तौड़ के कारण अक्षुण्ण है। उदयपुर से पहले यही वहाँ की राजधानी थी। चित्तौड़ नामक पर्वत-शृंग पर चित्तौड़ का किला

बना हुआ है। चित्तौड़ पर्वत तीन मील लम्बा, मध्य में ३६ फीट चौड़ा, आधार घेरा आठ मील और औसतन ५०० फीट ऊँचा है। किले के अन्दर महल, बाजार और तालाब थे। प्रवेश के लिए टेढ़ा-मेढ़ा एक ही ढालू मार्ग था। मुख्य द्वार 'रामदरवाजा' था।

मेवाड़ के राणा सांगा बहुत पराक्रमी और बुद्धिमान शासक थे। १५३० में उनकी मृत्यु हुई। एक बार बाबर से सीकरी के समीप युद्ध हुआ, जिसमें वे पराजित रहे। राणा सांगा के उत्तराधिकारी पुत्र रत्नसिंह पाँच वर्ष राज्य करके बूँदी के राव सूरजमल के साथ द्वन्द्व-युद्ध में मारे गये। उनके पीछे उनके दूसरे पुत्र विक्रमादित्य गद्दी पर बैठे। यह विवेकशून्य, दुराचारी और कायर थे, इससे सब सरदार उनके विरोधी हो उठे। इससे लाभ उठाकर गुजरात का बादशाह बहादुरशाह मालवे के बादशाह को लेकर चित्तौड पर चढ़ आया। विक्रमादित्य तो हारकर भाग गये, परन्तु अन्य सरदारों, प्रतापगढ़ के बाघसिंह, चूड़ावतराव, दुर्गादास राठौर, राजमाता जवाहरबाई आदि ने बड़ी वीरतापूर्वक प्रचण्ड युद्ध किया, जिसमे ३२ हजार राजपूत और १२ हजार स्त्रियों ने प्राण त्यागे। बहादुरशाह उस विजय का उत्सव मना ही रहा था कि उसे बंगाल की ओर से हुमायूँ के बढ़े चले आने का समाचार मिला, जिसे सुनकर वह तुरन्त मालवा को लौटा। उसके लौट जाने पर राजपूत सरदारों ने राणा सांगा के भाई पृथ्वीराज के खवास पुत्र बनवीर को बुलाकर गद्दी पर बैठाया। उस समय राणा सांगा के छोटे पुत्र उदयसिंह बालक थे और पन्ना धाय की गोद मे पल रहे थे। बालक राणा के बालिग होने तक ही बनवीर को गद्दी दी गई थी, परन्तु बनवीर क्रूर और लालची व्यक्ति निकला। गद्दी को हथियाने का संकल्प कर एक दिन आधी रात को नंगी तलवार लेकर वह पन्ना धाय के कमरे में घुसकर बालक उदयसिंह को माँगने लगा। धाय को कुछ क्षण पूर्व ही उसके आने और कुकृत्य करने की सूचना मिल चुकी थी, अतः उसने तत्काल अपने पुत्र को उदयसिंह के पलंग पर सुलाकर उदयसिंह को वहाँ से हटा दिया।

बनवीर के पूछने पर उसने पलंग की ओर संकेत कर दिया। बनवीर ने आगे बढ़कर एक ही वार से बालक के टुकड़े कर दिए और चला गया।

बालक उदयसिंह को कुम्भलमेर में आशाशाह वैश्य के घर सुरक्षित पहुँचा कर पाला गया। सात वर्ष बाद उदयसिंह का जीवित रहना प्रकट किया गया। यह सुनकर राजपूतों ने अपार हर्ष मनाया और उन्हें लाकर राजगद्दी पर बैठाया। बनवीर को भगा दिया गया। जिस वर्ष उदयसिंह का राज्यतिलक हुआ, उसी वर्ष अकबर का जन्म हुआ। भाग्य-विधान से हुमायूँ के भागे-फिरते रहने के कारण अकबर का पालन भी कुम्भलमेर में हुआ। अकबर तेरह वर्ष की आयु में सिंहासन पर आरूढ़ हुआ।

अकबर ने गद्दी पर बैठते ही हिन्दू सरदारों तथा राजपूतों को अपने साथ लेकर प्रजा के विरोधाभास को दूर किया। राजा बीरबल, राजा टोडरमल और तानसेन उनमें प्रमुख थे। १५६२ में अम्बर के राजपूत राजा बिहारीमल ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। उनके पुत्र राजा भगवानदास और पौत्र राजा मानसिंह ने भी इस अधीनता को निभाया। राजा भगवानदास की बहिन जोधाबाई अकबर की पटरानी बनी, जिसका पुत्र सलीम अकबर का उत्तराधिकारी हुआ। राजपूताने के बड़े-बड़े राजा अकबर की अधीनता में चले गये, परन्तु मेवाड़ के राणा ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की। मेवाड़ का मान भंग करने के लिए १५६७ के दिसम्बर में अकबर ने स्वयं चित्तौड़ पर चढ़ाई की। राणा उदयसिंह अपने वीर पिता की भाँति पराक्रमी और स्वाभिमानी नहीं थे, अतः उन्होंने अकबर का मुकाबला नहीं किया। मुकाबला किया उनकी एक स्त्री ने जो स्वयं युद्धरत होकर अकबर के खेमे तक घुस आई थी। अकबर लौट गया। उधर राजपूत सरदारों ने उस स्त्री को मरवा डाला और उदयसिंह से तन गये। इस विरोधाभास को सुनकर अकबर ने दूसरी बार चित्तौड़ पर आक्रमण किया। मुगल सेना को देखकर उदयसिंह किला छोड़कर जंगलों में भाग गए। परन्तु राजपूत हताश नहीं हुए, उन्होंने सरदार जयमल के नेतृत्व में अपना मोर्चा सँभाला। जयमल वीर, परिश्रमी और युद्ध-निपुण सरदार था। अकबर के साथ २५ हजार सेना, ३०० मस्त हाथी, तीन तोपखाने और प्रसिद्ध सेनापति थे। जयमल के पास ५ हजार मृत्युञ्जयी विकट राजपूत योद्धा थे।

मेवाड़ में सम्मुख घमासान युद्ध करने की शक्ति न रही थी। प्रताप के

पास न धन था न सेना। देश-भर में शत्रु भर रहे थे। इसलिए वह जब कभी शत्रु को निकट जा असावधान पाते, पर्वतों और जंगलों से निकलकर यवनों पर आ टूटते, और बुरी तरह छकाते।

: २ :

इस प्रकार कई वीर टोलियाँ बनी थीं। एक टोली का सरदार रघुपतिसिंह था। इनके प्रबल आक्रमणों की मुगलों के मण्डल में ऐसी धाक थी और उसके नाम का ऐसा आतंक था कि बड़े-बड़े मुगल सरदारों का हृदय उसके नाम से दहल जाता था। उसके डर से उन्हें खाना-पीना-सोना हराम हो गया था। रघुपतिसिंह मानो सर्वव्यापी की तरह सदा उनके सिर पर ललकारता रहता था। उसके किले को अकबर छः महीने तक घेर कर आक्रमण करता रहा, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। सुरंग लगाकर किले की दीवार तोड़ी जाती थी, पर उसकी तत्काल मरम्मत करके दीवार बनाई जाती थी। किले के अन्दर राजपूत बन्दूक और तीरों का ऐसा अचूक निशाना मारते थे कि अकबर के सैनिक किले के फाटक तक पहुँचने का साहस नहीं करते थे। एक दिन अकबर अपने खेमे में अकेला विचार-मग्न टहल रहा था। उसने चोबदार को बुलाकर कहा—'राजा साहेब और अमलों को बुला।'

जो हुक्म, कहकर चोबदार चला गया।

कुछ देर बाद बीरबल, अबुलफजल, अब्दुल कादिर, राजा टोडरमल आकर बादशाह के सामने हाजिर हुए। बादशाह ने तख्त पर बैठकर सबको अपने-अपने आसनों पर बैठने का संकेत किया। बैठने पर उसने बीरबल ने कहा—'राजा साहेब, चार महीने हो रहे हैं, मगर फतह हाथ नहीं आती। यह छोटी-सी रियासत फतह करने की मेरी शान मेरी तमाम बादशाहत की शान से ऊँची रहेगी। मगर वाह री बहादुरी! शाबाश, ये शेर सिपाही अगर मुझे मिल जायें तो मैं तमाम दुनिया को फतह कर सकता हूँ। इन बहादुरों की बहादुरी तस्वीर की मानिन्द देखने की चीज है। जैसाकि मैं कई बार कह चुका हूँ—मेरा मकसद किसी की आजादी छीनने का नहीं है। न मुझे मजहबी ताअस्सुब ही है। बल्कि मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान एक मुत्तहद: ताकत बन जाए और वह एक ही ऐसी

ताकत का जहर पैदा कर ले कि जो वक्त जरूरत दुनिया के मुकाबिले उसर्क कहलाये ।'

अबुलफजल ने कहा—बेशक हुजूर की राय से मुझे इत्तिफाक है। रे छोटी-छोटी आजाद ताकतें कौमियत नहीं पैदा करने दे सकती और न मुल्क में अन्दरूनी अमल वर्षा होने दे सकती है।

अब्दुल कादिर—और कुफ्र का ज़ोर भी नही घटेगा।

बीरबल—हुजूर की राय बहुत ही मुबारिक है। मगर आला हजरत उस जजबे पर भी गौर करें जो ईश्वर ने हर एक आबरू वाले इन्सान को दिया है और जिसके लिए ये राजपूत जान खोना महज फर्ज समझते हैं।

बादशाह—बेशक, मैं अपने निजी तौर से उनकी इज्जत करता हूँ—मगर जब शहंशाही की जवाबदारी पर गौर करता हूँ तो मुझे मरजी के खिलाफ इस किस्म की छोटी-छोटी फतह करनी ही पडती हैं।

अब्दुल कादिर—जी हुजूर और यह कुफ्र दूसरी तरह पर दुनिया से उठ भी नहीं सकता। खुदा की यही मर्जी है कि आला हजरत ही काफिरो को उठाकर उनकी जगह दीनदारों को दें।

बादशाह—अब्दुल कादिर साहेब ! मुझे खुदा की मर्जी कुछ-कुछ मालूम है। मगर सच जानो मुझे कुफ्र उठाने की उतनी फिक्र नही है उसके लिए आप मौलाना लोग है। मैं हिन्दुस्तान की मुल्की जिन्दा जिन्दगी चाहता हूँ।

बीरबल—मगर खुदाबन्द ! राजपूतो का उसूल अजीब ही है और इसमें शक नही कि बाकायदा वह रहें तो बहुत ही अच्छा है।

बादशाह—हाँ, और तब मेरे ही बयान की ताईद हो सकती है।

इसी समय एक दूत ने आकर जमीन चूमकर अर्ज की—अबुलफजल जलालुद्दीन शहनशाह की फतह हो !

बादशाह—'कहो क्या खबर है ?'

दूत—'सिर्फ एक जवाब है'''खुदाबन्द। सर देंगे आजादी नही। मर मिटेंगे मगर आन न छोडेंगे। एक-एक बात का जवाब तलवार है। सिर्फ तलवार।'

अकबर सिर नीचा करके कुछ सोचता रहा। फिर कहा—'तब तो

मजबूरी है, कल सुबह किले पर हमला होगा और राजा बीरबल तमाम फौज की कमान लेंगे।'

बीरबल—हुजूर…।

बादशाह ने उठते हुए कहा—राजा साहेब अपने दोस्त अकबर के लिए यह तकलीफ बर्दाश्त करें। उम्मीद है जैसा भरोसा है, वैसा ही काम भी होगा। अब आराम कीजिये, काम बहुत है।

अगले दिन भारी तैयारी के साथ सुरंग बिछाई गई। एक दम्माने पर, जो किले तक सुरंग खोदने की सुविधा से बनाया था, किले से गोले और तीर बरस रहे थे। कोई सिपाही वहाँ मिट्टी डालने को राजी नहीं होता था। एक टोकरी मिट्टी डालने की मजदूरी एक अशर्फी कर दी गई थी।

तमाम दम्माने की छत सिपाहियों की लाशों से पट गई थी। यह सुनकर अकबर उसे देखने पहुँचा। उसने अपनी बन्दूक उठाई और किले की दीवार के एक छेद में एक सिर ऊँचा देखकर बन्दूक की शिशत बाँधकर बन्दूक दाग दी। सिर जयमल का था जो अपने वीरों से दीवार की मरम्मत कराने के लिए हिम्मत बढ़ा रहा था। निशाना सही बैठा और जयमल मृत होकर गिर पड़े।

सरदारों ने तुरन्त ही सत्रह वर्षीय फत्ता को अपना सेनापति बनाया और युद्ध जारी रखा। फत्ता की माता ने अपने हाथ से उसे केसरिया बाना पहनाया, कमर में तलवार बाँधी, सिर पर राजपूती पाग बाँधी। उसने स्वयं को भी रण-सज्जा से सुसज्जित किया और अपनी नव पुत्रवधू को भी शस्त्र धारण कराए। सभी युद्ध के लिए बढ़े। भयानक मार-काट मची।

जयमल के मरने से अकबर की फौज के हौसले बढ़ गये थे, वे किले के मुख्य द्वार की ओर बढ़ने लगे। अब किले की रक्षा असम्भव समझकर राजपूत वीरों ने पहले तो अपनी स्त्रियों को जौहर व्रत कराया और फिर तलवारें सूत कर किले का फाटक खोलकर छातियों की तीहरी दीवार बनाकर खड़े हो गये।

फाटक खुला देखकर मुगल सेना भीतर घुसी, परन्तु वहाँ वीरों की तीहरी छातियाँ उनका मार्ग रोकने को खड़ी हुई थीं। जो मुगल घुसा,

काट डाला गया। अकबर ने मस्त हाथी छोड़ने का हुक्म दिया। १५० हाथी छोड़े गए। वे राजपूतों को कुचलने लगे, उधर उन्होंने भी हाथियों की सूँड़ें काट डालीं जिससे हाथी चिंघाड़कर पीछे लौटकर मुगल सेना को ही रौंदने लगे। घमासान युद्ध मच गया। अकबर ने ३०० मस्त हाथी और छोड़ने की आज्ञा दी। सूँड़ें कट-कटकर ढेर होने लगीं, खून की नदी बह निकली, हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के ऊपर कट-कटकर गिरने लगे। फत्ता अपनी सेना का नाश देखकर हाथियों पर पिल पड़ा। खटाखट उसने सूँड़ें काटनी आरम्भ कर दीं। परन्तु एक मस्त हाथी ने उसे अपनी सूँड में लपेट लिया। फत्ता ने ललकार कर एक सैनिक को उसकी सूँड़ काटने का हुक्म दिया। सैनिक ने एक ही बार में सूँड़ काट डाली। वह हाथी तो चिंघाड़ता हुआ भाग गया परन्तु दूसरे हाथी ने आगे बढ़कर फत्ता को पैरों से रौंद डाला। फत्ता ने तलवार चलाई, पर वह हाथी के दाँत से टकराकर टूट गई।

इसी बीच हाथी ने दुबारा पैर बढ़ाकर उसे कुचल दिया। फत्ता की जीवन-लीला समाप्त हो गई। अब राजपूत प्राणोत्सर्ग करने की भावना से मुगलों पर टूट पड़े। उधर अकबर ने भी भीषण मार-काट मचाई। खून और लाशों से जमीन भर गई। अन्त में किला फतह हुआ। एक भी राजपूत सैनिक जीवित नहीं बचा। इस युद्ध में सैनिक और प्रजाजन सब मिलाकर तीस हजार मृतकों के जनेऊओं का वजन साढ़े सात मन हुआ था। अकबर जयमल और फत्ता की अद्भुत वीरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने दोनों वीरों की मूर्तियाँ बनाकर किले के द्वार पर खड़ी कीं। यह युद्ध २० अक्तूबर, १५६७ से २३ फरवरी, १५६८ तक चार मास चला।

इसके चार वर्ष बाद इसी ३ मार्च, १५७२ को उदयसिंह की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र महाराणा प्रतापसिंह गद्दी पर बैठे। उस समय मेवाड़ में धन, सेना, व्यापार कुछ भी नहीं था। परन्तु प्रताप महातेजस्वी, पराक्रमी, धैर्यवान और स्वतन्त्रता के महत्त्व को रखने वाले वीर पुरुष थे। उन्होंने मेवाड़ के पुनरुद्धार का व्रत लिया, चित्तौड़ के ध्वंस किले पर फिर सिसौदिया ध्वज फहराने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने प्रबल प्रतापी अकबर तथा उसकी महान मुगल सेना का तनिक भी भय नहीं

किया। उस समय कुम्भलमेर का किला मेवाड़ की राजधानी बना हुआ था। उन्होंने अत्यन्त बुद्धिमानी से यह आज्ञा प्रचारित करा दी कि चित्तौड के नीचे मैदान में कोई न बसे, न खेती की जाय, न व्यापार, न पशु चराए जायें, न कोई गृहस्थ या व्यक्ति वहाँ रहकर दीया जलाये। वह प्रदेश उजाड़ और जन-शून्य रहना चाहिए। इसका अच्छा प्रभाव हुआ। राणा ने अब सेना एकत्र करनी आरम्भ की। जनता में पुनः आशा और आत्म-विश्वास की भावना जाग्रत हुई।

यह वह समय था जब राजा मानसिंह शोलापुर को जीतकर अकबर के पास लौट रहे थे। मार्ग में वे कुम्भलमेर के किले में राणा प्रताप से भेंट करने के लिए ठहर गए। राणा ने उनका स्वागत किया। परन्तु रात्रि को उनके साथ भोजन नहीं किया। अपने पुत्र को उनके साथ बैठा दिया। मानसिंह अपने अपमान को समझ गए। मुगलों को अपनी स्त्रियाँ देने के कारण प्रताप ने उन्हें हीन समझा। वे नाराज होकर चले गए। उन्होंने प्रताप को नष्ट करने का संकल्प किया।

अकबर के पास पहुँच कर उन्होंने प्रताप के विरुद्ध विष उगला। उनकी युद्ध की तैयारियों का भयानक चित्र खींचा। अकबर ने तुरन्त महाबत खाँ, आसफ खाँ, शाहजादा सलीम के साथ मानसिंह को भारी सैन्य देकर प्रताप को कुचलने के लिए भेजा। मुगल सेनाएँ अरावली के दक्षिण में स्थित गोलकुण्डा किले पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ीं, गोलकुण्डा का मार्ग हल्दी घाटी में होकर है। राणा प्रताप ने अपनी सेना को हल्दी घाटी में चारों ओर छिपा दिया और स्वयं घाटी के एक द्वार पर मोर्चा जमाया। पहाड़ की चोटियों और मार्ग में भील अपने तीक्ष्ण बाण और बड़े-बड़े पत्थर लेकर बैठ गए। यही हल्दी घाटी का प्रसिद्ध युद्ध था जो अप्रैल १५७६ में हुआ। हल्दी घाटी के युद्ध की गणना विश्व के प्रसिद्ध युद्धों में की जाती है। मुगल सेना के घाटी में बढ़ते ही भीलों ने ऊपर से पत्थर लुढ़काने शुरू किए। मुगल सैनिक चटनी होने लगे। भीलों के तीक्ष्ण बाणों से उनके सिर भुट्टे से उड़ने लगे। मुगल सेना में भय और त्रास फैल गया। आगे बढ़ने पर घाटी के दूसरे सिरे पर पहुँचने पर राजा और राणा ने मोर्चा लिया। भीषण युद्ध हुआ। राजपूतों के शौर्य का ठिकाना न था, उधर मुगल तोपें आग उगल रही थीं। प्रताप अपने शत्रु मानसिंह को ढूँढ़ रहे थे। मानसिंह एक

हाथी पर सवार युद्ध संचालन कर रहा था प्रताप ने चेतक को ऐड लगाई और मुगल सैन्य को चीरते हुए मानसिंह के हाथी के सामने जा पहुँचे।

चेतक ने स्वामी का संकेत समझकर अपने आगे के पैर हाथी के मस्तक पर टेक दिए। फिर उन्होंने तेजी से अपना भाला मानसिंह पर लक्ष्य करके फेंका परन्तु हाथी डरकर पीछे हट गया और बर्छा पीलवान की छाती में घुस गया। पीलवान के गिरते ही हाथी मानसिंह को लेकर भाग गया।

अब प्रताप चारों ओर से मुगल सैन्य से घिर गए। उनपर असंख्य तलवारें छा रही थीं। फिर भी वे प्रबल पराक्रम और धैर्य से दोनों हाथो से तलवारे चला रहे थे, कभी शत्रु को काटते थे, कभी अपनी रक्षा करते थे।

राजपूतों ने दूर से अपने स्वामी को संकटग्रस्त देखा तो झाला सरदार अपने कुछ वीरों को लेकर मुगलों को काटते-मारते प्रबल वेग से राणा के पास पहुँच गए और उनकी पाग अपने सिर पर रखकर कहा—'अन्नदाता, सिसोदिया वंश की रक्षा के लिए आप निकल जाइए, मैं इनसे जूझता हूँ।'

पाग देखकर मुगल सैनिक झाला को राणा समझकर टूट पड़े। राणा प्रताप को अनिच्छा से यह स्थान छोड़ना पड़ा। कुछ सरदार उन्हें वहाँ से निकालकर सुरक्षित के स्थान पर ले गये। झाला सरदार सौ से अधिक शत्रुओं को काटकर उनकी लाशों पर गिरे। उनके शरीर से खून की धारा बह रही थी और वे दोनों हाथों में तलवार पकड़े हुए थे। अपने स्वामी पर उनका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। इस युद्ध में मुगलों को बिल्कुल सफलता नहीं मिली।

राणा की अधिकांश सेना कट गई थी। वे जंगलों में चले गये और वहाँ अपनी सैन्य-शक्ति बढ़ाने लगे। मुगल सैन्य दूर-दूर तक सारे मारवाड़ में फैल गई। एक के बाद एक किले प्रताप के हाथ से छिनते गए, पर वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जंगलों में छिपकर अकस्मात मुगल सेना पर टूट पड़ते और उन्हें मारकर क्षण में भाग जाते। वर्षों इसी प्रकार का युद्ध होता रहा। प्रताप को जंगलों में, पर्वतों में, कन्दराओं में छिपकर भूखा-प्यासा रहना पड़ता, पर उनकी तलवार और भाला सदैव मुगलों का सिर

ढूंढता रहता था। किसी को भोजन करते, किसी को सोते, किसी को बातें करते उनकी तलवार के घाट उतरना पड़ता था। सिपाही सोते-सोते रघुपतिसिंह का सपना देख कर बड़बड़ाया करते थे। मुगलों की एक बड़ी शक्ति रघुपतिसिंह के पकड़ने में लगी थी।

रघुपतिसिंह के परिवार में उसकी स्त्री और एक इकलौते बेटे को छोड़कर और कोई न था। देश के चरणों में आत्म-समर्पण करने जब वह निकला था तो उसका प्रिय पुत्र बहुत बीमार था। पर रघुपतिसिंह घर में न रह सकता था। बादशाह ने उसके पकड़ने को इतनी सेना भेजी थी कि देश मुगलों से भर गया था। रघुपति का घर भी घेर लिया गया था। वीर रघुपति को पुत्र के समाचार मिले—वह कुछ घड़ी का मेहमान है और अकेली उसकी पत्नी मुगलों से घिरे घर में उसे लिये बैठी है। रघुपति का माथा सिकुड गया। कठिन परीक्षा आ उपस्थित हुई।

सूरज डूब रहा था और उसकी लाल किरणें रघुपति के सुनसान मकान पर फीकी ज्योति डाल रही थी। पहरेदार सावधानी से द्वार पर टहल रहा था कि धीरे-धीरे एक मूर्ति मकान की ओर अग्रसर हुई। मूर्ति का विशाल शरीर, काली दाढ़ी, मरोड़ी मूंछे और उभरी हुई छाती उसकी महत्तना का परिचय दे रही थी। उसके मुख की प्रभा, नेत्रों का तेज तथा प्रशस्त ललाट दिप रहा था। मूर्ति धीरे-धीरे चलकर द्वार पर आ पहुँची। पहरेदार ने पुकारकर पूछा—'कौन है ? खड़े रहो।'

उत्तर मिला—'रघुपतिसिंह'।

पहरेदार सन्नाटे में आ गया। एक बार उसका मुख सूख गया। पहले तो उसने संकेत से साथियों को बुलाना चाहा। पर फिर भी उसने साहस करके कहा—

'तुम्हारे वास्ते हुक्म है कि तुम जहाँ मिलो, पकड़ लिये जाओ।'

'किसका हुक्म है ?' रघुपतिसिंह ने दर्प से पूछा।

'बादशाह सलामत का।'

'मैं उनकी प्रजा नहीं हूँ ?' यह कहकर रघुपति और निकट चले आये। सिपाही भय से काँप उठा। उसने भयभीत स्वर में कहा—'इसमें हमारा क्या चारा है ? हजारों सिपाहियों ने आपका मकान घेर रक्खा है।'

रघुपतिसिंह ने कुछ सोचकर कहा — तनिक ठहरो मेरा बच्चा मर रहा है मैं उसे जरा देख आऊँ और पत्नी को तसल्ली दे आऊँ, तब तुम गिरफ्तार कर लेना।'

'और अगर तुम भाग जाओ?'

रघुपतिसिंह ने तड़पकर कहा—'पातकी, कायर! राजपूतों पर सन्देह?'

सिपाही को याद आई, जब वह लड़ाई पर चला था, उसका इकलौता बेटा बीमार था। उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने गद्‌गद होकर कहा 'जाओ भैया। अपने बालक को देख आओ।'

रघुपतिसिंह भीतर आया। देखकर उसका पहाड़ सा दिल दहल गया। लड़का मूर्छित अवस्था में पड़ा था। उसकी स्त्री उसका सिर गोद में लिये बैठी थी।

पति को देखते ही स्त्री बिखर गई। रघुपतिसिंह ने कहा—'देवी, अधीर मत हो। यही तो समय है।' उन्होंने बच्चे को देखा, उपचार बताया और चलने लगे।

स्त्री ने पूछा—'कहाँ चले?'

'गिरफ्तार होने।'

'ठहरो, मैं गुप्तद्वार खोले देती हूँ, उसी राह से निकल जाओ।'

रघुपतिसिंह ने स्त्री को छाती से लगा लिया। वह रोने लगी।

उन्होंने कहा—'मेरी प्यारी! रघुपतिसिंह की पत्नी होकर ऐसी बात कभी मत कहना। शत्रु तुम्हारे स्वामी को झूठा, दगाबाज कहकर पुकारें, इससे तो यह कहीं अच्छा है कि उसके शरीर की बोटियाँ काट डालें। सुख में तो सभी की मति बनी रहती है। सो आपत्ति में यदि तुम भी चल बुद्धि हो जाओगी तो साधारण स्त्री और रघुपति की स्त्री में क्या अन्तर रहेगा?'

राजपूतानी ने कातर हृदय से क्षमा माँगी। रघुपति चल दिये।

स्त्री ने कहा—'स्वामी! कुछ क्षण और ठहर जाओ।'

रघुपति ने कहा—'नहीं, नहीं, कहीं शत्रु हमें कायर न समझें।'

रघुपति चल दिया। द्वार पर सिपाही से कहा—'अब तुम मुझे गिरफ्तार कर सकते हो।'

सिपाही ने अपना हाथ बढ़ाकर रघुपति के कन्धे पर रखा और कहा—'बहादुर! भाग जाओ, खुदा, तुम्हारे बच्चे पर करम बख्शे।'

राजपूत ने हाथ मिलाकर कहा—'कभी राजपूत को समय पर आजमा लेना।' अँधेरा बढ़ रहा था। उस अँधेरे में रघुपतिसिंह खो गये।

'नमक हराम, बेईमान, तेरा यह काम?'

'दुहाई खुदावन्द करीम की, मैंने नमकहरामी नहीं की।'

'तो क्या यह झूठा है?'

'क्या बन्दानवाज?'

'कि तूने दुश्मन को छोड़ दिया। जिसके लिए शाही खजाने से लाखों रुपये बर्बाद हो गये हैं और जिसने सैकड़ों दीनदारों को हलाल कर दिया है।'

'हुजूर की दुहाई है। वह मुसीबत जदा काफिर, उसका बच्चा मर रहा था। वह उसे देखने आया था। मुझे रहम आ गया—आखिर काफिर भी तो इन्सान है।'

'कुत्ते के पिल्ले, दीनदार होकर काफिर पर रहम! काफिर भी कैसा—जिसने हजारों दीनदारों की औरतों को बेवा बना दिया। वह फँसा हुआ शेर तूने गफलत से नहीं, जान-बूझकर छोड़ दिया। पाजी, ठहर तेरे रहम की कैसी कीमत लगाता हूँ। मुहम्मद, कस लो इस बदजात की मुश्कें और खम्भों से बाँधकर चाबुक उड़ाओ। इस हकीर को शाही हुक्म की उदूली करने का मजा अभी मिल जाएगा।'

सेनापति के शब्द मुँह से निकलते ही उसकी मुश्कें कस ली गईं और सपासप चाबुक पड़ने लगे। बूढ़ा दिलदार सिपाही तिलमिलाकर तड़प उठा। इसके कुछ क्षण बाद ही उसने देखा रघुपतिसिंह लपका हुआ आ रहा है।

सिपाही ने संकेत से कहा—'भाग जाओ, भाग जाओ। मैं नाचीज मर रहा हूँ, कुछ परवाह नहीं। मगर तुम कौम के सितारे हो। तुम पर एक मामूली दुश्मन सिपाही की जान कुर्बान।'

रघुपति ने आगे बढ़कर कहा—'धर्मात्मा यवन, राजपूत अपने लिए

अपने मित्रों को कभी सकट मे नहीं डालते।

उन्होंने पुकारकर कहा—'फौजदार, रघुपति हाजिर है, इसे पकड़ लो और इस बे-गुनाह सिपाही को छोड़ दो।' पल भर में रघुपति की मुश्कें कस ली गई।

दोनों को कत्ल का हुक्म हुआ। दोनों बाँधकर वध-भूमि मे लाये गये। जल्लाद नंगी तलवार लिये खड़े हो गये। हजारों लोगों की भीड़ लग गई थी। रघुपति को देखने को सभी उत्सुक थे। सब कुछ तैयार था, बादशाह सलामत के आने की देर थी। जहाँपनाह का खास हुक्म मिला था कि यह सजा उनके रूबरू दी जायेगी।

रघुपति ने सिपाही से कहा—'भाई! मुझे यही अफसोस रहा कि तुम्हारे एहसान का बदला न दे सका।'

सिपाही ने कहा—'कुछ हर्ज नही बहादुर, तुम्हारे लिए मरने में कुछ रज नहीं है।'

लोगों में शोर उठा। दूर पर धूल उड़ती नजर आई। फौजदार ने जल्लाद को तैयार रहने का हुक्म दिया। जल्लादो ने अपनी भारी तलवारो को तोलकर देख लिया। क्षण भर में सवारों की टुकड़ी आ पहुँची। सबसे पहले जो सवार उतरकर खड़ा हुआ, सबने देखा वह शहंशाह अकबर था।

फौजदार ने जमीन तक झुककर आदाब बजाई। बादशाह उधर न देखकर आगे को सिपाही की ओर बढ़ा, सर्वत्र सन्नाटा था। सिपाही के पास पहुँचकर बादशाह ने कहा—

'ऐ नेकबख्त! जो मुसीबत जदों पर रहम नही करता, वह सच्चा सिपाही नही, खूंखार जानवर है। तूने अपनी लियाकत से ऊँचा फर्ज पूरा किया है। तेरा कोई कसूर नही। अलबत्ता तेरी तबियतदारी का इनाम दिया जाता है—आज से तुम फौजदार बनाये गये।'

इतना कहकर बादशाह ने अपने हाथ से सिपाही की बेड़ियाँ खोल दी।

सिपाही कुछ न कह सका। वह रोता हुआ वहीं बादशाह के कदमों पर गिर गया।

बादशाह रघुपति की ओर बढ़े और कहा—

'बहादुर ! मैं चाहता हूँ कि दुनिया जाने कि अकबर बहादुरी का नाकदरा नहीं है। तुम्हारे जैसा वीर इस तरह कुत्तों की मौत नहीं मर सकता। जाओ, मैं तुम्हें छोड़ता हूँ। जी चाहे तो राणा के पास लौट जाओ।' रघुपति का मुँह एक बार लाल हो गया, फिर पीला पड़ गया। क्षण भर वह खड़ा रहा और फिर उसने अपनी तलवार धरती पर फेंककर कहा—

'शाहंशाह, तेज तलवार और शाही जलाल जो कुछ न कर सका, वह आपकी उदारता ने कर दिखाया। आज से रघुपति आपका मित्र हुआ।'

बादशाह ने प्रेम से उसे छाती से लगाया और तलवार उसकी कमर में बाँध दी।

अनेक कष्ट और बाधाओं को सहते हुए राणा ने भामाशाह की अतुल धनराशि पाकर सैन्य एकत्रित की और मुगलों से किले वापस लेने आरम्भ किये। किले की मुगल छावनियाँ काट डाली गईं। धीरे-धीरे अजमेर, चित्तौड़ और मंगलगढ़ के किलों को छोड़कर शेष सारा मेवाड़ राणा ने जीतकर अपने आधीन कर लिया। उन्होंने २२ वर्ष अकबर से युद्ध किया और प्रण किया कि जब तब मैं चित्तौड़ दुर्ग न ले लूँगा, तब तक शय्या पर न सोऊँगा, सोने-चाँदी के थालों में भोजन न करूँगा, सेना का बाद्य सेना के आगे न बजाकर पीछे बजेगा।

प्रताप जीवन भर युद्धरत रहे, परन्तु चित्तौड़ न ले सके। प्रताप के अन्तिम वर्षों में अकबर ने भी अस्वस्थ रहने के कारण उनपर नये आक्रमण नहीं किए।

अन्तिम श्वास लेने से प्रथम राणा ने अपने सरदारों से कहा कि चित्तौड़ विजय जारी रखना, युवराज अमरसिंह की तलवार न झुकने पाये।

प्रताप की मृत्यु ५७ वर्ष की आयु में १९ जनवरी, १५९७ को हुई।

रघुपतिसिंह ने कुछ सोचकर कहा—'तनिक ठहरो, मेरा बच्चा मर रहा है, मैं उसे जरा देख आऊँ और पत्नी को तसल्ली दे आऊँ, तब तुम गिरफ्तार कर लेना।'

'और अगर तुम भाग जाओ ?'

रघुपतिसिंह ने तड़पकर कहा—'पातकी, कायर ! राजपूतों पर सन्देह ?'

सिपाही को याद आई, जब वह लड़ाई पर चला था, उसका इकलौता बेटा बीमार था। उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने गद्‌गद होकर कहा—'जाओ भैया। अपने बालक को देख आओ।'

रघुपतिसिंह भीतर आया। देखकर उसका पहाड़ सा दिल दहल उठा। लड़का मूर्छित अवस्था में पड़ा था। उसकी स्त्री उसका सिर गोद में लिये स्थिर बैठी थी।

पति को देखते ही स्त्री बिखर गई। रघुपतिसिंह ने कहा—'देवी, अधीर मत हो। यही तो समय है।' उन्होंने बच्चे को देखा, उपचार बताया और चलने लगे।

स्त्री ने पूछा—'कहाँ चले ?'

'गिरफ्तार होने।'

'ठहरो, मैं गुप्तद्वार खोले देती हूँ, उसी राह से निकल जाओ।'

रघुपति ने स्त्री को छाती से लगा लिया। वह रोने लगी।

उन्होंने कहा—'मेरी प्यारी ! रघुपतिसिंह की पत्नी होकर ऐसी बात कभी मत कहना। शत्रु तुम्हारे स्वामी को झूठा, दगाबाज कहकर पुकारें, इससे तो यही अच्छा है कि उसके शरीर की बोटियाँ काट डालें। सुख में तो सभी की मति बनी रहती है। सो आपत्ति में यदि तुम भी चल बुद्धि हो जाओगी तो साधारण स्त्री और रघुपति की स्त्री में क्या अन्तर रहेगा ?'

राजपूतनी ने कातर हृदय से क्षमा माँगी। रघुपति चल दिये।

स्त्री ने कहा—'स्वामी ! कुछ क्षण और ठहर जाओ।'

रघुपति ने कहा—'नहीं, नहीं, कहीं शत्रु हमें कायर न समझें।'

रघुपति चल दिया। द्वार पर सिपाही से कहा—'अब तुम मुझे गिरफ्तार कर सकते हो।'

सिपाही ने अपना हाथ बढ़ाकर रघपति के कंधे पर रखा और कहा—'बहादुर! भाग जाओ, खुदा, तुम्हारे बच्चे पर करम बख्शे।'

राजपूत ने हाथ मिलाकर कहा—'कभी राजपूत को समय पर आजमा लेना।' अँधेरा बढ़ रहा था। उस अँधेरे में रघुपतिसिंह खो गये।

'नमक हराम, बेईमान, तेरा यह काम?'

'दुहाई खुदावन्द करीम की, मैंने नमकहरामी नहीं की।'

'तो क्या यह झूठा है?'

'क्या बन्दानवाज?'

'कि तूने दुश्मन को छोड़ दिया। जिसके लिए शाही खजाने से लाखों रुपये बर्बाद हो गये हैं और जिसने सैंकड़ों दीनदारों को हलाल कर दिया है।'

'हुजूर की दुहाई है। वह मुसीबत जदा काफिर, उसका बच्चा मर रहा था। वह उसे देखने आया था। मुझे रहम आ गया—आखिर काफिर भी तो इन्सान है।'

'कुत्ते के पिल्ले, दीनदार होकर काफिर पर रहम! काफिर भी कैसा—जिसने हजारों दीनदारों की औरतों को बेवा बना दिया। वह फँसा हुआ शेर तूने गफलत से नहीं, जान-बूझकर छोड़ दिया। पाजी, ठहर तेरे रहम की कैसी कीमत लगाता हूँ। मुहम्मद, कस लो इस बदजात की मुश्कें और खम्भों से बाँधकर चाबुक उड़ाओ। इस हकीर को शाही हुक्म की उदूली करने का मजा अभी मिल जाएगा।'

सेनापति के शब्द मुँह से निकलते ही उसकी मुश्कें कस ली गईं और सपासप चाबुक पड़ने लगे। बूढ़ा दिलदार सिपाही तिलमिलाकर तड़प उठा। इसके कुछ क्षण बाद ही उसने देखा रघुपतिसिंह लपका हुआ आ रहा है।

सिपाही ने संकेत से कहा—'भाग जाओ, भाग जाओ। मैं नाचीज मर रहा हूँ, कुछ परवाह नहीं। मगर तुम कौम के सितारे हो। तुम पर एक मामूली दुश्मन सिपाही की जान कुर्बान।'

रघुपति ने आगे बढ़कर कहा—'धर्मात्मा यवन, राजपूत अपने लिए

अपने मित्रों को कभी संकट में नहीं डालते।'

उन्होंने पुकारकर कहा—'फौजदार, रघुपति हाजिर है, इसे पकड़ लो और इस बे-गुनाह सिपाही को छोड़ दो।' पल भर में रघुपति की मुश्कें कस ली गईं।

दोनों को कत्ल का हुक्म हुआ। दोनों बाँधकर वध-भूमि मे लाये गये। जल्लाद नंगी तलवार लिये खड़े हो गये। हजारों लोगों की भीड़ लग गई थी। रघुपति को देखने को सभी उत्सुक थे। सब कुछ तैयार था, बादशाह सलामत के आने की देर थी। जहाँपनाह का खास हुक्म मिला था कि यह सजा उनके रूबरू दी जायेगी।

रघुपति ने सिपाही से कहा—'भाई! मुझे यही अफसोस रहा कि तुम्हारे एहसान का बदला न दे सका।'

सिपाही ने कहा—'कुछ हर्ज नहीं बहादुर, तुम्हारे लिए मरने मे कुछ रंज नही है।'

लोगों में शोर उठा। दूर पर धूल उड़ती नजर आई। फौजदार ने जल्लाद को तैयार रहने का हुक्म दिया। जल्लादों ने अपनी भारी तलवारों को तोलकर देख लिया। क्षण भर में सवारों की टुकड़ी आ पहुँची। सबसे पहले जो सवार उतरकर खड़ा हुआ, सबने देखा वह शहंशाह अकबर था।

फौजदार ने जमीन तक झुककर आदाब बजाई। बादशाह उधर न देखकर आगे को सिपाही की ओर बढ़ा, सर्वत्र सन्नाटा था। सिपाही के पास पहुँचकर बादशाह ने कहा—

'ऐ नेकबख्त! जो मुसीबत जदों पर रहम नहीं करता, वह सच्चा सिपाही नहीं, खूंखार जानवर है। तूने अपनी लियाकत से ऊँचा फर्ज पूरा किया है। तेरा कोई कसूर नहीं। अलबत्ता तेरी तबियतदारी का इनाम दिया जाता है—आज से तुम फौजदार बनाये गये।'

इतना कहकर बादशाह ने अपने हाथ से सिपाही की बेड़ियाँ खोल दीं।

सिपाही कुछ न कह सका। वह रोता हुआ वहीं बादशाह के कदमों पर गिर गया।

बादशाह रघुपति की ओर बढ़े और कहा—

'बहादुर! मैं चाहता हूँ कि दुनिया जाने कि अकबर बहादुरी का नाकदरा नहीं है। तुम्हारे जैसा वीर इस तरह कुत्तों की मौत नहीं मर सकता। जाओ, मैं तुम्हें छोड़ता हूँ। जी चाहे तो राणा के पास लौट जाओ।' रघुपति का मुँह एक बार लाल हो गया, फिर पीला पड़ गया। क्षण भर वह खड़ा रहा और फिर उसने अपनी तलवार धरती पर फेंककर कहा—

'शाहंशाह, तेज तलवार और शाही जलाल जो कुछ न कर सका, वह आपकी उदारता ने कर दिखाया। आज से रघुपति आपका मित्र हुआ।'

बादशाह ने प्रेम से उसे छाती से लगाया और तलवार उसकी कमर में बाँध दी।

अनेक कष्ट और बाधाओं को सहते हुए राणा ने भामाशाह की अतुल धनराशि पाकर सैन्य एकत्रित की और मुगलों से किले वापस लेने आरम्भ किये। किले की मुगल छावनियाँ काट डाली गईं। धीरे-धीरे अजमेर, चित्तौड़ और मंगलगढ़ के किलों को छोड़कर शेष सारा मेवाड़ राणा ने जीतकर अपने आधीन कर लिया। उन्होंने २२ वर्ष अकबर से युद्ध किया और प्रण किया कि जब तब मैं चित्तौड़ दुर्ग न ले लूँगा, तब तक शय्या पर न सोऊँगा, सोने-चाँदी के थालों में भोजन न करूँगा, सेना का वाद्य सेना के आगे न बजाकर पीछे बजेगा।

प्रताप जीवन भर युद्धरत रहे, परन्तु चित्तौड़ न ले सके। प्रताप के अन्तिम वर्षों में अकबर ने भी अस्वस्थ रहने के कारण उनपर नये आक्रमण नहीं किए।

अन्तिम श्वास लेने से प्रथम राणा ने अपने सरदारों से कहा कि चित्तौड़ विजय जारी रखना, युवराज अमरसिंह की तलवार न झुकने पाये।

प्रताप की मृत्यु ५७ वर्ष की आयु में १९ जनवरी, १५९७ को हुई।

१८

महादान

महादरिद्र और दयनीय व्यक्ति द्वारा अपनी सबसे प्रिय वस्तु का दे देना सब दानों में श्रेष्ठ है।

पाँच सौ बरस पहले, राजपूताने में एक बारहट ईश्वरदास बड़े प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनका आदर-सत्कार करते और लाखों मन की जागीरें उनको देते थे।

एक बार वह देशाटन करते हुए नागर चाल देश में जा निकले और वहाँ के एक गाँव में विश्राम किया। बारहटजी का एक नियम था कि सिवा क्षत्रिय के और किसी का अन्न नहीं ग्रहण करते थे। गाँव में बहुत ढूँढने से मालूम हुआ कि बहुत गरीब एक विधवा बूढ़ी राजपूतनी रहती है जिसका एक पुत्र १४-१५ वर्ष का है, जिसका नाम सोंगा था। वे गौड़ राजपूत थे।

बारहटजी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसकी झोपड़ी में जा पहुँचे और अपना परिचय देकर कहा कि, 'मुझे भोजन कराइये।'

बुढ़िया बड़ी फिक्र में पड़ी। उसने बेटे से कहा—

'बेटे, ये बड़े भारी कवि, राजदरबार में पूजित बारहट हैं। जैसे बने इन्हें भोजन तो करा ही देना चाहिए।' यह कह उसने एक लोटा पुत्र को दिया कि इसे बेचकर भोजन का सामान ले आओ। सोंगा ने माता की आज्ञा का पालन किया और जैसे-तैसे वृद्धा ने बारहटजी को भोजन कराया। भोजन के बाद सोंगा ने हाथ जोड़कर बारहटजी से कहा—

'इस समय तो आपकी भेंट करने को मेरे पास कुछ नहीं है, जब मेरी भेड़ों की ऊन उतरेगी तो मैं एक कम्बल खुद तैयार करके आपकी भेंट करूँगा।' बारहटजी सोंगा की इस विनय और श्रद्धा से बहुत खुश हुए। और आगे को पधारे।

: २ :

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये। एक दिन सोंगा नदी किनारे भेड़ें

चरा रहा था अकस्मात नदी मे बाढ आ गई और सोंगा उसमे अपनी भेडों को बचाने की चेष्टा में स्वयं डूबने लगा। यह देख उसके साथी बालक रोने और चिल्लाने लगे। परन्तु सोंगा ने डूबते-डूबते कहा, मेरी माँ से कह देना बारहटजी को कम्बल दे दे। इसके बाद बालक सोंगा नदी मे डूब गया।

बुढ़िया माँ ने जब पुत्र का इस प्रकार अचानक निधन सुना तो पछाड खाने लगी। पर जब उसने पुत्र की अन्तिम इच्छा सुनी तो गर्व से उसकी छाती फूल उठी और कहा—क्यों नहीं, मेरा पुत्र सच्चा वीर क्षत्रिय अपनी बात का धनी था। बुढ़िया ने बड़े यत्न से बारहटजी के लिए स्वय ऊन कात-कातकर कम्बल तैयार किया। वह कम्बल न था, उसके पुत्र की आत्मा थी। वह उस कम्बल को छाती से लगाए कभी प्रेम के आँसू बहाती, कभी बातें करती, कभी हँसती थी। लोग उसे पागल समझते, पर बुढिया और अपाहिज समझकर तरस खाते थे। इस तरह कई साल बीत गये।

एक दिन बारहटजी फिर उसकी झोपड़ी में आ उपस्थित हुए। आते ही बुढ़िया से पूछा, सोंगा कहाँ है? बुढ़िया ने धीरज से आँसू रोके, और कहा—'आप विराजिये, भोजन कीजिये, सोंगा भी सेवा में आ जाएगा।'

जब बारहटजी भोजन से निपट चुके तो बुढ़िया ने वह कम्बल उनको भेट किया और रो-रोकर सोंगा के बह जाने और बहते-बहते कम्बल की याद करने की बात कही। सुनकर बारहटजी धन्य-धन्य कहने लगे। उन्होंने उस बालक की याद में बहुत-सी कविता बनाई जिनमे उसे बाली, विक्रम, दधीचि, कर्ण, शिवि और हरिश्चन्द्र से उपमा दी। राजपूताने भर मे वे कविताएँ अब तक गाई जाती हैं, जिससे उस बालक का नाम अमर हो गया है। एक दोहा जो बहुत प्रसिद्ध है, यह है—

जल डूबते जाय, सादज साँगारिये दियो।
कहज्यो मोरी माय, कविन देवै कामली॥

१६
बेला का व्याह

भारतवर्ष में स्त्रियों का अबला नाम प्रख्यात है। यह पता लगाने का कोई उपाय नहीं है कि कब से यह नीच उपाधि स्त्रीरत्नों को आर्यों के अशवरों ने प्रदान की है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जबसे ऐसा हुआ है तबसे भारतवर्ष नाश की ओर जा रहा है। बीसवीं शताब्दी के वातावरण में ऐसा मालूम हो रहा है कि शायद जगत् के साथ-साथ देश से भी यह अपवाद दूर हो जायगा। परन्तु यदि वस्तुस्थिति का गहराई से अध्ययन किया जाय तो मालूम होता है कि वास्तव में अभी तक वैसी कोई बात नहीं है। स्वाधीनता या उन्नति के नाम पर जो कुछ हो रहा है, वह वास्तव में आत्म-छल या आत्म-प्रतारणा मात्र है। हमने स्त्रियों की वेश-भूषा ऐसी बना रखी है कि यदि उन्हें किसी विपत्ति के समय भागना पड जाय तो वे अपने गहने-वस्त्रों में ही उलझकर गिर पड़ें। उनका रहन-सहन, जीवन इतना निकृष्ट है कि देखकर दु:ख होता है।

स्वभावत: यह देखा जाता है कि स्त्रियाँ योद्धा स्वभाव की होती हैं। उनके मस्तिष्क में प्रतिकार के या उत्तेजित हो जाने के तत्त्व बहुत अधिक हैं। जिहें कुपढ़ स्त्रियों के वाग्युद्ध देखने या उसमें घायल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे कह सकते हैं कि यदि इन सूरमाओं के भुजदण्ड हजारों वर्ष तक चूड़ियाँ और भारी गहने पहनाकर दुर्बल न कर दिये जाते और उन कलाइयों में ढाई पाव के लोहे की कराली पकड़ने का उनका प्राचीन अभ्यास जारी रहता तो आज मर्दों को जबान की तेज धार की अपेक्षा उसी लोहे की धार का शिकार बनना पड़ता।

प्राचीन काल में दुर्गा की तरह हुंकार भरकर—'गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावात्पवाम्यहम्।' कहने की शक्ति, और सिंह पर आसन जमाकर समरक्षेत्र में खड़े रहने की सत्ता जब स्त्री शक्ति में थी तब किस वीर को साहस था जो इन वीर बालाओं के देश की तरफ नजर उठा सकता? वेदों में स्त्रियों के प्रबल युद्धों के वर्णन हैं! सर माइकेल मधुसूदन के मेघ-

नाद वध काव्य में मेघनाद की महाप्राणा सती प्रमिला का जो ज्वलन्त चित्र दिया गया है जिसके सन्मुख महापुरुष राम को भी सिर झुकाना पडा था—वह स्त्री-जगत् के लिए वांछनीय वस्तु समझनी चाहिए।

भारत के मरते समय में रानी दुर्गावती, लक्ष्मीबाई और अनेक वीराङ्गनाएँ हो गई हैं जिन्होंने अपने सम्माननीय लहू से रण-क्षेत्र को सौभाग्य तिलक प्रदान किया है।

परन्तु आज—जहाँ के करोड़ों मर्द चुनी धोती पहने, बालों की माँग काढ़े, बारीक तंजेब का कुर्ता पहने, चर्र-मर्र बूट चटकाते गुलामी की कुर्सी की ओर दिन निकलते ही लपकते जाते हों, दिन भर गाली और फटकार खाकर, शाम को निर्लज्ज बनकर अपनी पत्नियों के सामने मर्द बनने की डींग हाँककर उनसे अपनी चरण सेवा कराते हों—वहाँ की स्त्रियाँ क्या हो सकती हैं? और उन भाग्यहीन सजीव मुर्दों से क्या आशा की जा सकती है!

दिल्लीपति पृथ्वीराज की कन्या बेला को महोबे के सामन्त आल्हा ने अपने भतीजे के लिए माँगने का साहस किया। सम्राट् की कन्या और तुच्छ शत्रु सामन्त! प्रस्ताव तिरस्कृत कर दिया गया। आल्हा नियत काल में बारात लेकर आ धमके। वह आजकल के निठल्ले चिकनियों की लड्डू खाने वाली बारात न थी। प्रत्येक बाराती लोहे के बख्तर से सजा था। प्रत्येक की रान के नीचे बिजली की तरह तड़पता हुआ घोड़ा था। प्रत्येक की दृष्टि में प्रलय की आग थी। १८ वर्ष का दूल्हा ब्रह्मानन्द स्त्रियों के सजने योग्य चमकीले वस्त्रों के स्थान पर सिर से पैर तक शस्त्रों से सज्जित था। उसके दाहिनी ओर अखण्ड योद्धा आल्हा, बाईं ओर प्रचण्ड अजेय शक्ति-पुंज ऊदल और आगे मृत्युंजय मलखान थे। दिल्ली के फाटक पर छावनी पड़ गई। रूपा नाई को बुलाकर कहा गया—जाओ, समधी से बारात की अगवानी करने को कह आओ। रूपा नाई उस बारात का उपयुक्त नाई था। बारात के सामन्तों में कोई ही योद्धा उसकी बराबरी का होगा। रूपा उड़ा, मय घोड़े के दरबार में घुस गया। पृथ्वीराज को यह धृष्टता सहन न हुई। सन्देश सुनकर तो वह जल उठे। संकेत के साथ योद्धा टूटे, दोनों हाथों में तलवार लेकर नेग भुगताने लगे। चारों ओर

मुण्ड ही मुण्ड थे। एक महा सामन्त का सिर काटकर रूपा लौटा और यह कहकर तीर की तरह लौटा कि नेग चुका-चुका और दक्षिणा में यह ले चला। अब फेरों के लिए तैयार रहना।

बारात बलपूर्वक नगर में घुसी। पद-पद पर लोहा था—मगर लोहे से लोहा भिड़ रहा था। वीरों की अजेय बारात काई की तरह योद्धाओं को चीरती हुई महलों में जा घुसी। ५२ महा सामन्त नंगी तलवारें ऊँची करके मण्डप बनाकर खड़े हो गये। कन्या हर ली गई, पुरोहित मन्त्र पढ़ने लगे। विवाह हो गया। रक्त फाग तो चारों तरफ चल ही रहा था। वधू का डोला लेकर बारात चल खड़ी हुई। नगर के फाटक पर ब्रह्मानन्द की छाती में तीर लगा और वह मर गये। बारात स्तब्ध थी। बेला ने सुना। वह डोली के बहुमूल्य सुनहरी पर्दे को चीरकर बाहर आई। उसने ललकार कर कहा—"इस बारात में कोई वीर है?" अनोखी ललकार थी। ऊदल आगे बढ़े, शोक से उनकी छाती भर रही थी। उन्होंने तलवार की नोक धरती पर गाड़कर कहा—"बेटी! क्या आज्ञा है?"

"सती होने की। क्या उसका प्रबन्ध कर सकते हो?"

"क्या प्रबन्ध करना होगा?"

"१०० मन चन्दन सूखा चाहिए।"

"कहाँ मिलेगा?"

"मेरे पिता की बारहदरी में चन्दन के खम्भे हैं—वह उखाड़ लाने होंगे।"

'सती की जय' कह ऊदल ने तलवार आकाश में घुमाई। बारात अन्तिम नेग लेने नगर में घुसी। भयानक घमासान और लोहू की नदी के बीच में खम्भे उखाड़े गये और बेला सती हुई।

२०

कान्ह चौहान

दिल्लीपति चौहान राजा पृथ्वीराज की सभा जुडी थी। बड़े-बड़े सुभट योद्धा अपनी-अपनी जगह बैठे थे। जैतराम परमार, सलख परमार, डुड्डर-राय, गोइन्दराय गहलौत आदि ६४ सावंत मूर्तिमान वीररस की भांति विराजमान थे। सबके बीच में ज्वलन्त नक्षत्र के समान दीप्तिवान् महाराज पृथ्वीराज सिंहासन पर बैठे थे। उनके बगल में उनके काका कान्ह थे जिनकी टक्कर का योद्धा उस काल में उत्तर भारत में कोई न था। उनकी विकराल मूर्ति, चढ़ी हुई मूँछें और लाल-लाल नेत्र ऐसे थे कि उनके सम्मुख देखने का धैर्य बड़े-बड़े वीरों को नहीं होता था।

सभा में गुजरात के महाराज भीमदेव सोलंकी के चारों भाई भी सरदारों की पंक्ति में बैठे थे। गुजराधिपति से रुष्ट होकर इन्होंने दिल्लीपति की शरण ली थी और महाराज पृथ्वीराज ने उन्हें उचित जागीर देकर आदर-मान से दरबार में रखा था।

सरस्वती के वरद पुत्र चन्द कवि अपनी कवितापाठ से वीरों के हृदयों में ज्वार-भाटा उत्पन्न कर रहे थे। एकाएक सोलंकी राजकुमारों ने जोश में आकर मूँछों पर ताव देना शुरू कर दिया। यह देख काका कान्ह ने आव देखा न ताव, तलवार खींच चारों कुमारों का सिर भुट्टा-सा उड़ा दिया। सारे दरबारी भीत-चकित देखते रह गये। दरबार में लोहू-ही-लोहू हो गया।

पृथ्वीराज ने रोष भरे स्वर में कहा—

"काकाजी, आपने यह क्या अधर्म का काम कर डाला! शरणागत को मार दिया! अब दुनिया में हम कैसे किसी को मुँह दिखा सकेंगे। आप हमारे बड़े है। जो कुछ बदनामी होगी आप ही की होगी, हमारी नहीं।"

कान्ह ने तलवार म्यान में रखते हुए धीर-गम्भीर स्वर से कहा
"चाहे जो भी हो पर चौहानों के सामने और कोई मूँछों पर ताव दे... यह

मैं नहीं देख सकता।"

"अच्छी बात है। भविष्य में ऐसे अप्रिय प्रसंग हों यह मैं भी नहीं देख सकता।" पृथ्वीराज ने एक चमड़े की रत्नजटित पट्टी बनवाई जिसका मूल्य दो लाख रुपये था—उसे कान्ह की आँखों पर बाँधते हुए पृथ्वीराज ने कहा—"यह पट्टी हमेशा आपकी आँखों पर बँधी रहेगी। सिर्फ रण-स्थलों में या सेजों पर ही खुल पावेगी।"

कान्ह ने यह दण्ड स्वीकार किया और पट्टी आँखों पर बाँध ली।

: २ :

पन्द्रह बरस वह पट्टी नरनाह कान्ह की आँखों पर बँधी रही। बूढ़े बाबा ने राजा की आज्ञा का पूरे तौर पर पालन किया। पन्द्रह बरस बाद ग्यारह सौ योद्धा चुपचाप मंजिल मारते कन्नौज की सीमा पार कर रहे थे। इनमें सौ सामन्त और १ हजार चुने हुए योद्धा थे। यह दल पंगराज जयचन्द की कन्या संयोगिता का हरण करने जा रहा था। सामन्त मण्डली में घिरे हुए पृथ्वीराज वीरदर्प से दैदीप्यमान हो रहे थे। उनका प्रसिद्ध धनुष उनके हाथ में था। रतनारे नेत्रों में असह्य तेज था। ये ग्यारह सौ सवार एक लाख सेना का मुँह तोड़ने वाले थे। ये योद्धा नौ लाख सेना के निष्कर्ष थे।

सूर्योदय होते ही कन्नौज के राजमहल के कलश दीखने लगे। यह देख चन्द कवि ने कहा—"हे पृथ्वीनाथ, समस्त क्षत्रिय वंश और छत्रधारियों में श्रेष्ठ, असंख्य सेना के अधिपति, अतुलित बाहुबल वाले, धर्म-धुरंधर कमध्वज कन्नौजराज जयचन्द के—जिनके सामने छत्तीसों वंश के क्षत्रिय सिर झुकाते और जिसके दरबार में छहों भाषा, नवों रस और चौदह विद्या तथा चौंसठ कला देह धर कर विराजती हैं—महलों के कलश यही हैं।"

यह सुनकर सब कोई सावधान हो गये। सेना के व्यूह की रचना की गई। सबके आगे भेष बदले गोइन्दराय गहलौत, नरसिंहराय दाहिमा, चन्द्रसेन पुण्डीर, सारंगराय सोलंकी, पज्जनराय कछवाहा, आजानुबाहु लोहाना, लंगरीराय, लखनसिंह बघेला आदि सावंत थे। बीच में पृथ्वी-राज और चन्द कवि तथा इनके पीछे व्यूहबद्ध सेना थी। कुछ आगे चलकर

सेना जब नगर में घुसने लगी तो झट पृथ्वीराज घोड़े से उतरकर चन्द कवि के साथ-साथ पैदल चलने लगे। यह देख सावन्तों ने कान्ह के पास जाकर कहा—"महाराज, यह सब क्या हो रहा है? न जाने यह भटवा कहाँ मरवायेगा। यह जबर्दस्त जयचन्द का दरबार है। यहाँ से बेदाग निकलना कठिन है। इसलिए आप कृपाकर अपनी पट्टी खोल डालिये। नहीं तो नगरवासी सन्देह करेंगे।" यह सुनकर कान्ह ने वह बहुमूल्य पट्टी खोल डाली। लाल-लाल आँखों से चारों ओर देखा और फिर कहा—

"भाइयो, अब सोचा-विचारी का समय नहीं है। चलो, आगे बढ़ो।"

वह वीरों का दल चुपचाप शत्रु-पुरी में घुस गया।

: ३ :

पृथ्वीराज ने बलपूर्वक संयोगिता को हरण कर लिया था। तीन लाख सेना ने उनके छोटे से दल को घेर लिया था। परन्तु वे वीर तलवारों के जोर पर अपना रास्ता निकालते हुए आगे बढ़ रहे थे। दो दिन से दिन-रात युद्ध चल रहा था और कूँच भी हो रहा था। उनंचास सामंत अबतक काम आ चुके थे। पृथ्वीराज को जीते जी दिल्ली पहुँचने की आशा न थी, न जयचन्द ही को पृथ्वीराज के पकड़ने की। योद्धा, हाथी, घोड़े, सब थक गये थे। हथियारों की धार झर गई थी। पृथ्वीराज का मुँह पसीना, धूल, थकान और धूप से झाँवरा हो गया था। संयोगिता की नस-नस टूट रही थी। मन-ही-मन पृथ्वीराज के मुँह का पसीना पोंछना चाहती थी और पृथ्वीराज उस सुकुमारी को उस घनघोर युद्ध में चपल घोड़े की पीठ पर अधिक-से-अधिक आराम देना चाहते थे।

कवि चन्द ने महाराज के निकट आकर कहा—"धन्य महाराज, जैसा आपने किया—कोई न करेगा, आपने वीरता की लाज रख ली, अब दिल्ली चलिये।" यह कहकर उसने राजा के घोड़े की बाग पकड़ ली। और कहा—चौहान और कमध्वज रूपी दो बंशों में बँधी रस्सी पर चढ़-कर नटवर चौहान, तूने अच्छा कर्तब दिखाया। आपकी सुरत साधना को हजारों भेरी, ढोल और घंटे बज रहे हैं। आपने अब कीर्ति और कुमारी दोनों ही पा लिये। अब सकुशल दिल्ली चलिये—काका कान्ह पंगु सेना के दल को यहीं रोक रखेंगे।

परन्तु राजा का यों निकल भागना सहज न था। पीछे समुद्र के समान सेना उमड रही थी—आगे पद-पद पर चौकियाँ और नाके रास्ते रोक रहे थे। सब सवारों से सलाह कर बलभद्रराय को मोर्चे पर छोड़ पीठ पर नरनाह कान्ह को रख राजा सावन्तों से घिरे अगल-बगल तलवारें फेंकते चले।

यह देख जयचन्द अधीर हो सारी सेना ले पृथ्वीराज पर पिल पड़े। इस भाँति पंगराज को रंग-बिरंगे झण्डे फहराते आते देख नरनाह कान्ह राजा को आगे बढ़ने का इशारा करके उलटकर वहीं खड़े हो गये। कान्ह को वहीं रुकते देख पृथ्वीराज का कलेजा हिल गया और वह आँखों में आँसू भर-कर घोड़े की बाग मोड कर खड़े हो गये। यह देख कान्ह ने ऊँचा हाथ करके राजा को आशीर्वाद देकर कहा—"पृथ्वीराज, जो आया है सो जायेगा, क्या राजा क्या रंक, जाओ अभी दिल्ली दूर है—बढ़े जाओ।"

इतने में जयचन्द आ धमका। कान्ह ने समझ लिया—यह घड़ी न टली तो अब घिर जाना पड़ेगा। उन्होंने अपने सेवक छगनराय की ओर देखा। स्वामी का संकेत पाते ही वह वीर दुधारा ले पंग सेना में घुस पड़ा। उस अकेले पर हजारों हाथ पड़ने लगे, पर उस वीर ने वे हाथ दिखाये कि लोग दंग रह गये। अन्त में उसका घोड़ा गुर्ज की चोट खाकर गिर गया—तब वह वीर पैदल लड़ने लगा। जब उसके पैर कट गये तो वह बिच्छू की भाँति खिसक-खिसककर पैर खींचकर शत्रुओं को गिराने और मारने लगा। अन्त में उसके हाथ भी कट गये और सिर भी काट डाला गया।

छगन के मोर्चे पर पृथ्वीराज ढाई कोस बढ़ आये। अब भूखे बाघ के समान क्रुद्ध, खरे खेतवारे, पट्टन का विजय करने वाले, पट्टन घोड़े पर सवार हो, हाथ में प्रलय काल की ज्वाला से ज्वाजल्यमान असील लम्बी, धूरी नराजी और जबर जंग गुरज लिये नरनाह कान्ह शत्रु की ओर बढ़े।

ऐड़ लगाते ही घोड़ा जोर से हीं करके उड़ चला। कान्ह ने शत्रुदल को काई-सा चीरना शुरू कर दिया। पंगदल में हाहाकार मच गया। हुल-सी मचने लगी। घोड़ा टापों और दाँतों से वीरों को घायल कर रहा था। कान्ह की गुर्ज खाते ही हाथी चिंघाड़ते, भागते, घोड़े उसी ठौर रहते, और छत्रधारियों की हड्डियाँ उड़ जातीं। काल की सी लाल-लाल जीभ

लपलपाती नराजी कभी किसी का चीरती हुई दो कर देती। वह एक की खोपड़ी फाडती, दूसरे का गला काटती, तीसरे की छाती चीरती, चौथे के दो टूक कर घोड़े का हनन करती। वे इस तरह सिर उतार रहे थे जैसे कुम्हार चाक पर से कुल्हड़ उतार रहा हो। वह सूर्य के समान तेजस्वी एक हाथ से नराजी फटकार रहा था और दूसरे से गुर्ज पेल रहा था।

कान्ह का यह विषम पराक्रम देख सारा पैगदल उन्हीं पर टूट पड़ा। हजारों चोटें पड़ने लगीं। वीर का शरीर क्षत-विक्षत होने लगा। फिर भी वह लाशों के ढेर पर चढ़ता हुआ शत्रुदल में घुस ही गया। अन्त में उसका गुर्ज और तलवार दोनों ही टूट गये। तब उसने कटार ली—वह पाव सेर लोहा ऐसी काट करने लगा कि त्राहि माम् त्राहि माम् मच गया। वह कटार उसके हाथ में ऐसी शोभायमान होती थी मानो हाथ में लोहे का अंकुर उगा हो। वह इस पार लगती तो उस पार जाती थी, वह भूखे सिंह की जीभ की भाँति यदि हाथी की गर्दन पर बैठ जाती तो रक्त की धार बहा देती थी। इस कटार से कान्ह ने पाँच हजार वीरों का हनन किया। दस हजार योद्धाओं को वे पहले मार चुके थे। अन्त में वह कटार भी टूट-कर झर गई। तब वह निहत्था वीर शूरमाओं को पकड़-पकडकर पछाड़ने लगा; जैसे धोबी कपड़े पत्थर पर पछाड़ता है। कभी वह दो वीरों को पकड़ कर उनकी खोपड़ी आपस में टकरा देता। कभी वह शत्रु का एक पैर दूसरे पैर से दबाकर उसे चीर कर फेंक देता।

यह देख जयचन्द ने अपने एक सरदार को नयी सेना लेकर भेजा। अन्त में तलवार का एक भरपूर हाथ गर्दन पर पड़ते ही उनका सिर गुट्टे-सा उड़ गया। पर मरते-मरते कान्ह ने उसे बीच से चीरकर दो कर दिया। अब इसका रुण्ड चौमुखी मार करने लगा। हजारों सिपाहियों की तलवारें उस पर पड़ीं और वह वीर तिल-तिल होकर भूमि पर गिरा—उसका वह प्रतापी घोड़ा भी वहीं खेत रहा।

इस मोर्चे से पृथ्वीराज ने दस कोस धरती दाबी।

२६
भगतसिंह के आत्मोत्सर्ग की कहानी

मैं भोजन पर बैठा ही था कि बलवन्तसिंह ने झपटते हुए आकर कहा—"झटपट तैयार हो जाइए, मैं टैक्सी लाया हूँ।"

वही, लाल अंगारा मुँह, दूज के चन्द्रमा के समान पतली और बाँकी मूँछें, मूँछों के नीचे वैसी ही बाँकी मुस्कराहट, सिर पर अंग्रेजी हैट, टर्न कालर की शर्ट और निकर, छोटी और तेज आँखें।

मैंने हँसकर कहा—"एकदम अर्जेण्ट आर्डर!"

"जी हाँ, परन्तु समय नहीं है। आप जल्दी कीजिए, और माताजी?" उसने मेरी पत्नी की ओर देखकर कुछ होंठों-ही-होंठों मे कहा।

"परन्तु कहाँ?" मैंने प्रश्न किया।

"एसेम्बली में, मैंने कल कहा न था, आज वहाँ खास दिन है, स्पीकर पटेल स्तीफा देंगे। स्वराज्य पार्टी वाक् आउट करेगी। और भी न जाने क्या कुछ न हो जाय।" उसके स्वर में तेजी थी, आँखें न जाने क्या सन्देश दे रही थीं और उसके पैर जैसे तपते तवे पर थे।

मैंने कहा—"आज जाना नहीं हो सकेगा बलवन्त, मुझे एक बहुत ही जरूरी काम है। फिर कभी।"

"फिर कभी नहीं, आज ही।" उसने झुँझलाकर कहा। फिर पत्नी की ओर देखकर कहा—'आप बहुत देर लगायेंगी, जरा जल्दी कीजिए, दस बज ही रहे है, पहुँचने में १०-१५ मिनट लग जायेंगे।"

पत्नी ने मेरी ओर देखा। गाहे-बगाहे यह युवक बलवन्त मेरे पास आ जाता है। विचित्र आदमी है। कभी बच्चों की तरह बेसिर-पैर की बातें करता है, कभी खूब गम्भीर हो जाता है, और कभी गुस्से में आता है, तो छोटे-बड़े किसी को भी नहीं बरकाता। मैं उसे प्यार करता हूँ। चाहता हूँ, जब आये, उसे दुलार करूँ, कुछ खिलाऊँ-पिलाऊँ। पर बहुत कम ऐसा कर पाता हूँ। एक तो वह कब आयेगा, और कब चल खड़ा होगा, इसका ठीक-ठिकाना ही नही, दूसरे शिष्टाचार की भी उसे परवाह नहीं, और

खाने-पहनने का तो कभी शौक ही नहीं। मुँहफट ऐसा कि कभी-कभी मुझे ही फटकार बैठता है। लेकिन मुझसे बातें ऐसे करता है, जैसे सगे पिता से। बाबूजी कहकर सम्बोधन करता है—गुस्से में भी और खुश रहने पर भी। कभी-कभी जबतक चाय-पानी मँगाऊँ, बात करते-करते भाग खड़ा होता है। बिल्कुल सनकी। पर आज कमीज-निकर नहीं है। हैट छज्जेदार बड़ी बाँकी है। कमीज के खुले गले से पुष्ट गर्दन खूब भली लग रही है। लाल सुर्ख स्वस्थ चेहरे पर खूब लाल पतले होंठ रंग दिखा रहे है। अभी उम्र ही क्या है! शायद २४ को पार कर रहा हो। अपना अता-पता कभी बताता नहीं। अर्जुन अखबार के सम्पादकीय विभाग में अनुवादक है। मेरे पास सिर्फ दो कारण से आता है, या तो फटकारने के लिए या रुपया माँगने के लिए। दोनों ही मामलों में संकोच और झिझक से रहित। एकदम दो टूक। फटकारता है मुझे कायर कहकर। इतने बड़े साहित्यिक होकर आप कुछ नहीं करते, यही उसका कहना है। रुपये माँगता है, तो कहता है, 'कुछ रुपये दीजिये बाबूजी।'

मैं हुज्जत नहीं करता। होते है तो दे देता हूँ नहीं तो पत्नी के पास भेज देता हूँ। पत्नी कभी उसे छूछे हाथ नहीं लौटाती। रुपया हाथ में न हो तो भी नहीं। कहीं से बन्दोबस्त कर देती है। हम लोग उससे यह नहीं पूछते—'रुपया का करोगे क्या?' रुपया वह कभी वापस देता भी नहीं। वापस करने की चर्चा कभी करता भी नहीं।

उसने गुस्से से कहा—"सारा वक्त आप यहीं बर्बाद कर देंगे बाबूजी।"

मैंने कहा—"मगर पास कहाँ है?"

"ये है," उसने जेब से निकाल कर दिखा दिये।

मैंने कहा—"देखूँ?"

"देख लीजियेगा रास्ते में, अब आप हाथ धोइये।"

"क्या खाना भी न खाऊँ?"

"अब लौटकर खाइएगा। कुल एक घण्टा ही तो लगेगा।" मैंने और हुज्जत नहीं की। उठ खड़ा हुआ। पत्नी बिना ही खाये तैयार हो गई। हम लोग जब एसेम्बली भवन में घुस रहे थे, तब दस बजकर १५ मिनट हो चुके थे।

: २ :

एसेम्बली भवन में आज बेशुमार भीड़ थी। दर्शक गैलरी में तिल धरने को जगह न थी। मुझे दर्शकों की गैलरी के द्वार पर छोड़कर बलवन्त जाने कहाँ गायब हो गया था। पत्नी को लेडीज गैलरी में बैठाकर मैं अपने बैठने की जुगत सोच रहा था। बैठने को जगह नहीं मिल रही थी। बहुत लोग मेरी ही भाँति खड़े या इधर-उधर भटक रहे थे। मैं बीच-बीच मे लोगो के कन्धों पर से उचक कर वक्ता के एकाध शब्द सुन लेता था। उस दिन व्यापार संरक्षण बिल पर बहस हो रही थी। बहस खूब गर्मागर्म थी। पर मुझे कुछ आनन्द नहीं आ रहा था, आराम से बैठने का डौल ही नही लग रहा था। मैं भीड़ से उचककर आगे देखने लगा। मोतीलाल नेहरू अपने स्थान से उठकर किसी दूसरे सदस्य के पास जा उसके कान मे फुसफुसा रहे थे। उधर ही मेरा ध्यान था। एक हल्का-सा धक्का खाकर पीछे देखा—रानी मण्डी खड़ी थी। मैं मुँह खोलकर उनसे कुछ कहना ही चाह रहा था, एक दुबले-पतले काले से युवक पर हठात् मेरी नजर पड गई। मैं सोचने लगा, इसे कहीं देखा था। उसने मेरी तरफ देखा—मुझे मालूम हुआ, मुझे देखकर उसके होंठ कुछ हिले, पर दूसरे ही क्षण वह आँखों से ओझल हो गया। थोड़ी देर सोचने के बाद याद आया—यह तो वह व्यक्ति है जिसने 'चाँद' के 'फाँसी अंक' के लिए राजनीतिक फाँसी प्राप्त बन्दियों का बहुत सा दुष्प्राप्य मसाला दिया था, परन्तु यह भाग क्यो गया ? बात क्यों न की ? मैं तेजी से उसी ओर को लपका जिस ओर वह गया था—पर उसका पता नही चला।

मैं इधर-उधर नजर दौड़ा ही रहा था कि सहसा तीर की भाँति तेजी से चलता हुआ बलवन्त उधर से गुजरा। वह एक प्रकार से मुझे धक्का देता हुआ सा निकल गया। मैंने उसे पुकारा और एक कदम उसके पीछे लपका, परन्तु उसने इस पर ध्यान नही दिया। कुछ देर बाद देखा—थोडे ही अन्तर पर वह उसी काले युवक से कुछ धीरे-धीरे बात कर रहा है। मैं तेज़ी से—कहना चाहिए दौड़कर उसके पास पहुँच गया। परन्तु मुझे उधर आता देख वे दोनों ही भिन्न दिशाओं की ओर जाकर एकदम भीड से गायब हो गये।

मैं इस अद्‌भुत मामले से चमत्कृत-सा खड़ा कुछ सोच ही रहा था कि घण्टी बजी। सब लोग आगे बढ़कर कार्रवाई देखने लगे। बहस खत्म हो चली थी और सदस्यगण थियेटर के पात्रों की भाँति इधर से उधर वोट देने को उठ रहे थे। मनोरंजक दृश्य था। सब लोग ध्यान से देख रहे थे। मैं भी और सब बात भूलकर यही देखने लगा।

मैं लेडीज गैलरी के निकट ही खड़ा था। स्पीकर पटेल ने स्थिर-गम्भीर स्वर में बिल पर अपना निर्णय दिया, और वे एक क्षण रुके। बगल के एक सज्जन बोले—'तो, स्पीकर अब रूलिंग देंगे और स्तीफा भी।' मेरा ध्यान स्पीकर की हिलती हुई दाढ़ी पर था। एकाएक भयानक धड़ाके से भवन हिल गया, और कोई दो गज ऊँची आग की लौ ठीक उसी स्थान पर उठ गई जहाँ सरकारी सदस्य बैठे थे। साथ ही ऊपर से खिड़कियों के काँच के टुकड़ों, धूल-गर्द की एक बौछार हम पर बरस गई।

क्षण भर के लिए मैं विमूढ़ हो गया। किसी ने कहा—'बम-बम।' ईंट, चूना और काँच के टुकड़ों की वर्षा हमारे ऊपर हो रही थी। भवन धुएँ से भर गया था। चारों ओर भगदड़ मच गई थी। गोरे सार्जेण्ट सबसे पहले उड़न छू हो गए थे। लेडीज गैलरी में यूरोपियन स्त्रियाँ चीख रही थीं। एक बूढ़ी मेम साहेब अपने ही साये में उलझकर छाता हाथ में लिये औंधे मुँह गिर गई थी, शेष स्त्रियाँ उन्हें कुचलती हुई बदहवास भाग रही थीं।

मेम साहबों को निरीह भारतीय स्त्रियों की भाँति रोते देखने का यह मेरे लिए पहला ही अवसर था। विचित्र दृश्य था। मैंने पत्नी का हाथ पकड़ा और एक प्रकार से उन्हें घसीटता हुआ सीढ़ियों तक ले गया। मेरा ख्याल था—यह बिल्डिंग ही ढह रही है। परन्तु कई क्षण बीतने पर भी बिल्डिंग ढही नहीं। जीने पर जाकर मैं खड़ा हो गया। मैंने सोचा—जीवन में फिर यह कब देखने को मिलेगा। पत्नी को वहीं खड़े रहने का संकेत कर मैं भीतर को लपका। लोग भागे आ रहे थे और मैं भीतर जा रहा था। मैं सीधा घटनास्थल की ओर दौड़ा। तभी और एक धमाका हुआ। धुएँ और अन्धकार में कुछ भी नहीं दीख रहा था। इसी समय जहाँ मैं था, वहाँ से ४-५ गज के फासले पर अचल खड़ा बलवन्त और उसके साथी

दनादन गोलियाँ चला रहे थे। मेरे बदन का खून जम गया। मैंने चाहा कि मैं उन्हें पुकारूँ या उनके निकट पहुँच जाऊँ। इसी क्षण बलवन्त ने गरज कर कहा—"लाँग लिव रेवोल्यूशन" और बहुत से पर्चे निकाल कर हवा में उछाल दिये। उसके साथी ने भी यही किया।

धुआँ कम हो रहा था। नीचे झाँककर देखा—सन्नाटा था। केवल दो व्यक्ति वहाँ बैठे थे। एक श्री क्रेअर, सरकार के गृह मन्त्री और दूसरे पं० मोतीलाल नेहरू। कुछ व्यक्ति पड़े कराह रहे थे जो श्री क्रेअर के स्थान पर आक्रान्त हुए थे। ऊपर दोनों ही युवक अचल खड़े थे।

बरांडे में शस्त्रों की खड़क और भारी-भारी बूटों की धमक सुनाई दी। दोनों ही कण्ठों ने नारा बुलन्द किया, "लाँग लिव रेवोल्यूशन" और इसी समय किसी ने चीखकर कहा—'पकड़ो इन्हें।'

गोरे सार्जेण्ट संगीनें ले-लेकर दौड़ते दिखाई दिए। मैंने भीड़ में घुस-कर देखा, दोनों युवकों को दो-दो सार्जेण्टों ने भुजपाश में पीछे से कस रखा है। दोनों युवकों की छाती उभरी हुई थी और उनके होंठों पर हास्य की रेखाएँ भारतीय क्रान्ति के इतिहास का नया अध्याय लिख रही थीं। लोग भाँति-भाँति की बातें कर रहे थे। मैं अचल खड़ा उन दोनों युवकों को देख रहा था जिनका असल भेद वर्षों के सम्पर्क से भी मैं न जान पाया था। मैं वहाँ से हटकर पत्नी के पास आ खड़ा हुआ। जब दोनों पास से गुजरे—बलवन्त की आँखों ने एक चोर नजर से हमारी ओर देखा, उसकी आँखें हँस रही थीं। पत्नी की आँखों में आँसू भर आए, जिन्हें उन चोर नजरों ने देख लिया। उसने मुँह फेरा, सीना ताना और क्रान्ति-पथ का जैसे शिलान्यास करते हुए पुलिस के घेरे में आगे बढ़ गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, भूचाल आया है, विश्व जल रहा है। प्रलय भूलोक को निगलने की तैयारी में है।

: ३ :

देखते-ही-देखते एसेम्बली भवन गोरी-काली पुलिस से भर गया। उसके सब द्वार बन्द कर दिये गए और एक प्रकार से भीतर के सभी लोग कैद हो गए। मैंने धीरे-धीरे भवन का एक चक्कर लगाया। चाह रहा था, कोई परिचित पुरुष मिल जाय, तो बात करूँ बाहर जाने की राह

निकालूँ। पत्नी बहुत परेशान थी। अब बलवन्त का क्या होगा? क्या कुछ दे-लेकर मामला साफ नहीं किया जा सकता? यह इन्होंने क्या किया? क्यों किया? बम होता क्या है? वह नही जानती थी कि क्रान्तिकारी कैसे जीव होते हैं। उनके क्रियाकलाप की भावना और उद्देश्य क्या है? और यह तो मैं भी नही समझ पाया था कि यह युवक, जो सदैव अस्थिर और अस्त-व्यस्त मेरे पास आता रहा है, क्रान्तिकारी दल का अग्रदूत है। सच पूछा जाय तो क्रान्तिकारी मामलों पर मैंने कभी गहराई से विचार ही नही किया था, यद्यपि चाँद के फांसी अंक में मैंने उसकी बहुत ऊहापोह की थी।

परन्तु अब तो मुझे यहाँ पाठकों को भी भारतीय क्रान्ति के सम्बन्ध मे दो शब्द लिखना उचित प्रतीत होता है। ईस्वी सन् १९१६ भारतीय क्रान्तिकारियों के नवयुग का प्रभात काल था। इसी वर्ष लार्ड चेम्स फोर्ड भारत के वायसराय होकर आये थे और तब से १९२१ तक उनका शासन-काल रहा। उनके इस पाँचवर्षीय शासनकाल में बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिफार्म्स बिल पास हुआ, जिसके फलस्वरूप भारत की शासन-प्रणाली मे रद्दोबदल हुए। लेजिस्लेटिव-कौन्सिल के स्थान पर कौन्सिल आफ स्टेट और लेजिस्लेटिव एसेम्बली, दो विभिन्न चेम्बर्स स्थापित हुए। प्रत्येक प्रान्त की व्यवस्थापिका सभाएँ बनीं और उनमें ७० प्रतिशत लोक-निर्वाचित सदस्य आसीन हुए। सर्वप्रथम भारतीय लार्ड सिन्हा बिहार-उड़ीसा के गवर्नर बनाये गए और इस प्रकार डायर की (द्वैत-शासन) व्यवस्था स्थापित हुई। परन्तु शीघ्र ही इस प्रणाली के दोषों को देखकर देश में असन्तोष उत्पन्न होने लगा। जिसके कारणों की जाँच के लिए 'साइमन कमीशन' की नियुक्ति हुई। परन्तु इस कमीशन में एक भी लोक-निर्वाचित सदस्य न था। इसलिए भारत ने इस कमीशन का तीव्र बहिष्कार किया। लाहौर में जब यह कमीशन पहुँचा, तो वहाँ की जनता ने सिंह-विक्रम लाला लाजपतराय के नेतृत्व में कमीशन का काले झण्डों से तिरस्कार किया, फलस्वरूप सरकार से संघर्ष हुआ और सिंह विक्रम लाजपतराय पुलिस की लाठी की चोट से आहत होकर स्वर्गगत हुए। परन्तु मरने से प्रथम वे कह गये कि मेरी छाती पर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश

साम्राज्य के कफन की कीलें होंगी।

सिंह विक्रम लाजपतराय की इस मृत्यु से देश भर क्रोध से जल उठा और प्रतिहिंसा की एक ऐसी प्रबल वासना जाग्रत हो गई कि जिसने सरकार को चिन्तित कर दिया। देश का यौवन हुँकार भरने लगा और उसने क्रान्तिकारी दल का संगठन किया। १७ नवम्बर, १९२८ को लाला लाजपतराय का देहान्त हुआ। उसके ठीक एक मास बाद सत्रह ही दिसम्बर को सन्ध्या के कोई पौने पाँच बजे दिन-दहाड़े लाहौर के पुलिस अफसर साण्डर्स को इन तरुण क्रान्तिदूतों ने गोलियों से ढेर कर दिया। यह उन लाठियों का पुरस्कार था जो देश-पूज्य लाजपत की छाती पर घातक रूप से पड़ी थीं।

पुलिस के दल के दल अपराधियों की खोज में देशभर में धूम मचाने लगे, परन्तु अपराधियों का कोई भी सुराग न लगा। बहुत से निरपराधों को जेल और पुलिस की यन्त्रणा अवश्य सहनी पड़ी। इसके चार मास बाद आठवीं अप्रैल को भारत को जगाने और अंगरेजों के बहरे कानों में चेतना उत्पन्न करने के लिए एसेम्बली भवन में यह धड़ाका हुआ धड़ड्ड्ड् ड् धा!!!

: ४ :

सैकड़ों गोरे और काले पुलिस के कर्मचारी भारी-भारी कदमों से भवन को दहलाते हुए तेजी से इधर से उधर घूम रहे थे। मेरी ही भाँति और भी अनेक दर्शक वहाँ बन्द हो गये थे। एक मजिस्ट्रेट द्वार पर एक-एक की छानबीन करता जाता था और एक-एक को छोड़ता जाता था। सन्देहास्पद जनों को रोकता भी जाता था। भीड़ बहुत थी और हम एक बार अपने प्रिय उस युवक को देखने को आतुर थे। सम्भवतः कोई सहायता पहुँचा सकें। भाँति-भाँति के लोग भाँति-भाँति की बातें कर रहे थे और यह तो हम समझ ही गए थे कि आधा पागल और जिद्दी-सा वह सुन्दर युवक एक जबर्दस्त क्रान्तिकारी था। उसके प्रति स्नेह के स्थान पर श्रद्धा और आश्चर्य के भाव मेरे मन में भर रहे थे।

तीन घण्टे व्यतीत हो गए। अब पुलिस कर्मचारियों के मुँह पर चिन्ता और घबराहट के चिह्न न थे। साहेब लोगों के चाय-पानी का समय हो गया। बैरा लोग चाय, टोस्ट, अण्डे ट्रे में सजाए तत्परता से इधर से उधर

ले जा रहे थे उन्हें देखकर पत्नी ने धीरे से कहा ये हत्यारे क्या उन्हें भी कुछ खिलायेंगे-पिलायेंगे या भूखा ही मारेंगे। मैं जवाब नहीं दे पाया था। (मैंने सोचा—उन्हें अब खाना, पीना, सोना, हँसना कहाँ नसीब!) कुछ पुलिस के अफसर तेजी से आते नजर आए। उनमें कुछ हँस-हँसकर बातें कर रहे थे। उनमें यूरोपियन भी थे। थानेदार लोग आसपास खड़े लोगों को संकेत से बगल में हटाते जाते थे। अकस्मात् हमने देखा—वे दोनों युवक हथकड़ियों में जकड़े हुए सामने से चले आ रहे हैं। वही धज, वही ऐंठ की चाल, वही निर्भीक दृष्टि, वही तिरछी मुस्कराहट। मेरी जेब में एक सन्तरा पड़ा था, ज्योंही वे मेरे पास से गुजरे—मैंने चाहा, यह सन्तरा मैं उस प्यारे युवक को भेंट कर दूं। परन्तु मैं साहस न कर सका—वह चला गया। हमारी ओर उसने आँखें तिरछी करके भी देखा नहीं।

अब हमने बाहर जाने की सोची। मैं पत्नी को आगे करके द्वार पर आया, भीड़ अब भी बहुत थी। बारी आने पर मैंने अपना पास मजिस्ट्रेट के आगे बढ़ाया। खुदा की मार, उस पर मेरे नाम के आगे प्रोफेसर लिखा था। उन दिनों में खामखाह अपने को प्रोफेसर लिख दिया करता था। मजिस्ट्रेट ने पूछा "आप कहाँ के प्रोफेसर है ?"

"अब तो नहीं, परन्तु कुछ वर्ष पूर्व लाहौर डी० ए० बी० कालेज में प्रोफेसर था।" डी० ए० वी० कालेज का नाम सुनते ही उसने आँखें फाड़-फाड़कर मेरी तरफ देखा फिर कहा—"अच्छा, अच्छा, जरा ठहरिए, मैं आपसे कुछ प्रश्न करूँगा। परन्तु श्रीमती जी जा सकती हैं।"

मैंने कहा—"खेद है, हम लोगों ने विवाह के समय सुख-दुःख में साथ रहने का वचन दिया है। ये मुझे अकेला छोड़कर शायद न जा सकेंगी।" मैंने मुस्कराकर कहा था—मजिस्ट्रेट ने भी मुस्कराकर मेरी ओर देखा। हम लोग हटकर एक बगल में खड़े हो गए।

थोड़ी देर बाद वह मेरे पास आया, कुछ प्रश्न किए। पता लिखा, और फिर मुझे चले जाने की अनुमति दे दी। बाहर आकर भी हम लोग गए नहीं। भवन का एक चक्कर लगाया। बहुत लोगों ने बहुत-सी बातें पूछीं। परन्तु मैं स्वयं ही भारी-भारी जिज्ञासाओं से भरा हुआ था। अन्ततः मैं द्वार के सामने भीड़ के साथ आ खड़ा हुआ। लोग इस बात से बड़े निराश हो

रहे थे कि बम से न कोई मरा, न यह भवन ही ढहकर ढेर हुआ।

थोड़ी देर बाद एक लारी आ खड़ी हुई। लारी खुली थी। उस पर आठ कान्सटेबुल सशस्त्र चढ़ गए। इसके बाद दोनों अभियुक्त गोरे सार्जेण्टों के पहरे में हथकड़ियों से जकड़, बन्द लाए गए। दोनों लारी पर खड़े हो गए। साथ में आ रहे थे श्री चमनलाल—प्रेस रिपोर्टर। युवकों ने एक बार क्रान्ति चिरंजीवी हो के नारे लगाए। लारी चल दी।

ठीक उसी समय 'प्यूपिल' दैनिक के कार्यालय के सदर दरवाजे पर एक पहलवान जैसे भारी भरकम व्यक्ति ने, जो साधारण मजदूरों जैसे कपड़े पहने था, एक बड़ा-सा लिफाफा चपरासी को दिया। लिफाफा सम्पादक के नाम था। सम्पादक ने जब उसे खोला तो उसमें एक फोटो और अंगरेजी मे टाइप किए कुछ पेज उनके हाथों मे खेल गए। सम्पादक के हाथ काँपने लगे। उनके संकेत से धड़धड़ाती मशीनें बन्द हो गयीं। प्रेस के सब दरवाजे बन्द कर दिये गये—वे पर्चे कम्पोज होने लगे। यह चित्र और चरित्र प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह का था, आज जिसने अंग्रेजी सरकार को इस प्रकार सलामी दी थी। रातों-रात पत्र छापकर प्रभात से पहले ही उस तेजस्वी युवक का चरित्र और चित्र घर-घर पहुँच गया और भगतसिंह का नाम एक बार विश्व की राजनीति में गूँज उठा।

उस दिन के साम्यवादी जवाहरलाल नेहरू, प्रजातन्त्री मोतीलाल, और अहिंसावादी गांधीजी ने इस कृत्य की निन्दा की। अन्य महापुरुषों ने भी।

परन्तु अभियुक्तों ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक शान्त रहकर पुलिस के सम्मुख अपराध की स्वीकृति दी, परन्तु और कुछ कहने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा—'हमें जो कुछ कहना है अदालत ही में कहेंगे।'

: ५ :

बड़ी ही धूमधाम और गर्म वातावरण में एक ट्राइब्यूनल के सम्मुख यह केस चला। इसका नाम हुआ लाहौर षड्यन्त्र केस! यह केवल असेम्बली में बम काण्ड ही से सम्बन्धित नहीं था, साण्डर्स हत्या, बम बनाना, राज-द्रोह आदि के संगीन जुर्म भी साथ थे। कुल इकतीस को इस अपराध का संगी-साथी बनाया गया था, पर पकड़े गये थे केवल २४ ही।

अदालत के सम्मुख भगतसिंह के नेतृत्व में अभियुक्तों ने जो लिखित बयान दिया—उसका सारांश यह है—

हम लोग संगीन मुजरिमों की हैसियत से यहाँ उपस्थित हैं। हम मनुष्य जीवन को पवित्र समझते हैं। हम न पागल हैं, न कलंकित हत्यारे। हम इतिहास के विद्यार्थी हैं और अपने देश की हालत को ठीक-ठीक देख रहे हैं। हम मक्कारी और पाखण्ड से घृणा करते है। हमारा यह व्यावहारिक प्रदर्शन एक ऐसी संस्था के विरुद्ध था जो प्रारम्भ ही से अयोग्य और शैतान है। यह तानाशाही और गैर-जिम्मेदार संस्था दुनिया के सामने भारत को बेबस और अपमानित स्थिति में बनाए हुए है। यह सरकार जनता के प्रतिनिधियों की राष्ट्रीय माँगों को सदा ठुकराती रही, असेम्बली द्वारा स्वीकृत प्रस्तावो को दमनकारी और निरंकुश ढंग से नव्वावाना हिकारत के साथ कलम के एक शोशे से रद करती रही है। बावजूद इस तमाम शानो-शौकत और तड़क-भड़क के जो करोड़ों मेहनतकशों की दौलत के बल पर कायम रखी जाती है, यह शैतानी सरकार एक ढोल की पोल है। यह संस्था सब कुछ हड़प जाने वालों की गलाघोटू ताकत का स्मारक और असहाय मेहनतकशों की गुलामी का चिह्न है। इसने देश के आदरणीय प्रतिनिधियो के सिर पर लात रखकर अमानुषिक बर्बर कानून बनाए हैं, जिससे देश के करोड़ों भूखे जन अपनी हालत से उबरने के उपायों से वंचित कर दिए गये हैं। हम अपनी आत्मा के क्रन्दन को नही दबा सकते। इसलिए हमने अंग्रेजो को सुख-स्वप्नों से जगाने के लिए असेम्बली-फर्श पर बम फेंके हैं। जिससे हम अपनी हृदय को चीरने वाली वेदना को प्रकट करें और बहरों के कान खोल दें, और बेपरवाहों, अन्यमनस्कों को समय पर चेता दें। बाद में हमने जानबूझ कर आत्मसमर्पण किया है और हम अपने कृत्यों का फल भोगने मे प्रसन्न हैं।

देशभर में इस मुकदमे की धूम मच गई। समाचार-पत्र ही नहीं, छोटे-बडे प्रत्येक की जबान पर इन तरुण क्रान्तिकारियों का नाम छा गया। पकड़-धकड़, और तलाशियों का तो कहना ही क्या? देश में किसी की कब शामत आ जाय, इसका ठिकाना न था।

एक दिन भोर के तड़के ही पुलिस के दल-बादल ने मेरा घर घेर

लिया। दिल्ली और लाहौर के कोई दर्जन भर पुलिस के उच्च अधिकार और इससे तिगुने सशस्त्र सिपाही। इसके अतिरिक्त एक दर्जन घुड़सवा सिपाही। सब गली-कूचों के नाके, रास्ते, मकान के द्वार पुलिस ने अपने कब्जे में कर लिये। पत्नी की घबराहट का ठिकाना न था। पर मुझे तो मुस्कराकर इन मेहमानों का स्वागत ही करना था।

दल के नेता थे, लाहौर पुलिस के डिप्टी-सुपरिण्टेंडेण्ट खान बहादुर··· साहब। उनके साथ मेरी शतरंजी चालें प्रारम्भ हुईं। प्रारम्भ से मैं समझ गया था कि पुलिस के मेधावी जनों ने चाँद के फाँसी अंक से इन क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध की सम्भावना से ही यह धावा किया है। हकीकत यह थी कि मुझे उक्त अंक के लिए बीसवीं शताब्दी के राजनीतिक हुतात्माओं के सम्पूर्ण चित्र और चरित्र ही उन लोगों से प्राप्त हुए थे। परन्तु यह भी सत्य है कि मैं इन युवकों के सम्बन्ध में तथा उनके क्रान्तिकारी कार्यों के सम्बन्ध में बहुत कम जानता था। इन लोगों द्वारा जो मैटर मुझे मिला था, उसके मैंने खण्ड-खण्ड कर डाले थे। एक-एक चरित्र को पृथक् करके उसके नीचे लेखक का कोई एक काल्पनिक नाम दे डाला था। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध का एक कागज का पुर्जा भी मैंने अपने घर में शेष छोड़ा नहीं था। एसेम्बली भवन से लौटते ही मैंने बड़ी तत्परता से सबसे पहले यही कार्य किया था। परन्तु मुझे यह नहीं मालूम था कि चाँद के मालिक ने इन्हें जो रुपये दिए थे, उनकी रसीदों के दस्तखत पुलिस को दिखा दिए थे।

खान बहादुर साहब ने बड़े तपाक से बातचीत शुरू की। बड़ी मिठास से बोले—"आपके आराम में खलल किया, माफ कीजिए। मगर हम लोग भी अपने फर्ज से लाचार है। हम आपको ज्यादा तकलीफ नहीं देंगे। चन्द सैकेण्डों ही की बात है। महज कुछ बातें आपसे जाननी हैं।"

मैंने स्थिर शान्त स्वर में कहा—"कहिए।"

खान बहादुर साहब ने एक सब-इन्स्पेक्टर को संकेत किया और उसने 'चाँद' का फाँसी अंक उनके सम्मुख रखा। उसके पन्ने उलटते हुए खान बहादुर साहेब बोले—

"इन मजामीन के लेखकों को तो आप जानते ही होंगे?"

"कुछ को जानता हूँ"—मैंने संक्षेप में कहा।

उन्होंने एक-एक लेख का शीर्षक देखना शुरू किया। मैं संक्षिप्त उत्तर देता गया। अन्त में वह स्थल आया जहाँ म्याऊँ का ठौर था—बोले, "ये लेख किसके हैं ?"

"भिन्न-भिन्न लोगों के।"

"लेखकों के नाम यही हैं जो लेख के नीचे छपे हैं ?"

"जी नहीं, वे सब फर्जी नाम हैं।"

खान बहादुर की आँखें चमकने लगीं। बोले—"फर्जी ?"

"जी हाँ।"

"क्यों ?"

"ऐसा हम अक्सर करते हैं, कुछ लेखक अपना नाम जाहिर करना नहीं चाहते, तो हम फर्जी नाम लिख देते हैं।"

"लेकिन यह तो गैर-कानूनी है।"

"हो सकता है, कानून तो मैं जानता नहीं।"

"लेकिन यह कहने ही से आप कानूनी जिम्मेदारी से बरी नहीं हो सकते।"

"शायद।"

"खैर, तो आप इन मजामीन के असली लेखकों के नाम बताइए।"

"वह तो मैं नहीं जानता।"

"क्यों ? क्या उन्होंने अपने नाम लिखे नहीं थे ?"

"जी हाँ, लिखे थे। पर वे सब तो जला डाले गये।"

खान बहादुर की वाणी धीरे-धीरे सख्त होती जाती थी। बोले—"जला भी डाले गये ?"

"चूँकि मैं निकम्मा कबाड़ा अपने घर में नहीं रखता।"

कुछ देर वे अपना होंठ चबाते रहे। फिर बोले—"आप को रेफरेन्स के लिए उन्हें रखना जरूरी था।"

"इस बात पर मैंने विचार नहीं किया।"

"फिर भी आपको कुछ नाम याद होंगे ?"

"जी नहीं, मुझे कोई नाम याद नहीं।"

"तो आप नाम नहीं बतायेंगे ?"

जो बात मैं जानता ही नहीं, वह कैसे बताई जा सकती है ?"

"तो जनाब सुनिए। हमें सरकारी हिदायतें हैं कि आप यदि पुलिस की मदद नहीं करते, तो आपको भी केस में मुलजिम गर्दान लिया जायेगा।"

"सुनकर प्रसन्न हुआ। आपने किस तरीके पर मुलजिम जुटाये हैं, समझ गया।"

"लेकिन हम अपनी तरफ से आप पर सख्ती करना नहीं चाहते। हम जानते हैं कि आप शरीफ आदमी हैं।"

"आपकी बड़ी कृपा है।"

"तो बताइए फिर ?"

"नाम तो बताये नहीं जा सकते।"

खान बहादुर ने तिरछी नजर से मेरी तरफ देखा, एक कुटिल मुस्कान उनके होंठों पर आई, फिर बोले—"हजरत, कुछ-कुछ हमें मालूम भी है।"

"यह तो बहुत अच्छा है।"

"तो जनाब, आप हमारे साथ शतरंज की चाल मत चलिये। सीधी बात कीजिए।"

"बात सीधी ही है, बाकी जैसा आप समझें।"

"तो इधर देखिये, यह क्या है।" उन्होंने इलाहाबाद के 'चाँद' कार्यालय के बहीखाते में एक रकम पर हुए दस्तखत मुझे दिखाये। फिर कहा—"अब कहिये, आप क्या अब भी इन्कार करेंगे कि आप इस शख्स को नहीं जानते ?"

मेरे बदन से पसीना छूट गया, और मेरी आँखों में अँधेरा छा गया। हे राम, क्या उस आदमी ने पुलिस को यह प्रमाण दे दिया। मैंने उसे एक खत लिखा था जिसमें ऐसे सब कागज नष्ट करने का संकेत था। वह खत भी यदि पुलिस के हाथ में है तो बस अब लदे।

मैं चुपचाप सोचता रहा। परन्तु शीघ्र ही मैंने अपने को संयत कर लिया।

"अब आप क्या सोच रहे हैं ?"

"यही कि ये दस्तखत किसके हो सकते हैं ?"

"क्या इस नाम के किसी आदमी को आप नहीं जानते ?"

"जी नहीं।"

"अच्छी बात है, तो पहिले तलाशी ली जायगी, पीछे और बात।"

तलाशी शुरू हुई। प्रेस की, दवाखाने की, घर की और घर से सम्बन्धित सब कमरों की। दिन भर तलाशी होती रही। दोपहर हुआ, शाम हुई। रात हो गई। सड़क पर घुड़सवार सिपाही घूम रहे थे। ठठ के ठठ लोग जुड़े थे। हमारा खाना-पीना, चूल्हा जलाना उस दिन नहीं हुआ। तलाशी में एक पुर्जा भी मतलब का नहीं मिला। पर पुलिस मेरे बहुत से अधूरे लेख उठाकर ले गई। कुछ पत्र आदि भी। साथ ही मुझे कोतवाली ले चली। जहाँ बहुत-सी गीदड़-भभकियों के बाद रात के दस बजे मुझे घर आने की अनुमति दे दी गई।

जान बची, लाखों पाये। परन्तु शंका का भूत मन में बैठा रहा। पता नहीं यह खूनी जमात अब कब किस बहाने से गला आ दबोचे। खान बहादुर की वह धमकी और उसकी वे खूनी आँखें रह-रहकर याद आ रही थीं। मेरा कायर हृदय धड़क रहा था, पर हँस-हँसकर पत्नी का भय दूर कर रहा था।

परन्तु एक दिन, जब मैं अपने रोगियों में उलझ रहा था, पुलिस के एक छोटे-से दल ने फिर अपने शुभ दर्शन दिये। ये लोग लाहौर से आये थे। इन्स्पेक्टर ने शालीनता से कहा—"आप इत्मीनान से काम से फारिग हो लें, हमें जल्दी नहीं है।" यह वाक्य सुनते ही मन में चोर बैठ गया। लो आये न ससुराल वाले, विदा कराने, अब तो डोला जायगा—फिर जायगा।

झटपट काम निपटाकर, भीड़-भाड़ को विदा करके, मैंने इन्स्पेक्टर के निकट आकर कहा—"फरमाइये।"

इन्स्पेक्टर भी शालीनता में कम न थे। शान से बोले—"माफ कीजिये, आपको एक तकलीफ करनी होगी। एक जमानत का बन्दोबस्त कर दीजिये।"

"कैसी जमानत?"

"सिर्फ ५०० रुपयों की। एक वारण्ट है। लाहौर कोर्ट का, आपको लाहौर चलना होगा।" उन्होंने कागज उलट-पलटकर वारण्ट सामने ला धरा।

"लेकिन वारण्ट है कैसा साहब ?"

"जमानती है, मजिस्ट्रेट के इजलास में हाजिर होने के लिए ?"

मैं कुछ मतलब समझा, कुछ नहीं। दो पड़ोसियों को बुलाकर जमानत की खानापूरी करा दी।

इन्स्पेक्टर ने धीरे से कहा—"आज ही रात की गाड़ी से, समझते हैं न आप ? गाड़ी साढ़े आठ पर छूटती है।"

"लेकिन...।" मैंने इन्स्पेक्टर का मतलब समझना चाहा।

"जी, आज ही चलना पड़ेगा। आप शरीफ आदमी हैं, मुझे खास तौर पर हिदायत है कि आपको तकलीफ न दी जाय। आप वादा कीजिये कि स्टेशन पर आप पहुँच जायेंगे, या फिर अभी तशरीफ ले चलिये।"

उसका स्वर काफी रूखा हो गया। जमानत का मैं मतलब ही न समझा। मैंने कहा—"तो आप मुझे गिरफ्तार करते हैं ?"

"इसकी क्या जरूरत है, मैंने जमानत ले ली है, आप स्टेशन पर पहुँच जायें। टिकट मैं खरीद लूँगा।"

झंझट करना बेसूद था। मैंने स्वीकार किया और उनके विदा होने पर मैंने दवाखाना बन्द किया। घर पहुँचा। भाई परमानन्द की अलविदा का नजारा नजरों में घूम गया। जब उन्हें उनके दवाखाने से उठाकर फाँसी के तख्ते तक और वहाँ से उठाकर काले पानी पहुँचाया गया था। मैंने तो वास्तव में ऐसा काम किया भी न था। पर मुझे ऐसा भास गया कि अब लौटकर आना नहीं होगा।

उस दिन मैंने खूब डटकर भोजन किया, स्नान किया और पत्नी से हँस-हँसकर गप्पें लड़ाई। चार बज गये। पत्नी ने कहा—"मतब नहीं जाना ?"

"न।"

"क्यों, कहीं दूसरी जगह जाना है ?"

मैं हँसा, तो वह हँसी मेरे कानों में खटकने लगी।

पत्नी ने कहा—"कहाँ ?"

"तुम्हीं बताओ सोचकर।"

"वाह, मैं भला क्या बताऊँ ?"

कुछ देर मैं हँसता रहा। फिर कहा—"एक बारात में जाना है, अमृतसर, रात की गाड़ी से।"

"किसकी बारात है ?"

"क्या कहें, एक जबर्दस्ती की बारात है। इन्कार नहीं करते बना।"

"लेकिन पहले तो नहीं कहा।"—एक शंका उनकी आँखों में छा गयी।

"अभी सुबह ही तो घेरा उन्होंने।"

इस घोर असत्य और मन की चंचलता को नेत्रों द्वारा पत्नी न पढ़ ले, इसलिए मैं उछलकर उठ बैठा और सीटी बजाता हुआ तैयारी की धूमधाम करने लगा।

परन्तु मन ने कहा—"तैयारी कैसी रे ? बिस्तर, कपड़े, टिफन, और यह सब अगलम-बगलम कहाँ ले जायगा ? कौन जाने किस राह जाना है ! सब छोड़ यहीं। उसी तरह चल जैसे मृत्यु के साथ एकाकी जाना होता है।"

उस समय पत्नी मेरी आँखें देखती, तो सत्य फूट जाता; परन्तु मैं टाल गया। उस दिन की हँसी ने जैसे सम्पूर्ण जीवनी-शक्ति ही खर्च कर दी। मैं तैयार हुआ। पत्नी ने कहा—

"अभी से कहाँ चले ?"

"थोड़ा आफिस में काम भी है।"

"शाम को तो खाकर जाओगे ?"

"न, खाना तो उन्हीं के साथ होगा।"

"आओगे तो ?"

"न आ सकूँगा, बहुत काम है।"

"लेकिन बिस्तर ?"

"वहाँ बिस्तरों की क्या कमी, इतने संगी-साथी हैं।"

"वाह, ऐसा भी कहीं होता है, कपड़े···" वह जल्दी से बैग में साबुन, तेल, शेविंग केस भरने लगी।

मैंने तिनककर कहा—"यह सब मैं नहीं लादने का। रात-भर रेल में, कल ब्याह और फिर रात भर रेल। सुबह खट से यहाँ। यह सब कहाँ

लादूगा ? सभी यार दोस्त ही हैं।

वह कहती ही रही और मैं चल दिया। सीधा जैनेन्द्र कुमार के पास आया। सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। फिर कहा—"भई, परसों सुबह आये, तो ठीक; वरना और एक दिन प्रतीक्षा करना, फिर सब हाल खोल-कर घर कह देना तथा जैसा ठीक समझो करना। मैंने घर बारात जाने का बहाना किया है।"

और मैं चला। स्टेशन पर इन्स्पेक्टर मौजूद था। एक थर्डक्लास का टिकट देकर कहा—"गाड़ी में अभी वक्त है।"

"परन्तु मैं थर्डक्लास में सफर नहीं करूँगा ?"

"लेकिन हमें तो यही किराया दिया गया है, आप अपने खर्चे से···"

मैंने लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाये। टिकट को सेकेण्ड का कराया, और जाकर बर्थ पर बदहवास पड़ रहा। नेत्रों में फाँसी और कालेपानी के काल्पनिक चित्र बनने-बिगड़ने लगे।

: ६ :

लाहौर स्टेशन पुलिस की पगड़ियों से लाल हो रहा था। गाडी खड़ी होते ही उसे पुलिस ने घेर लिया। तुरन्त उन्होंने मुझे एक बन्द गाड़ी मे बैठाया और सीधे किले ले चले। सुबह की सुनहरी धूप किले के विस्तृत मैदान में फैल रही थी। बिल्कुल सन्नाटा था। दूर तक आदमी न दीख रहा था। जैसे हमारी वह मनहूस कार शून्य में धँसी जा रही थी। अन्ततः एक छोटे से बरामदे में हम पहुँचे। खानबहादुर ने ही इस अतिथि का सत्कार किया। तत्परता से ठीक-ठीक इन्तजाम करने का आदेश दिया। और तब तक सिपाही मुझे पेंच-पेंचीले रास्तों से ले चला। हम लोग एक बहुत विशाल दालान में पहुँचे, जहाँ फर्श पर अनगिनत चबूतरे बने थे जैसे बहुत-सी कब्रें क्रमशः बना दी गई हों और उनके नीचे सिसकती हुई जिन्दा लाशें दम तोड रही हों। एक चारपाई मेरे सुपुर्द कर, और एक सुराही पानी से भरी पास रखकर सिपाही अन्तर्ध्यान हो गये। रह गया मै अकेला, उस कब्रगाह में—भय, शका और भूत-भविष्य के ताने-बाने बुनता हुआ। उस समय जैसे जन्म-जन्म की कायरता उमड़-घुमड़कर मेरे रक्त की एक-एक बूंद में समा गई।

घण्टे पर घण्टे बीते। दोपहर हुआ और ढल चला। न आदमी न आदम-जात। भूख, प्यास, नींद सब गायब। ढलते हुए सूरज की पीली छाया जहाँ-तहाँ उस मनहूस सूने दालान में पड़ रही थी। मैं कभी चारपाई पर लेट जाता, कभी उठकर टहलने लगता, कभी बैठकर गहरी चिन्तना में लग जाता, चैन न था, जैसे अङ्गारों पर बैठा हूँ। मैं ऐसा अनुभव करने लगा था जैसे आज ही मुझे फाँसी पर चढ़ना होगा। पर मन कह रहा था, जो होना है, झटपट हो जाय। यह प्रतीक्षा और सूनापन तो सहा नहीं जा रहा।

चार बजे के बाद एक छोटा-सा दल मेरी ओर आता नजर पड़ा। दो गोरे सार्जेण्ट थे। दो पुलिस के सिपाही। उनके बीच हथकड़ी-बेड़ी से जकड़ा हुआ एक कैदी था, साथ में एक मुसलमान पुलिस इन्स्पेक्टर। इस बारात को देखते ही मेरी फूँक निकल गई, जैसे रक्त शरीर में जम गया। एक सिपाही कहीं से एक चारपाई खींच लाया। उस कैदी को बीच में बैठाकर पुलिस वाले बैठे। मैं देखते ही पहचान गया। विश्वासघाती हंसराज है जो एप्रूवर (सरकारी गवाह) हो गया था, जिसने दल का सारा कच्चा चिट्ठा खोल दिया था, सबका भण्डाफोड़ किया था। मैं घृणा और भय से उस घृणित व्यक्ति को घूर-घूरकर देखने लगा। न जाने कहाँ से साहस ने प्रवेश किया और मेरी आँखों में तिरस्कार और क्रोध भी उदय हुआ। मन ने कहा—"इस कमीने से तो मरने वाले ही भले।"

परन्तु उसने मेरी ओर आँख उठाकर नही देखा। मुँह उसका वस्त्र से ढँका था। वह सिर झुकाये बैठा था। मैंने देखा, उसकी आँखों से झर-झर आँसुओं की धार बह निकली।

इन्स्पेक्टर ने पूछा—

"क्या इन्हें जानते हो?"

मैं साँस रोककर सुनने लगा। उसने सिर हिलाकर धीरे से कहा—"नहीं।"

उसका वह एक शब्द जैसे मेरे प्राणों के मूल्य का था। पर मैं निश्चल बैठा रहा। फिर प्रश्न हुआ—

"इनका नाम कभी सुना है?"

नही।

"मशहूर साहित्यकार हैं, इनकी कोई पुस्तक पढ़ी है ?"

"नही।"

उसने अपने आँसू पोंछ डाले और दृढ़ता से होंठ भींच लिये। मैंने मन मे कहा—"ओह, कायर भी साहसी होते हैं। इसकी एक 'हाँ' मेरे जीवन को समाप्त कर देने को काफी थी। वह निस्सन्देह मुझे जानता है। मेरे सामने एम० ए० का विद्यार्थी रहा है। इस पतित ने देश के अनेक तरुणो को फाँसी तक ले जाने की कार्यवाही की है। पर मेरे लिए आज मुक्तिदूत बनकर आया है।"

पुलिस वालों ने और दो-चार प्रश्न किये, और फिर वह मनहूस बारात जिधर से आयी थी, उधर ही की ओर चली गई। मैंने अघाकर साँस ली। साहस लौट आया, दुनिया दीखने लगी। मैंने इधर-उधर नजर दौडाई। कोई पास न था। मैं टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियाँ पार कर उसी आफिस मे पहुँचा। वहाँ चहल-पहल थी। मैं सीधा चिक उठाकर खानबहादुर के सामने जा खड़ा हुआ। खानबहादुर ने हाथ मिलाया, कुर्सी पर बैठने का सकेत किया। मैंने तपाक से कहा—

"जनाब, मैं सुबह से बिना खाये-पीये बैठा हूँ। आपका इरादा क्या है ?"

"मुझे बहुत अफसोस है। बस दो काम थे। आपकी शिनाख्त और आपसे मुलजिमों की शिनाख्त। एक काम खत्म हुआ। दूसरा अब कल होगा।"

"लेकिन, जनाब, मैं ठहर नही सकता।"

"मजबूरी है, तकलीफ करनी ही होगी। आज मजिस्ट्रेट बीमार पड गये हैं। कल तक रुकना पड़ेगा।" इसके बाद उन्होंने एक सब-इन्स्पेक्टर से कहा, "एक फर्स्ट क्लास टाँगा ले लो और शहर के बेहतरीन होटल मे आपकी पसन्द के कमरे में आपको ठहरा दो तथा आपकी हर जरूरत खाने-पीने का सब इन्तजाम कर दो। खर्चा सरकारी होगा।"

भाई वाह, यह तो तस्वीर का रुख ही पलट गया। मैं इन्स्पेक्टर के साथ उस फर्स्ट क्लास टाँगे में बैठकर चला। उसने पूछा—"आपका

सामान ?"

"मुझे क्या मालूम था कि आप मेरी यह खातिरदारी करेंगे, सामान तो मैं लाया ही नहीं।"

"कुछ पर्वा नहीं। होटल में सब इन्तजाम हो जायगा।" उसने राह के दर्शनीय स्थानों को बताना शुरू किया, यह शाही मसजिद, यह रणजीत सिंह की छतरी, यह बुर्ज। हम लोग अनारकली की चहल-पहल में घूमे चले आ रहे थे। सुबह का मनहूस दिन मजेदार सन्ध्या में बदल गया था। फाँसी के तख्ते और जेल की स्मृतियाँ गायब हो चुकी थीं।

सब-इन्स्पेक्टर ने एक-दो होटल दिखाये। पर वे मैंने नापसन्द कर दिये। मैंने कहा—"जनाब, फर्स्ट क्लास होटल का हुक्म हुआ है।"

लेकिन यह सन् २८ का लाहौर था। सब-इन्स्पेक्टर ने कहा—"साहेब, लाहौर में तो ऐसे ही होटल हैं। जहाँ मर्जी हो ठहर सकते हैं।"

अन्तत: एक होटल का सबसे बड़ा कमरा मैंने पसन्द कर लिया। थानेदार ने होटल के मैनेजर को कह दिया—"साहब जो चीज माँगें दो, बिल आफिस से चुकता होगा।" वे चले गये और मैंने चाय, टोस्ट, मक्खन, दो दर्जन आम, बर्फ और जाने क्या-क्या अगलम-बगलम का आर्डर दे डाला।

चाय पीकर बैठा ही था कि इन्स्पेक्टर ने कहा—"तबीयत हो, तो सैर कर आइए। लोगों से मिल-मिला आइए, ताँगा हाजिर है।" मैंने क्षण भर सोचा। थकान तो अब अच्छी हो गई थी। मौसम अच्छा था। बालकनी में आकर मैंने देखा—नाके-नाके पर पुलिस का खास बन्दोबस्त है। दूर तक लाल पगड़ियाँ दीख रही हैं। मैं मन-ही-मन मुस्कराया। मतलब मैं समझ चुका था। कमरे में आकर मैंने कहा—"जनाब, मैं सोऊँगा। कोई खास दोस्त मेरा यहाँ नहीं जिससे मिलने जाऊँ। आप भी तशरीफ ले जायें।" थानेदार चले गये।

: ८ :

दूसरे दिन मैं दस बजे से पहले ही खा-पीकर तैयार हो गया। इन्स्पेक्टर ठीक दस बजे आया। हम लोग फिर उसी मनहूस किले में पहुँचे। उसी विशाल बरामदे में एक भद्दे से मजिस्ट्रेट की मेज लगी थी। सामने

कतार में कोई २०० आदमी खड़े थे, सादा पोशाक में। हथकड़ी-बेड़ी किसी को नहीं थी। उस कतार में मुस्करा-मुस्करा कर अपने साथी से बात करते मैंने अपने प्रिय उस युवक को पहचान लिया।

शिनाख्त प्रारम्भ हुई। और भी कुछ लोग आये थे। मेरी बारी आयी, तो मुझसे पूछा गया—"क्या आप इन लोगों में से किसी आदमी को पहचानते हैं?"

मैंने एक बार बारी-बारी से सबपर सरसरी नजर डाली, फिर लौट कर कहा—"जी नहीं, मैं किसी को नहीं पहचानता।"

खानबहादुर लपकते हुए मेरे पास आये। मैं समझ गया। उनकी सारी खातिरदारी बर्बाद जा रही थी। मैं भी कदम बढ़ाकर मजिस्ट्रेट की बड़ी मेज के पास जा खड़ा हुआ। खानबहादुर ने कहा—"ठीक-ठीक देखिये।"

मैंने कहा—"आप इशारा तो कीजिये—किसे देखूँ?"

मजिस्ट्रेट झल्ला उठा। बोला, "इशारा कैसा?"

"आप किसे खास तौर पर पहचानते हैं?"

"जी नहीं, इनमें मैं किसी को नही पहचानता।"

मजिस्ट्रेट ने लिख लिया। कहा—"आप जा सकते हैं।"

"लेकिन मेरा खर्चा?" मैंने मजिस्ट्रेट से कहा।

"बिल दीजिये।"

झटपट मैंने बिल बनाया—जो सूझ पड़ा, वही। बहुत बढ़ा-चढ़ाकर, काफी रकम थी वह। मजिस्ट्रेट ने विना देखे ही सही कर दी। मैं उसे हाथ में लिये आफिस की ओर बढ़ा। बिना झंझट उसके रुपये मिल गये। मैं अभी रुपये गिन ही रहा था कि आदमियों को खूब जोर के कहकहे लगाते इधर ही आते देखा। वे सब क्रान्तिकारी कैदी थे। जो अब शिनाख्त होने के बाद हथकड़ी-बेड़ियों से जकड़ दिये गये थे, कुल बीस-बाईस थे और इससे दूने पुलिस के सिपाही और अफसर, सबके आगे खानबहादुर। लड़के हँसते-मखौल करते आ रहे थे।

भगतसिंह ने मेरे पास आकर हँसते हुए नमस्ते कहा।

दूसरे युवक ने कहा—"वाह बाबूजी, कमाल किया आपने, हमें

पहचाना तक नहीं ?

भगतसिंह ने एक ठहाका लगाया। कहा—"पहचानते कैसे ? उन दिनों हम एक मुट्ठी चना-चबेना पर दिन काटते, और चोरों की तरह लुकते-छिपते फिरते थे। अब तो खानबहादुर साहब हमें टोस्ट-मक्खन खिलाते, पिअर साबुन से नहलाते हैं। रंग भी तो हमारा निखर आया है।" साथी की पीठ पर एक धौल जमाते हुए कहा—"कितना मोटा हो गया तू यार।"

यह वीरों का दल मौत से दिल्लगी कर रहा था। मैं दंग था। आज इनमें नयी उमंग थी, नयी स्फूर्ति थी। मेरे कायर जीवन से तो ऐसा कार्य सम्भव ही न था। मैं तो कल के एक दिन में ही अधमरा हो गया था। वे चले गये और मैं सीधा तीर की तरह किले के बाहर निकला। अब खातिरदारी की जरूरत न थी। मेहमानदारी खत्म हो चुकी थी। लाहौर की भूमि पर मेरे तलवे झुलस रहे थे। नोटों का वह छोटा सा पुलिन्दा जेब में रखा हुआ दिल में गुदगुदी कर रहा था। मैंने ताँगा पकड़ा और सीधा स्टेशन की राह ली। दिल्ली वाली गाड़ी रात को छूटती थी। अभी काफी दिन था। अमृतसर एक पैसेन्जर जा रही थी। मैं झपट कर उसी में जा बैठा। दरबार साहेब का एक चक्कर लगाया। इन वीर जवानों की मुक्ति की अरदास की। बाजार में घूमा, पूरी और हलवा से आत्म-श्राद्ध किया तथा अमृतसर की बड़ियाँ, पापड़ और कुछ फल खरीदे और स्टेशन रवाना हुआ। फ्रण्टियर मेल आ रहा था।

और जब मैं गाड़ी की आरामदेह गद्दी पर आँखें बन्द किये पड़ गया, तो सब कुछ स्वप्नवत् दीख पड़ा। अब विचारों में फाँसी और कालापानी के नजारे नहीं थे। थे वे ठहाके, जो ये मौत से खेलने वाले मजनूं लगाते हुए फाँसी के निकट जा रहे थे।

: ९ :

पापड़ और बड़ियाँ पाकर पत्नी बहुत खुश हुई। बारात की एकाध बात पूछी। कुछ दिन बाद उन पर असल भेद भी खुल गया। सुनकर कई दिन तक रोना-धोना मचाया। मुझसे कहा—"तुम विश्वासघाती हो, तुम झूठे हो।" वे लाल-लाल और फूली हुई आँखें, अब भी स्मरण कर लेता

हूँ। तब उन्हें देखकर जैसे हँसा था, अब भी हँसी आ जाती है, पर आँखें अब गीली हो जाती हैं। ये बिछुड़े हुए साथी भी कैसा घाव कर जाते है!

२२
ठगविद्या

दक्षिण में दो धूर्त ठग रहते थे। वे ठग क्या थे—ठगों के उस्ताद थे। उनमें एक का नाम माधव था और दूसरे का शिव। माधव ने कहा—आजकल उज्जयिनी नगरी बड़ी ठाट-बाट की है। क्यों न उज्जयिनी चलकर ठगविद्या का धन्धा चलाया जाय।

शिव ने कहा—मित्र, तेरी बात तो मेरे मन को भा गई। मैंने वह महानगरी देखी है। वहाँ के धन-वैभव के क्या कहने! वहाँ का राजपुरोहित शंकर स्वामी बड़ा धनी है। वह बड़ा लालची और कामी है। रिश्वत लेकर उसने बहुत धन एकत्र कर लिया है। उसकी हवेली राजमन्दिर के समान भव्य है। उसकी चन्द्र किरण के समान षोडशी एक कन्या है, जो अविवाहित है। जिसके समान रूपवती स्त्री उज्जयिनी भर में नहीं है।

दूसरे ठग ने प्रसन्न होकर कहा—वाह वा, वाह वा, फिर तो मजा है। बस वहीं चला जाय। और दोनों धूर्त ठग शीघ्र ही उज्जयिनी आ पहुँचे।

: २ :

माधव एक शानदार मकान में ठाठबाट से रहने लगा। अपने को दक्षिण की किसी रियायत का राजकुमार घोषित किया। बहुत से नौकर-चाकर, घोड़े, सवारियाँ और लवाजमात एकत्र कर लिये। नित्य सन्ध्या समय घोड़े पर सवार होकर नौकरों के साथ भ्रमण करने निकलता। राह में स्वर्णमुद्राएँ लुटाता और गुणी जनों को पुरस्कृत करता। उसकी उदारता-दानशीलता तथा भव्य रूप और ठाठबाट देखकर सब लोग उसे कोई बहुत बड़ा राजकुमार समझने लगे।

उसका साथी शिव लंगोटा बाँध, अंग में भस्म लगा, एक मठ में

ब्रह्मचारी बन बैठा। वह मृगचर्म पर ध्यान लगाये बैठा रहता। उस सुकुमार अल्प वय के सुन्दर तरुण ब्रह्मचारी को धर्मव्रत और कठोर तप करते देख लोग उसकी स्तुति-पूजा करने लगे। उज्जयिनी में उसके तप, शान्त वृति की प्रसिद्धि हो गयी। लोग उसके दर्शन करने, भाँति-भाँति के पदार्थ लेकर आते। परन्तु वह न किसी की ओर आँख उठाकर देखता न बातचीत करता।

: ३ :

इस प्रकार पाखण्ड कुछ दिन चलता रहा। रात्रि में एकान्त होने पर दोनों मित्र खाते-पीते और आगे की योजना बनाते।

एक दिन माधव ने अपने एक चेले से, जो नौकर का स्वाँग भरे था, दो रेशम के थान और पाँच स्वर्ण मुद्रा देकर कहा—तुम राजपुरोहित शंकर स्वामी की सेवा में जाओ और उनसे विनयपूर्वक निवेदन करो कि माधव नामक राजकुमार अपने गोत्री भाइयों द्वारा राज्य से निकाल दिया गया है। वह कई अन्य राजपुत्रों को लेकर और अपने पिता का बहुत-सा धन लेकर दक्षिण दिशा से यहाँ आया है और आपके राज्य की सेवा करना चाहता है और आपकी सेवा में आपके दर्शन करने और निवेदन करने मुझे भेजा है।

नकली राजपुत्र की बढ़िया भेंट पाकर और उसका सन्देश सुनकर पुरोहित प्रसन्न हो गया। उसने समझा—अच्छी मोटी मुर्गी फँसी। आगे भी खूब भेंट मिलेगी. इस आशा में उसे बहुत आश्वासन दिया। दूसरे दिन माधव अनेक धूर्त चेलों को संग लेकर खूब भड़कीली पोशाक पहन कर ठाठबाट से राजपुरोहित की सेवा में पहुँचा। पुरोहित ने आगे बढ़ उसकी अगवानी की।

माधव ने विनम्र भाव से कहा—कुटुम्ब के अनुरोध से सेवा करने की मैंने इच्छा प्रकट की है, इसीसे मैंने आप का आश्रय लिया है। यों धन तो मेरे पास बहुत है।

राजपुरोहित ने उसे बहुत आश्वासन दिया। डेरे पर लौटकर माधव ने दो थान रेशम के तथा दस स्वर्णमुद्रा राजपुरोहित की सेवा में और भेजकर प्रणाम कहलाया।

राजपुरोहित प्रसन्न हो गये। उन्हें आगे और भी धन मिलने की आशा हुई। उसने अवसर पाकर राजा से माधव का परिचय करा दिया और राजा ने राजकुमार की पद-मर्यादा के अनुकूल आजीविका लगा दी। अब माधव राजा की सेवा में रहने लगा।

: ४ :

राजपुरोहित से भी अब उसकी घनिष्टता बढ़ गयी। अधिक लालच मे फँसकर पुरोहित ने कहा—अब आप मेरे ही घर में रहिये। बहुत बडी हवेली है। अकेले पिता-पुत्री रहते हैं। आपके आने से हमें कोई कष्ट न होगा। माधव ने अनुरोध मान लिया और उसके यहाँ रहने लगा। जवाह-रात और जड़ाऊ गहनों से भरी हुई सन्दूक भी राजपुरोहित के पास अमानत में रख दी। वह समय-समय पर अनेक बहानों से उसे खोलकर ब्राह्मण का मन ललचाता, फिर बन्द कर देता।

तब उस राजकुमार ने बीमार होने का ढोंग रचा। भोजन बहुत कम कर दिया। दिन-दिन दुर्बल होने लगा। पूछने पर पुरोहित से कहता—मेरे शरीर की दशा अच्छी नहीं है। न जाने क्या होने वाला है। एक दिन उसने पुरोहित से कहा—'महाराज, मेरी इच्छा है कि किसी योग्य सत्पात्र को मैं अपना सब धन दान कर दूँ जिससे मेरा परलोक सुधरे। इस जीवन का क्या। प्राण रहे न रहे। अब धन पर ममता क्या करूँ ?'

नकली राजकुमार की ऐसी बात सुनकर भीतर से खुश और ऊपर से दुःखी होकर वह लालची ब्राह्मण कहने लगा—'राम-राम, भैया तुम ऐसे निराश क्यों होते हो ? अभी तुम्हारी आयु ही क्या है। तुम अवश्य अच्छे हो जाओगे। यों दान-पुण्य तो अच्छा ही है, पर ऐसा सर्वत्याग का विचार ठीक नहीं।' परन्तु धूर्त माधव ने बड़ी-बड़ी लोक-परलोक, धर्म-अधर्म की दुहाई दी और बार-बार धन दान कर देने का हठ किया और कहा कि 'किसी योग्य सदाचारी ब्राह्मण को ढूँढ़िये।' यह कहकर माधव उसके पैरों पर गिर पड़ा।

इस पर द्रवित पुरोहित ने कहा—अच्छा, अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा। तुम चिन्ता न करो। बस, पुरोहित ने अनेक ब्राह्मणों को बुलाया। परन्तु

पुरोहित जिस ब्राह्मण को बुला लाते उसमे ही माधव के धूत चेले चाटी अनेक दोष निकाल दते।

इस प्रकार योग्य त्यागी सत्पात्र ब्राह्मण न पाकर माधव बड़ा दुखी हुआ। ठण्डी साँसें भर आकुल स्वर में कहने लगा—हाय, अब मेरा कैसे उद्धार होगा? कैसे मेरे पाप-ताप कटेंगे। इसपर एक धूर्त चेले ने कहा—महाराज वह जो एक तपस्वी ब्रह्मचारी क्षिप्रा-तट पर रहता है, महाज्ञानी और विद्वान है। लोभी तनिक भी नहीं है। उसके समान सत्पात्र ब्राह्मण आप को नहीं मिल सकता। क्यों न उसे ही यह महादान देकर कृतार्थ हुआ जाय? यह सुनकर माधव आनन्द से विह्वल हो गया। उसने पुरोहित के पैर पकड़कर कहा—गुरुदेव, जैसे बने उसी महात्मा को राजी करके लाइये, और मेरा यह धर्म-भार उतारिये।

: ५ :

पुरोहित ने कुटी में जाकर उस ढोंगी ब्रह्मचारी की प्रदक्षिणा-प्रणाम करके कहा—महात्मन्, क्रोध न करें, मेरा आपसे एक निवेदन है। आज्ञा पाऊँ तो कहूँ। कपट मुनि ने नेत्र खोले, संकेत से कहा—कहो। पुरोहित जी ने कहा—मेरे यहाँ माधव नाम का दक्षिण देश का एक राजकुमार पुत्र रहता है। वह अपना सर्वस्व दान करने की इच्छा करता है। यदि आप स्वीकार करें तो अनेक मणि-माणिकों और विविध रत्नों से जटित सब महा मूल्यवान आभूषण वह आपको देकर पुण्यलाभ करे। इसपर ब्रह्मचारी ने धीरे से कहा—हे ब्राह्मण देवता, मुझ त्यागी ब्राह्मण को धन-रत्न से क्या काम है?

तब पुरोहित ने कहा—महात्मन्, आप तरुण हैं, स्वस्थ, सुन्दर हैं, विद्वान है। तपस्या की आयु आपकी नहीं। आप आश्रम धर्म अपनाइये। ब्रह्मचर्य व्रत त्यागकर गृहस्थ बनिये। विवाह कीजिये। इतना धन-रत्न बिना भाग्य नहीं मिलता है। आप तो विद्वान हैं, जानते ही हैं कि विवाह करके गृहस्थ देव पितृ पूजन करते हुए धन से धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि करते हैं। यही सच्चा लोकधर्म है। ऐसा ही ऋषियों ने कहा है। गृस्थाश्रम ही सब आश्रमों से श्रेष्ठ है।

इसपर कपट मुनि ने कहा—मेरा विवाह ही कहाँ हुआ है? फिर मेरा

विवाह होना भी कठिन है, क्योंकि मेरे योग्य कन्या ही कहाँ मिलेगी ? ऐसे-वैसे साधारण कुल की कन्या स्वीकार नहीं करूँगा।

उस लालची ब्राह्मण ने कहा—मैं राजपुरोहित हूँ। कुल और धन दोनों ही दृष्टि से मेरी मर्यादा बहुत ऊँची है। मेरी एक विवाह योग्य सुलक्षणा कन्या है सो आप यदि गृहस्थ धर्म को स्वीकार करें तो वह कन्या रत्न आपको दूँ।

ब्राह्मण के ऐसे मतलब के वचन सुनकर वह धूर्त तपस्वी मन-ही-मन बहुत खुश हुआ। वह देर तक सोचता रहा और उदासीन भाव से बोला—आप ब्राह्मण हैं, संसार की गतिविधि के जानकार हैं। आपका यदि ऐसा ही आग्रह है तो मैं जैसा आप कहेंगे वही करूँगा। परन्तु मैं अनुभवहीन हूँ। स्वर्ण रत्न के मामले में कुछ समझता नहीं। आप जैसा उचित समझें करें।

पुरोहित कपट मुनि को घर ले गये। उसे माधव से मिलाया। माधव यह कहकर कि हे तपस्वी, मैं तेरी वन्दना करता हूँ, उसके चरणों में गिर पड़ा और अपना सब धनरत्न, मणि-माणिक और आभूषणों से भरी वह रत्नमंजूषा उसे दान कर दी।

धूर्त ब्रह्मचारी ने उन्हें छुआ भी नहीं। पुरोहित से कहा—इन रत्ना-भरणों को आप ही अपने पास यत्न से रखिये। मैं धनरत्न नहीं छूता।

लालची पुरोहित ने हँसकर कहा—'ऐसा ही सही, आप चिन्ता न करें' और वह मंजूषा अपने भंडार में ले जाकर रख दी। इसके बाद अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। और तब उसी पुरोहित की भव्य हवेली में वह दम्पत्ति रहने लगे।

: ६ :

माधव इस महादान के पुण्य प्रभाव से दूसरे ही दिन से आरोग्य लाभ करने लगा। इधर कुछ दिन व्यतीत हुए तो एक दिन शिव ने अपने श्वसुर पुरोहित जी से कहा—'अब इस प्रकार मैं कब तक आपका अन्न खाता रहूँगा और कब तक आपके घर में पड़ा रहूँगा। उचित है कि इन आभूषणों को बेचकर आप मेरे लिए एक मकान मोल ले दें और शेष धन मुझे दे दें कि मैं सुखपूर्वक अपनी गृहस्थी चलाऊँ।'

पुरोहित जी तो यह चाहते ही थे, बोले, इनको बेचने की क्या जरूरत

है। तुम्हे जितना धन चाहिए वह लो और यही मेरे घर म रहो मेरा कोई पुत्र नही है। मैं तुम्हीं को पुत्र समझूँगा।'

धूर्त शिव ने कहा—'न, यह ठीक नहीं है। परन्तु आपकी ऐसी ही इच्छा है तो आप यह कीजिए कि वह घर और जितना आप दे सकते हैं उतना धन उन रत्नाभरणों के मूल्य के रूप में मुझे दे दें तथा इसका एक लेख भी लिख दें, जिससे मुझे ग्लानि न हो। क्योंकि मैं श्वसुर-गृह मे रहना नहीं चाहता हूँ। फिर आप भी हमारे साथ ही निवास करें, जिससे हम और आपकी कन्या दोनों ही पिता की भाँति आपकी सेवा करें।

लालची ब्राह्मण को यह बात जँच गयी। उसने अपना वह घर और सब नकद धन अपने दामाद को दे दिया तथा लिखा-पढी भी करा दी। अब वे दोनों ठग उस पुरोहित के दिये धन को लेकर आनन्द से उज्जयिनी में मौज-मजा करने लगे।

कुछ दिन बाद एक दिन आवश्यकतावश पुरोहित उनमें से एक आभूषण बाजार में बेचने गये। जौहरी ने आभूषण देखते ही कहा—'यह तो नकली है, सोना नही है।' यह सुनकर वह बौखलाये हुए सब रत्नाभरण उठा लाये। सभी की जाँच करके जौहरी ने कहा—'सब काँच बिल्लौर है। सब नकली है। असली एक भी नही है। पीतल है पीतल!'

पुरोहितजी ने दामाद के पास जाकर कहा—तुम अपने ये आभूषण वापस ले लो और मेरा धन वापस दे दो। दामाद ने कहा—धन अब कहाँ है, वह तो सब खर्च हो गया।

श्वसुर-दामाद में बहुत झगड़ा हुआ। झगड़ा राजदरबार में गया। राजा ने माधव को भी बुला भेजा और सब मामला सुना।

पुरोहित ने राजा से कहा—इस बेईमान शिव ने पीतल में जड़े हुए काँच के टुकड़ों को रत्न कहकर सर्वस्व ठग लिया है।

शिव ने कहा—महाराज, मैं तो बचपन ही से तपस्वी था, धन-रत्न के सम्बन्ध में कुछ समझता ही नहीं। इन्हीं ब्राह्मण देवता ने बहुत हठ करके मुझे दान लेने पर राजी किया। उसी समय मैंने इनसे कह दिया था कि—आपको जैसा उचित जँचे कीजिये। इन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि मै सब देख-भाल लूँगा तुम चिन्ता न करो। मैंने दान में प्राप्त वे रत्न छुए

भी नहीं, देखे भी नहीं, इन्हीं देवता को दे दिये। स्वेच्छा से ही उन्होंने उन्हें मोल लेकर अपना मकान हवेली और कुछ नकद रुपया मुझे दिया जिसकी लिखा-पढ़ी है। उसकी एक नकल इनके पास भी है। अब जैसा न्याय समझें कीजिये।

पुरोहित ने तब माधव की ओर देखकर कहा—इसी धूर्त ने मुझे ठगा है।

धूर्त शिरोमणि माधव ने बड़े ही भोलेपन से कहा—यह तो आप सरासर अंधेर कर रहे हैं, पुरोहित जी! मैंने कोई अपराध नहीं किया। न मैंने आपसे या इसके दामाद से एक कानी-कौड़ी इन रत्नमालाओं की कीमत ली। वास्तव में बात यह थी कि मैंने अपने पिता के यह रत्न किसी के पास रख दिये थे। बहुत दिन बाद उससे लेकर यहाँ आया और वही रत्न दान कर दिये। यदि वास्तव में ये स्वर्ण-रत्न नहीं हैं, पीतल और काँच ही है तो मुझे पीतल और काँच ही दान करने का फल मिलेगा। बस, इतनी सी तो बात है। मैं तो पिठकमर आदमी हूँ। दान में मुझे विश्वास है। इसी दान के प्रभाव से मैंने आरोग्य-लाभ किया है यह सभी जानते हैं।

माधव के ऐसे निर्मल वचन सुनकर राजा खूब हँसा, राजसभा के सब सभासद भी हँसने लगे। राजा ने कहा—इसमें हम न माधव का कोई दोष देखते हैं न शिव का। यदि दोष है तो आपकी लोभान्धता का।

'कासां हि नापदां हेतु रति लोभान्ध बुद्धिता:।'

२३

ब्रह्म हत्या हुईल

जब वारेन हेस्टिंग्स की स्वच्छन्दता नष्ट हुई और कौन्सिल के साथ सहमत होकर शासन करने की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आज्ञा दी, तब महाराज नन्दकुमार ने सर फिलिप फ्रान्सिस द्वारा एक आवेदन-पत्र कौन्सिल में भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था—'हेस्टिंग्स साहब जैसे शत्रु की शिकायत करके आत्मरक्षा के लिए मैं ईश्वर की कृपा पर ही भरोसा करता

हूँ। मैं आत्ममर्यादा को प्राण से भी बढ़कर मानता हूँ और मैं यदि अब भी असली भेद न खोलूँ और मौन रहूँ तो मुझे और भी अधिक विपत्तियाँ झेलनी पड़ेगी, अतः मैं लाचार होकर यह रहस्य भेद प्रकट करता हूँ।'

इस आवेदन-पत्र में महाराज ने दिखाया कि हेस्टिंग्स ने ३,५४,१०५ रुपये का गबन किया है और वे महाराज के सर्वनाश के षड्यन्त्र रच रहे हैं। महाराज के शत्रु जगतचन्द्र, मोहन प्रसाद, कमालुद्दीन आदि इस पाप गोष्ठी में हैं।

जब यह पत्र कौन्सिल में पढ़कर सुनाया गया तो हेस्टिंग्स साहब का चेहरा फक हो गया। वे क्रोध में मतवाले होकर मैम्बरों को सख्त सुस्त कहने और महाराज को गालियाँ देने लगे। उस दिन कौन्सिल बरखास्त हो गई। दो दिन पीछे जब कौन्सिल बैठी तो महाराज का एक और पत्र खोला गया, जिसमें लिखा था कि कौन्सिल यदि आज्ञा दे तो मै स्वय कौन्सिल में आकर अपनी बातों का प्रमाण पेश करूँ और घूँस के रुपयों की रसीद दाखिल करूँ।

पत्र सुनकर कर्नल मानसून ने प्रस्ताव किया कि महाराज को कौन्सिल मे उपस्थित होकर सबूत पेश करने की आज्ञा देनी चाहिए। यह सुनकर गर्वनर साहेब के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा—यदि नन्दकुमार हमारा अभियोक्ता बनकर कौंसिल में आएगा तो हम इस अपमान को प्राण जाने पर भी नही सह सकते। हमारी अधीनस्थ कौन्सिल के सदस्य हमारे कार्यों के विचारक बनकर यदि एक सामान्य अपराधी के समान हमारा विचार करेंगे तो हम इस बोर्ड में बैठेंगे ही नही। बावल साहब ने सलाह दी कि इस मामले की जाँच सुप्रीम कोर्ट द्वारा कराई जाय।

बहुत वाद-विवाद के अनन्तर बहुमत से महाराज का कौन्सिल मे बुलाया जाना निश्चय हुआ। गोरे गवर्नर पर काला आदमी दोषारोपण करे, यह एक अनहोनी बात थी। हेस्टिंग्स साहब उठकर चल दिये। पर सभ्यत्रय ने जनरल क्लीवरिंग को सभापति बनाकर महाराज को कौन्सिल मे बुलवाया और उनके प्रमाण सुनकर एकमत से हेस्टिंग्स को अपराधी ठहराया। साथ ही उन्होंने यह भी निश्चय किया कि उन्हें घूस के रुपये फौरन कम्पनी के खजाने में जमा करा देने चाहिए। परन्तु हेस्टिंग्स ने

इस प्रस्ताव का तिरस्कार कर दिया, इस पर कम्पनी की ओर से सुप्रीम कोर्ट में दावा दायर करने के लिए सब कागज कम्पनी के सालिसिटर जनरल के पास भेज दिए गए। सालिसिटर ने उन्हें देखकर जो राय कायम की थी वह यह है—

'हमारी समझ में कलकत्ते की सुप्रीम कोर्ट मे कम्पनी की ओर से हेस्टिंग्स साहब पर नालिश दायर की जानी चाहिए। ऐसा करने पर हेस्टिंग्स साहब को अपना जवाब दावा दखिल करना ही पड़ेगा। नालिश दायर हो जाने पर बंगाल के सब झगड़े एकदम तय हो जायेंगे और कम्पनी को भी अधिक लाभ होगा।'

हेस्टिंग्स साहब ने भी यह रंग-ढंग देखकर चीफ जस्टिस इम्पे साहब की कोठी में एक गुप्त मंत्रणा की। इसके अगले दिन ही अचानक मोहन प्रसाद ने सुप्रीम कोर्ट मे हलफिया बयान दाखिल करके एक जाल का दावा महाराज नन्दकुमार पर खड़ा कर दिया। दावे में कहा गया था कि महाराज नन्दकुमार ने जाली दस्तावेज बनाकर मृत बुलाकीदास की रियासत से रुपये वसूल किये हैं। बयान दाखिल होते ही महाराज नन्दकुमार की गिरफ्तारी के लिए कलकत्ते के शेरिफ के नाम सुप्रीम कोर्ट के विचारको ने वारण्ट निकाल दिया और तत्काल ही महाराज डाकुओं की तरह गिरफ्तार करके जेल में डाल दिये गये। अपने पत्र में भण्डाफोड़ करते हुए महाराज ने जो भय प्रकट किया था, वह सम्मुख आ गया।

महाराज ब्राह्मण थे, इसलिए उन्होंने जिस स्थान पर ईसाई-मुसलमान आते-जाते थे, वहाँ संध्या-वन्दन और खानपान से इन्कार कर दिया। ६८ घंटे वे बराबर निर्जल रहे। जब उनके वकील ने उन्हें किसी शुद्ध स्थान में नजरबन्द करने की अर्जी दी, तब बंगाल के पंडितो को बुलाकर अंग्रेजो ने व्यवस्था ली कि महाराज की जाति जेल में खानपान से नष्ट हो सकती है या नहीं? हेस्टिंग्स के नौकर मोदी बाबू ने झटपट मुर्शिदाबाद को आदमी दौड़ाकर अपने पंडित हरीदास तर्क पंचानन को कलकत्ते बुला भेजा। उन्होने तथा अन्य ब्राह्मणों ने आत्ममर्यादा को तिलांजलि दे, व्यवस्था दी कि जेल में भोजन करने से ब्राह्मण की जाति नष्ट नहीं होती। और अगर थोड़ा-बहुत दोष होता भी है तो वह 'नही' के बराबर है और जेल से छुटकारा

खाने के बाद व्रत आदि रखने से उनका प्रायश्चित हो जाता है। एक देवता ने तो यहाँ तक कह दिया कि ब्राह्मण की जाति आठ बार मुसलमान का भात खाने के बाद नष्ट होती है। उपर्युक्त व्यवस्था सुनकर इम्पे साहब ने महाराज की दरख्वास्त नामंजूर कर दी, परन्तु जब महाराज ने भोजन से इन्कार कर दिया और वृद्ध हो जाने के कारण उनके प्राण जाने का भय हुआ, तब जेल के आँगन में उनके लिए अलग खीमा खड़ा किया गया। इस बीच में अभियोग तैयार करके धूमधाम से चलाया गया।

१७७५ की तीसरी जून को अंग्रेजी न्याय का कलक रूप कोर्ट बैठा और बेईमान जज पीली पोशाक पहनकर आ डटे। महाराज अभियुक्त के वेश में सामने खड़े हुए और उनके गुमाश्ता चैतन्यनाथ एवं उनके दास राम राधाचरण बहादुर और महाराज के बैरिस्टर फरार साहब उनके पीछे खड़े हुए। दूसरी ओर फर्यादी गवाह कान्त पोद्दार आदि हेस्टिंग्स के सहचर दर्शकों की सीट पर आ बैठे। महाराज पर जालसाजी करने के बीस अपराध लगाये गये। महाराज ने अपने को निर्दोष बतलाया।

उनसे पूछा गया—'आप किससे अपना विचार कराना चाहते हैं?'

महाराज ने कहा—'परमेश्वर हमारा विचार करे। हमारे देशवासी, हमारी श्रेणी के जन हमारा विचार करें।'

पर उस समय देशी लोगों का अंग्रेजों के न्यायालय में वैसा सम्मान न था, अतः १२ जूरी बनाकर विचार का आडम्बर शुरू हुआ। ये सब हेस्टिंग्स के गुट के लोग थे।

कोर्ट के प्रधान द्विभाषिये विलियम चेम्बर किसी तरीके से गैरहाजिर कर दिए गए और गवर्नर के कृपापात्र ईलियट साहब को उनका काम सौंपा गया।

महाराज के बैरिस्टर ने आपत्ति की तो इम्पे साहब ने उसे घुड़क दिया। क्लार्क आफ दी क्राउन के अभियोग-पत्र पढ़ने पर फरियादी के गवाहों की जबान बन्दी आरम्भ हुई। पहली गवाही मोहनलाल की हुई। यह वही आदमी था, जिसकी पहली दरख्वास्त का मसौदा स्वयं कोर्ट के जजों ने बनाया था। पर यह बात फैसला हो चुकने पर प्रमाणित हुई।

दूसरी साक्षी कमालुद्दीन खाँ की हुई। उसने कहा—'महाराज ने मेरे

नाम की मुहर मुझसे माँगी थी, आज १४ वर्ष हुए मुझे वह वापस नहीं मिली।' जज के दस्तावेज दिखाने पर उसने अपनी मोहर छाप को भी पहचान लिया। उसने यह भी कहा कि इस बात की खबर ख्वाजा पैट्रिक सफरुद्दीन और मेरे नौकर हुसैनअली को भी है।

दस्तावेज पर मुहर में अब्दुल कमालुद्दीन की छाप थी। जिरह में जब उससे पूछा गया कि तुम्हारा नाम तो कमालुद्दीन खाँ है, यह मुहर तुम्हारी कैसी? तब गवाह ने कहा—'धर्मावतार, मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा। मैं दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता हूँ, मेरा नाम पहले कमालुद्दीन ही था। पर तब से अब मेरी हैसियत बढ़ गयी है। इसलिए मैंने अपने नाम के आगे का टुकड़ा छोड़कर नाम के पीछे लगा लिया है।'

जिरह में जब पूछा गया कि तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि तुम्हारा नाम गवाहों मे दर्ज है? तब उसने कहा—'महाराज ने मुझसे खुद जिक्र किया था कि हमने तुम्हारे नाम की मुहर गवाहों में लगा दी है, जरूरत पड़े तो इसके सबूत में तुम्हें गवाही देनी पड़ेगी। पर मैंने झूठी गवाही से साफ इन्कार कर दिया था। या अल्लाह! भला मैं झूठी गवाही दे सकता था?"

हुसैन अली, ख्वाजा पैट्रिक और सफरुद्दीन ने भी उसकी बात की पुष्टि की। दस्तावेज पर अब्दुल कमालुद्दीन, शिलावतसिंह और माधवराव के दस्तखत थे। कमालुद्दीन की गवाही तो हो चुकी, बाकी दोनों मर चुके थे। शिलावतसिंह के दस्तखत पहचानने को राजा नवकृष्ण आये थे। इन्होंने शपथपूर्वक कहा कि ये शिलावतसिंह के दस्तखत नहीं है।

इतनी साक्षी होने पर भी मामला जोरदार नहीं हुआ। वादी मोहन प्रसाद नौ बार और उसका गुमाश्ता कृष्णजीवनदास २४ बार गवाहों के कटहरे में खड़े किये गये। बार-बार जिरह किये जाने पर कृष्णजीवन ने झुँझलाकर कहा—'पद्म मोहनदास के हाथ का लिखा एक इकरारनामा बुलाकीदास ने स्वयं लिखा था, इसमें बुलाकीदास ने सन् १७६५ में ४८,०२१ रुपये के एक तमस्सुक की बाबत साफ लिखा था।'

कृष्णजीवन के इस इजहार से कोर्ट के जजों और हेस्टिंग्स के चेहरों का रंग फक हो गया। पर इम्पे साहब ने गम्भीरता से कहा—कृष्णजीवन

ने अब तक जो गवाही दी थी, वह करारेपन से दी थी पर इस इकरारनामे की बात कहती बार उसका कण्ठ अवरुद्ध हुआ है। इसलिए अन्तिम बात मिथ्या जान पड़ती है। निस्सन्देह पद्ममोहन ने महाराज नन्दकुमार की साजिश से एक इकरारनामा तैयार कर लिया था।

उधर कान्त पोद्दार, मुन्शी नवकृष्ण, गंगा गोबिन्दसिंह, राजा राजबल्लभ और स्वयं हेस्टिंग्स साहेब नये-नये साक्षी तैयार कर रहे थे और किसी तरह काम न बनता देखकर उन्होंने आजिमअली को गवाह के कटहरे में लाकर खड़ा किया।

आजिमअली नमक की कोठी के एजेण्ट एक अंग्रेज का खानसामा था। क्लाइव की प्रतिष्ठित सभा के समय आवश्यकता होने पर इसे सरकारी गवाह बनाया करते थे, क्योंकि उस समय सरकारी वकील नहीं होता था। जब किसी पर नमक की चोरी का अपराध लगाया जाता था तो आजिमअली गवाह बनता था। पर अब वह सभा लोप हो गयी थी। आजिमअली ने अब एक औरत से निकाह पढ़कर लाल बाजार में जूते की दुकान खोल ली थी।

तीसरी जून से गवाहों की जबानबन्दी आरम्भ हुई थी और ग्यारहवीं जून को सबूत की गवाही समाप्त हुई थी। फिर भी बारहवीं जून को आजिमअली गवाह पेश किया गया। यह कार्यवाही बेजाब्ता थी, पर मुकदमे में जाब्ता ही क्या था?

गवाहों के कटहरे में आजिमअली को खड़ा होते देख महाराज के गुमाश्ते और उनके दामाद के देवता कूच कर गये। वह एक सिद्धहस्त गवाह था। वे समझ गये, बस यह चश्मदीद गवाह बनकर आया है। चैतन्य बाबू ने इस समय धूर्तता से काम लिया। उन्होंने हाथ के इशारे से आजिम को सौ, फिर दो सौ, फिर तीन सौ रुपये देने का इशारा किया, पर आजिम न माना। वह हलफ उठाकर कहने लगा—

'मैं महाराज नन्दकुमार का मकान जानता हूँ। उनके गुमाश्ता चैतन्यनाथ ने मेरी दुकान से जूता लिया था। मैं सन् १७६९ के जुलाई मास में चैतन्य बाबू से जूतों के दामों का तकाजा करने महाराज नन्दकुमार के मकान पर गया। उसके दस दिन पहले बुलाकीदास की मृत्यु

हो गई थी। वहाँ मैंने चैतन्य बाबू को काम में फँसे हुए पाया। पूछने पर उन्होंने कहा—इस समय महाराज एक जाली दस्तावेज बना रहे हैं, उसी में मैं इस समय फँसा हुआ हूँ। इसके बाद देखा, महाराज बैठक में नाक पर चश्मा चढ़ाकर एक बक्स में से २५-३० मुहर निकालकर उनका नाम जोर-जोर से पढ़ रहे थे। एक मुहर को उन्होंने कमालुद्दीन की कहकर चैतन्यनाथ को दिखाया था।'

आजिम का वह इजहार सुनकर कोर्ट के जजों की आनन्द से बत्तीसी खिल गयी। वे उत्सुकता से कहने लगे—'गो आन।' (आगे कहो)।

आजिमअली—हुजूर, इसके बाद तमस्सुक की शक्ल के कागज पर वह मुहर छाप दी गयी।

एक जज—कहे जाओ, कहे जाओ।

आजिमअली—इसके बाद चैतन्य बाबू से महाराज ने कहा कि जहाँ मुहर लगाई है, उसके पास ही अब्दुल कमालुद्दीन का नाम भी लिख दो।

दूसरा जज—कहे जाओ।

आजिमअली—चैतन्य बाबू ने कमालुद्दीन का नाम लिख दिया।

तीसरा जज—क्या तुम लिख-पढ़ सकते हो?

आजिमअली—हुजूर, अब तो आँखों से दिखाई ही कम देता है, पर आगे फारसी पढ़-लिख सकता था।

सर इम्पे—आगे बोलो।

आजिमअली—हुजूर, इसके बाद उसी कागज पर महाराज ने शिलाबतसिंह और माधवराव के नाम भी गवाहों में लिख दिये।

इस इजहार से घबराकर चैतन्य बाबू ने इशारे से एक हजार रुपये का इशारा किया। तब आजिम ने भी इशारे से ही कहा—घबराओ मत, सब पर पानी फेरे देता हूँ। इधर जज और फरियादी के वकील अधीर होकर—'गो आन, गो आन' कहने लगे।

आजिमअली—अब काम खत्म होने पर महाराज उसे पढ़ने लगे।

जजों ने अत्यानन्दित होकर कहा—अच्छा, अच्छा फिर क्या हुआ?

आजिमअली—बस, पढ़कर महाराज ने उसे अपने बक्स में रख लिया। तभी हमने सुना कि बुलाकीदास ने महाराज को तमस्सुक लिख दिया है।

सब जज—(एक साथ) फिर ! फिर !!

आजिमअली—हुजूर, इसके बाद ही घर के भीतर मुर्गी बोली और मेरी नींद टूट गई। मेरी छोटी स्त्री ने कहा—मियाँ, आज क्या बिस्तर से नहीं उठोगे ? देखो, कितनी धूप चढ़ गई है।

यह सुनते ही द्विभाषिये ईलियट साहेब ने आजिमअली के मुँह की ओर देखा। सहसा उसके मुख से निकल पड़ा —आह !

इधर तो इम्पे साहब ने द्विभाषिये से अन्तिम बात समझाने को कहा और उधर गवाह से कहा—गो आन।

आजिमअली—हुजूर, इसके बाद मैंने अपनी छोटी औरत से कहा—मीर की लड़की, मैंने ख्वाब में देखा है कि मैं महाराज नन्दकुमार के घर गया हूँ और वे बुलाकीदास के नाम से एक जाली दस्तावेज बना रहे हैं।

जब ईलियट साहेब ने गवाह की बातों को इम्पे को समझाया तब तो सुप्रीम कोर्ट के सुयोग्य जज विमूढ़ हो आजिम के मुँह को देखने लगे। पर अब आजिम ने 'गो आन' की प्रतीक्षा न कर कहना जारी रखा—

धर्मावतार, मेरी बात सुनकर मेरी छोटी स्त्री ने कहा—मियाँ, तुम हमेशा राजा, उमरा, साहबों के मकान पर जाते-आते हो, इसीसे सपने भी तुम्हें ऐसे ही दीखते है।

जज शून्य हृदय से बयान सुन रहे थे। अन्त में जब चेम्बर्स ने द्विभाषिये से कहा—गवाह से दरियाफत करो कि इसने हमारे सामने अभी जो कुछ कहा है वह सब ख्वाब की बातें हैं।

प्रश्न करने पर आजिमअली ने कहा—हुजूर, ख्वाब में जो मैंने देखा वही सच-सच बयान कर दिया है। तीन-चार दिन की बात है इस ख्वाब की बातें मैंने मोहनप्रसाद बाबू से कही थीं। उन्होंने चट कहा कि तुम्हें गवाही भी देनी पड़ेगी। मैंने कहा—जो देखा है सो कह दूँगा, मेरा उसमे क्या हर्ज है ? धर्मावतार ! मैं कमीना नहीं, हैसियतदार आदमी हूँ। मेरी छोटी औरत मीर साहब की लड़की है। उसके पिदर अब्दुल लतीफ एक जिले के मालिक हैं और मौलवी अब्दुल रहमान रिश्ते में मेरे साले

लगते हैं।

आजिम की इस प्रशस्त विरुदावलि को सुनकर चैतन्य बाबू से न रहा गया। वे पीछे से बोल उठे—चचा! आज तो तुम बड़े आलीखानदान बन गये। लाल बाजार की रहमानी की लड़की के साथ निकाह पढ़वाकर कहते हो कि मौलवी लतीफ हुसैन मेरे ससुर हैं।

आजिमअली—(क्रोध से) दुहाई है धर्मावतार की, दिनदहाड़े सरे इजलास एक शरीफ की इज्जत ली गई। मैं इसपर तौहीन का मुकदमा चलाऊँगा। इसका इतना मकदूर की मेरी पाक दामन सास साहबा को यह लाल बाजार की रहमानी कहे। धर्मावतार! मेरी सास अब पर्दानशीन हैं। वे आगे अनकरीब आठ साल तक लाल बाजार में कुछ-कुछ बे-परदे थी। पर छः महीने हुए मौलवी साहब ने उनके साथ निकाह पढ़वाकर उन्हें अब पर्दानशीन बना लिया है। एक ऐसे इज्जतदार घराने की पर्दानशीन औरत की शान में ऐसी वाहियात जबान निकालना सरासर जुर्म है। अदालत मेरी फरियाद सुने।

गवाह के रंग-ढंग देखकर सारी अदालत सकते में आ गई। अन्त में इम्पे साहब ने महाराज के बैरिस्टर फरार साहब से पूछा—क्या आपको इस गवाह की साक्षी प्रमाण रूप से ग्रहण करने में कुछ उज्र है?

बैरिस्टर ने कहा—जब गवाह स्वप्न की बात कह रहा है तो मैं नहीं समझता कि उसकी साक्षी कैसे प्रमाणभूत मानी जाय?

इम्पे—मि० फरार, इस गर्म मुल्क में पूरी-पूरी नींद शायद ही किसी को आती हो। प्रायः लोग अर्द्धतन्द्रा अवस्था में रहते हैं। ऐसी दशा में यदि कोई मनुष्य आँख, कान आदि इन्द्रियों द्वारा कोई विषय ग्रहण करे तो उसके कथन को लार्ड थारलो साक्षी रूप से ग्रहण किये जाने में कोई आपत्ति उपस्थित न करेंगे।

बैरिस्टर—मुझे लार्ड थारलो के मतामत से कुछ मतलब नहीं। यदि आप इसकी गवाही प्रमाण मानना ही चाहते हैं तो मेरा उज्र दर्ज कर लिया जाए।

न्यायमूर्ति इम्पे साहेब ने मातहत तीनों जजों से सलाह करके आजिम-अली की गवाही प्रणाम स्वरूप ग्रहण कर ली और आसामी के बैरिस्टर

को सफाई के गवाह पेश करने की आज्ञा दी। बैरिस्टर फरार ने कहा कि आसामी पर जुर्म प्रमाणित ही नहीं हुआ तब सफाई कैसी? आसामी निर्दोष है। उसे रिहाई मिलनी चाहिए।

जज ने कहा—अपराध सिद्ध हुआ है, आप सफाई पेश न करेंगे तो हमें जूरियों को समझाने के लिए संग्रहीत प्रमाणों की आलोचना करनी पड़ेगी।

जिस दस्तावेज के सम्बन्ध में झगड़ा उठा था, इसकी यहाँ पर संक्षिप्त रूप से व्याख्या कर देना अप्रासंगिक न होगा।

मुर्शिदाबाद में एक भारी राजनीतिक विद्वान पण्डित बापूदेव जी शास्त्री रहते थे। नवाब अलीवर्दी खाँ उनका बड़ा सत्कार करते थे और उनसे सदा राजकाज में परामर्श लेते रहते थे। इन शास्त्री जी के पास महाराज नन्दकुमार ने बालकाल में १२ वर्ष की उम्र से २० वर्ष की उम्र तक आठ वर्ष संस्कृत शास्त्रों की शिक्षा पाई थी। जब महाराज २२ वर्ष के हुए तब नवाब अलीवर्दी खाँ ने पण्डित जी के अनुरोध से उन्हें मेहिबदल परगने का लगान वसूल करने पर नियुक्त कर दिया। धीरे-धीरे वे अपनी योग्यता से हुगली के फौजदार बन गये। इस पद पर उन्होने लगभग तीन लाख रुपये कमाये। इसके बाद गुरु-दर्शन की अभिलाषा से एक बार वे मुर्शिदाबाद गये और उनकी कन्या के लिए, जिसे वे अपनी धर्म-भगिनी करके मानते थे, कुछ आभूषण साथ ले गये। परन्तु जब वे मुर्शिदाबाद पहुँचे, तब उन्हें खबर मिली कि गुरु-पत्नी का देहान्त हो गया और उनकी लड़की विधवा हो गई है। ऐसी दशा में उन्होंने आभूषणों के लाने की चर्चा गुरुजी से नहीं की और उन गहनों को अपने परिचित बुलाकीदास महाजन की दुकान में अमानत की तरह जमा करा दिया और मन में संकल्प किया कि किसी अवसर पर उन्हें बेचकर उनसे जो रुपये आवेंगे, उन्हें प्रमदा देवी को दे देंगे।

दैवयोग से मीरकासिम और अंग्रेजों के युद्ध में मुर्शिदाबाद लूट लिया गया। बुलाकीदास का भी सर्वस्व लूटा गया। बुलाकीदास धर्मात्मा थे। उन्होंने महाराज को उनकी अमानत के बदले में ४८,०२१ रुपये का तमस्सुक लिख दिया। बुलाकीदास मर गये और उसी दस्तावेज को जाली

करार देकर महाराज पर मुकदमा चलाया गया।

खैर, महाराज की ओर से सफाई की गवाहियाँ पेश हुईं। बड़े-बड़े लोगों ने गवाहियाँ दीं। गवाही समाप्त हो चुकने पर जजों ने जूरियों को मुकदमा समझाया और उसपर एक लम्बी वक्तृता भी दी। वक्तृता समाप्त होने पर जूरी लोग दूसरे कमरे में उठ गये। आधे घण्टे के बाद उन्होंने लौटकर कहा—'महाराज नन्दकुमार अपराधी हैं।'

यह सुनते ही महामति इम्पे साहब ने महाराज को फाँसी का हुक्म दे दिया।

हुक्म सुनाकर महाराज फिर जेल में भेज दिये गये। इस बार खेमे के बजाय एक दुतल्ला मकान उन्हें दिया गया। हजारों लोग शत्रु-मित्र उनसे मिलने आते थे। नवाब मुबारकुद्दौला ने कौंसिल की सेवा में एक पत्र भेजा था। उसमें प्रार्थना की थी कि इंग्लैण्ड के सम्राट् की आज्ञा आने तक फाँसी रोकी जाय।

स्वयं महाराज ने भी जनरल क्लीवरिंग और सर फ्रांसिस के पास एक पत्र इस आशय का भेजा था—

'सर्वशक्तिमान ईश्वर के बाद आप पर मुझे आशा है मैं ईश्वर के नाम पर नम्रतापूर्वक आपसे अनुरोध करता हूँ, कि इंग्लैण्ड के सम्राट् की आज्ञा आ लेने तक आप मेरी मृत्यु आज्ञा को मुल्तबी करा दें। हिन्दुओं के मतानुसार मैं न्याय के दिन इस संकट से उबारने के लिए आपको आशीष दूंगा।'

सुप्रीम कोर्ट से फैसला होने पर भी कौंसिल को इतनी शक्ति थी कि वह इंग्लैण्ड से आज्ञा आने तक फाँसी रोक दे। परन्तु कौंसिल के सदस्यों ने इस मामले में पड़ना पसन्द नहीं किया। नवाब मुबारकुद्दौला के अलावा महाराज के भाई शम्भूनाथ राव आदि कई व्यक्तियों ने भी आवेदन-पत्र भेजे, परन्तु उसका कुछ फल न हुआ।

महाराज को पाँचवीं अगस्त को फाँसी दी गई। किन्तु जनरल क्लीवरिंग ने १४ अगस्त को महाराज का वह पत्र कौंसिल में खोला। उस दिन महाराज का दशम संस्कार हो चुका था। १६ अगस्त को एक मन्तव्य बनाकर उस पत्र की प्राप्ति कौंसिल के कागज-पत्रों में से निकाल दी गई।

क्लीवरिंग को जो पत्र उर्दू में महाराज ने लिखा था, उसके विषय में

हेस्टिंग्स ने कहा कि इसमें जजों के आचरण की आलोचना की गई है। अतः यह पत्र जजों के पास भेज देना चाहिए। परन्तु फ्रांसिस साहब ने कहा—ऐसा करने से पत्र का महत्त्व बढ़ जायगा। इसमें लिखी बातें झूठी और जजों का अपमान करने वाली हैं। मेरी राय में यह पत्र शेरिफ साहब को दे दिया जाय ताकि वे इसे किसी आम जगह में सब लोगों के सामने किसी जल्लाद के हाथ से जलवा दें। दूसरे दिन सोमवार को वह पत्र चौराहे पर जल्लाद के हाथ से जलवा दिया गया।

दण्डाज्ञा सुनाने के बाईसवें दिन महाराज को फाँसी लगा दी गई। यह समय उन्होंने ईश्वराधना में व्यतीत किया। फाँसी के दिन बड़े सवेरे जब महाराज पूजा में बैठे, एकाएक कोठरी का द्वार खुला और सामने कलकत्ते के मेकरेब साहब शेरिफ दीख पड़े। उन्होंने द्विभाषिये से कहा—महाराज से निवेदन करो कि हम आज आपसे अन्तिम भेंट करने आये हैं। हम ऐसी चेष्टा करेंगे कि ऐसे बुरे समय में (फाँसी मे) महाराज को अधिक कष्ट न हो। मुझे इस घटना में शरीक होने का दुःख है। महाराज विश्वास रखें कि अन्तिम समय तक मैं उनके साथ रहूँगा, और उनकी अभिलाषाओं को पूरी करने की चेष्टा करूँगा।

महाराज ने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा—मैं आशा करता हूँ कि मेरे कुटुम्बियों पर भी आपकी ऐसी ही कृपा बनी रहेगी। प्रारब्ध अटल है। आप मेरा सलाम कौंसिल के सदस्यों को कहना।

बात करते वक्त महाराज साँस नहीं भरते थे, न उदास मालूम होते थे, न उनका कण्ठ अवरुद्ध दिखलाई देता था। उनका चेहरा गम्भीर था, उस पर विषाद का कुछ भी चिह्न न था। महाराज की दृढ़ता देखकर मेकरेब अधिक देर न ठहर सके। बाहर आने पर जेलर ने कहा—जब से महाराज के मित्र उनसे मिलकर गये हैं, तब से वे बराबर अपने हिसाब-किताब की जाँच-पड़ताल कर रहे हैं और नोट लिख रहे हैं।

फाँसी का समय ७ बजे प्रातःकाल था। मेकरेब साहब ठीक समय से आधा घंटा पूर्व जेल गये। वहाँ फाँसी का सब सामान ठीक था। अंग्रेजों की अमलदारी में ब्राह्मण को फांसी लगने का यह प्रथम ही अवसर था। हजारों मनुष्य देखने आये थे। उन सबकी आँखों में आँसू झलक रहे थे। खबर

पाकर महाराज उतरकर नीचे आये इस समय उनका मुख प्रसन्न था। शेरिफ साहब के बैठने पर वे भी एक कुर्सी पर बैठ गए। इतने में किसी ने घड़ी जेब से निकालकर देखी। यह देख महाराज तत्काल उठ खड़े हुए और बोले, 'मैं तैयार हूं।' पीछे घूमकर देखा तो तीन ब्राह्मण खड़े थे। वे उनका मृतक शरीर लेने के लिए आये थे। महाराज ने उन्हें छाती से लगाया। महाराज प्रसन्न थे, पर ब्राह्मण फूट-फूटकर रो रहे थे।

मेकरेब ने घड़ी निकालकर कहा—समय तो हो गया है किन्तु जब तक आप न कहेंगे, तब तक वह पापिनी क्रिया आरम्भ न की जायगी। एक घण्टे तक सब चुप बैठे रहे, बीच-बीच में महाराज कुछ बातचीत करते रहे और माला फेरते रहे। इसके बाद महाराज उठे, शेरिफ की तरफ देखा और दोनों चल दिये। फाटक पर पालकी तैयार थी। महाराज पालकी पर सवार होकर जेल की तरफ चले। शेरिफ और डिप्टी शेरिफ पालकी के पीछे-पीछे चल रहे थे। भीड़ बहुत थी, पर दंगा-फसाद का कुछ लक्षण न था। टिकटी के पास पहुँचकर महाराज ने कुछ ब्राह्मणों के न आने के विषय में पूछा। महाराज उनके विषय में पूछ ही रहे थे कि वे भी आ गये। उनसे एकान्त में बात करने के ख्याल से मेकरेब साहब ने अन्य अफसरों को हटाना चाहा, परन्तु महाराज ने उन्हें रोककर कहा—मैं सिर्फ बच्चों और घर की स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं। इसके बाद उन्होंने कहा—जो ब्राह्मण मेरी मृत देह ले जायेंगे, उन्हें शेरिफ साहब अपनी निगरानी में रख लें। इसके सिवा अन्य कोई मेरे शरीर का स्पर्श न करे।

शेरिफ ने पूछा—क्या आप अपने मित्रों से मिलना चाहते हैं?

महाराज ने कहा—मित्र तो बहुत हैं, पर उनसे मिलने का न यह स्थान है और न समय।

शेरिफ ने फिर पूछा—फांसी पर चढ़कर महाराज फांसी का तख्ता हटाने का इशारा कैसे देंगे?

महाराज ने कहा—हाथ हिलाते ही तख्ता सरका दिया जाय।

मेकरेब ने कहा—किन्तु नियमानुसार आपके हाथ तो बांध दिये जायेंगे, आप पैर हिलाकर सूचना दे दें।

महाराज ने स्वीकार किया।

शेरिफ ने महाराज की पालकी को फाँसी के तख्ते तक लाने की आज्ञा दी, पर महाराज पालकी छोड़कर पैदल ही चल दिये। तख्ते के पास पहुँचकर उन्होंने दोनों हाथ पीछे कर दिए। अब उनके मुख पर कपड़ा लपेटने का समय आया। उन्होंने अंग्रेज के हाथ से कपड़ा लपेटने में आपत्ति की। शेरिफ ने एक ब्राह्मण सिपाही को रूमाल लपेटने का हुक्म दिया। महाराज ने उसे भी रोका। महाराज का एक नौकर उनके पैरों में लिपट रहा था, उसी को महाराज ने आज्ञा दी। इसके बाद वे चबूतरे पर चढ़कर अकड़कर खड़े हो गये।

शेरिफ खिन्न हो अपनी पालकी में घुस गये, किन्तु बैठने भी न पाये थे कि महाराज ने पूर्व सूचना के अनुसार पैर का इशारा दे दिया, और तख्ता खींच लिया गया। बात-की-बात में महाराज के प्राण-पखेरू उड़ गये। नियत समय तक शव रस्सी पर लटका रहा और फिर ब्राह्मणों के हवाले कर दिया गया।

ज्योंही महाराज के गले में फन्दा डालकर तख्ता खीचा गया, त्यो ही लोग चीख मार-मारकर भागने लगे। वे भागते जाते थे और कहते जाते थे—'ब्रह्म हत्या हुईल। कलिकाता अपवित्र हुईल। देश पापे परिपूर्ण हुईल। फिरिंगेर धर्माधर्म ज्ञान नाई!!'

ब्राह्मणों ने उस दिन अर्जुन व्रत रखा। बहुत से ब्राह्मण कलकत्ते को छोड़कर अन्यत्र रहने लगे। नगर में हाहाकार मच गया। उसकी गलियाँ लोगों के करुण क्रन्दन से प्रतिध्वनित हो उठीं।

२४
नीबू उछाल राज्य

ईस्वी सन् ९५६ में कन्नौज के कल्याण कटक के राजा भुवनादित्य के तीन राजकुमार साधु का छद्म-वेश धारण कर सोमनाथ की तीर्थयात्रा करने निकले। उन तीनों छद्मवेशी राजकुमारों के नाम क्रमशः राजी, बीजा

और दण्डक थे। उन दिनों पंचसारा गुजरात की राजधानी थी, जहाँ चावड़ा राजा सावन्तसिंह राज्य करता था। सोमनाथ की यात्रा से लौटती बार ये तीनों साधु-वेश धारी राजकुमार सावन्तसिंह द्वारा आयोजित रथ-यात्रा का उत्सव देखने पंचसारा गए और नगर के प्रान्त भाग में स्थित एक देव-स्थान में ठहर गए। वहाँ प्रतिदिन चावड़ा राजा सावन्तसिंह घोड़े पर सवार होकर वायुसेवनार्थ आया करता था। तीनों राजकुमारों में बीजा जन्मान्ध था, परन्तु वह बड़ा भारी शालहोत्री और अश्व परीक्षक था। एक दिन राजा सावन्तसिंह एक बहुमूल्य ऊँची रास की घोड़ी पर चढ़कर उधर आये और चौगान में सरपट दौड़ाने के लिए जोर से घोड़ी को चाबुक से मारा। घोड़ी गर्भिणी थी। चाबुक मारने का शब्द सुनकर बीजा ने चिल्लाकर कहा—"यह कौन गँवार घोड़ी पर सवार है ?"

राजा ने ये शब्द सुन लिए। उसने छद्मवेशी राजकुमारों के पास आकर कहा—"तुम कौन हो और इस प्रकार अशिष्ट वाक्य कहने का क्या कारण है ?"

बीजा ने निर्भयतापूर्वक कहा—"हम कोई भी हों, तुम्हें इससे कोई सरोकार नहीं। पर तुम गँवार अवश्य हो, क्योंकि घोड़ी के पेट में पंच-कल्याणी नर बछेड़ा है। तुम्हारे चाबुक की चोट से उसकी दोनों आँखें फूट गई हैं।"

राजा ने कहा—"तुम कोई भी हो, पर चमत्कारी पुरुष प्रतीत होते हो। यदि तुम्हारी बात सच निकली तो मैं तुम्हें अपनी बहिन ब्याह दूँगा और बहिन के पुत्र को आधा राज्य दूँगा। परन्तु यदि तुम्हारी बात झूठ निकली तो राजापमान के अपराध में तुम तीनों को सूली पर चढ़ा दिया जायेगा। अब जब तक घोड़ी के बच्चा न हो ले, तुम्हें यहाँ कैद रहना होगा।"

राजा ने उन तीनों साधु वेशधारी राजकुमारों को तत्काल कैद करने की आज्ञा दी। राजपुरुषों ने उन्हें कैद में डाल दिया। पर राजा की आज्ञा से उन्हें बन्दीगृह में भी सब सुविधाएँ दे दी गईं।

इस घटना की खबर सारी राजधानी में फैल गई और घर-घर इसकी चर्चा होने लगी। यथासमय घोड़ी ने बछेड़े को जन्म दिया परन्तु बछेड़े की दोनों आँखें फूटी हुई थीं। यह चमत्कारी घटना देखकर राजा ने तीनों

राजकुमारों को भरे दरबार में बुलाया और उनका परिचय पूछा।

राजकुमारों ने अपना वास्तविक परिचय देकर राजा से कहा कि अब आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए। राजा ने कहा—"मैं आपके परिचय से सन्तुष्ट तथा गुणों से प्रसन्न हूँ—और अपनी बहिन ब्याहने को तैयार हूँ।"

तब बीजा ने कहा—"मैं जन्मान्ध हूँ। अतः आप मेरे बड़े भाई राजी को अपनी बहिन ब्याह दीजिए।"

राजा ने सयौतुक अपनी बहिन लीलावती का ब्याह राजी से कर दिया तथा उनके खर्च के लिए अच्छी जागीर भी लगा दी। जागीर पाकर तीनों राजकुमार आनन्द से पंचसारा में रहने लगे।

कालान्तर में लीलावती गर्भवती हुई। परन्तु प्रसववेला में प्रसववेदना से लीलावती का प्राणान्त हो गया। अतः उसका पेट चीरकर बालक निकाला गया। पुत्र का जन्म मूल नक्षत्र में हुआ था। अतः उस बालक का नाम मूलदेव रक्खा गया। सयाना होने पर मूलदेव मेधावी और तेजस्वी निकला। तीनों राजकुमारों ने उसे सब भाँति उत्तम शिक्षा दी। जब वह पाँच बरस का हुआ, तब उसे लेकर तीनों राजकुमार राजसभा में जा उपस्थित हुए और भरे दरबार में राजा से कहा—"राजन्, अब आप अपना शेष वचन भी पूरा कीजिए और अपनी बहिन के इस पुत्र को आधा राज्य दीजिए।"

राजा की प्रतिज्ञा और वचन का सभी सभासदों को ध्यान था। उन्होंने कहा— "राज-वचन अवश्य पूरा होना चाहिए।"

किन्तु राजा अब आधा राज्य देने को तैयार न था। उसने उस दिन तो बात टाल दी। परन्तु तीनों राजकुमार अब प्रतिदिन राजसभा में बालक मूलराज को लेकर पहुँचने और भरे दरबार में आधा राज्य माँगने लगे। दिन-दिन इस माँग में दृढ़ता और कटुता बढ़ती गई। बालक मूलराज सुन्दर, चपल और मेधावी तथा तेजस्वी किशोर था, जिस पर तीनों राजकुमारों ने साम-दाम से बहुत सभासदों को अपने पक्ष में कर लिया था। उनका पक्ष न्याय पर आधारित था। इसके अतिरिक्त राजा बूढ़ा, शराबी और सनकी था। वह बहुधा शराब के नशे की झोंक में राज-सभासदों को

गालियां देता और उनका अपमान करता था। बहुत सभासद उसके विरो.. हो गए थे। वे सब भीतर ही भीतर चाहते थे कि बालक मूलराज को आधा राज मिले।

इस प्रकार इन राजकुमारों का पक्ष प्रबल होता गया तथा उनकी माँग दिन-दिन जोरदार होती गई। राज्य के दरबारी भी उनके पक्ष में खुल्लम-खुल्ला माँग करने लगे। यह देखकर राजा घबड़ा गया और उसने भयभीत होकर मन्त्रियों से सलाह की। एक बूढ़े मन्त्री ने कहा—"महाराज, कुमार को नींबू-उछाल राज्य दीजिए। इससे आपके वचन की रक्षा भी हो जायेगी और कुछ हानि भी न होगी। राजकुमार सभाभवन के बाहर मैदान में नींबू उछालें और जितनी देर में नींबू धरती पर गिरे उतनी देर कुमार गद्दी पर बैठ जाएँ। बस।"

राजा को यह प्रस्ताव जँच गया और राजकुमारों ने भी यह सोचकर कि जो मिले वह ले लिया जाय, शेष के लिए माँग जारी रहे, यह अद्भुत प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और बालक मूलराज का नींबू-उछाल राज्य आरम्भ हुआ। दरबार के मैदान में ज्यों ही नींबू उछाला जाता, बालक मूलराज झट उछलकर गद्दी पर जा बैठता और धरती मे गिरते ही गद्दी से उतर आता।

कुछ दिन इस नींबू-उछाल राज्य को लोगों ने कौतुक समझा, पर बालक मूलराज शीघ्र ही गद्दी पर उछलकर बैठने का अभ्यस्त हो गया। इसके अतिरिक्त वह एक दो-क्षण जितनी भी देर गद्दी पर बैठता, किसी-न-किसी राज-सभासद् सामन्त को कोई जमीन-जायदाद जागीर देने की आज्ञा देता, जिसे उसके चाचा लोग सिखा देते। उसकी आज्ञा का राजाज्ञा की भाँति पालन होता और इस प्रकार राजसभा में दिन-दिन उसके समर्थक बढ़ते गये और राजा के कपट-व्यवहार की अब खुल्लमखुल्ला चर्चा होने लगी।

मूलराज अब सयाना हो गया और चाचाओं ने उसे अश्वविद्या और तलवार चलाने में पारंगत कर दिया। अब वह एक साहसी और प्रतिभावान तरुण था। उसके चाचाओं ने उसके मन में यही आकांक्षा उत्पन्न कर दी थी कि वही गुजरात का भावी नरेश है। इस भावना से उसके मन में आत्म-

विश्वास और व्यवहार में गुरुता आ गयी। वह प्रतिदिन धूम-धाम से घोड़े पर सवार होकर दरबार में आता। उसके चाचा, पिता और सेवक नंगी तलवार लिये उसके शरीर-रक्षक की भाँति उसके आगे-पीछे दाएँ-बाएँ चलते। उसका अद्वितीय अश्व-संचालन और ठाठ देखकर राजधानी के नागरिक प्रसन्न होकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते।

अपने चाचाओं के लिए भी उसने बहुत जागीर-इलाके दे दिए थे। इससे अब धन-जन की उन्हें कोई कमी नही रह गई थी। एक छोटी-सी सेना भी उन्होंने संगठित कर ली थी। वह दरबार में आते-जाते बहुत धन लुटाते। इससे उसकी चारों ओर जय-जयकार होने लगी। यहाँ तक कि राजा सावन्तसिंह उससे बहुत डर गया और उसे मरवा डालने के षड्यन्त्र रचने लगा।

इसी बीच उसके कूटनीति निपुण चाचाओं ने एक और प्रपंच रचा जो सावन्तसिंह की नींबू वाली कार्यवाही का मुँहतोड़ जवाब था। जब मूलराज की सवारी दरवार में आती तब बहुत से टोकरों में भरे नींबू की शक्ल के माँस-वटक लेकर सेवकगण सवारी के आगे-आगे चलते। वे माँस-वटक आकाश में उछालते और चीलें ऊपर-ही-ऊपर उन्हें लपक लेतीं। प्रतिदिन निरन्तर यह खेल होने से चीलों को काफी अभ्यास हो गया और जिस समय मूलराज की सवारी निकलती, हजारों चीलें आकाश में मँडराने लगतीं। नगर निवासी भी यह कौतुक देखते। चीलें ऊपर उछाले हुए वटकों को ऊपर ही लपक-झपट लेतीं। नीचे गिरने ही न देतीं। बहुत दिन यह खेल चला और अन्त मे वह दिन भी आया कि आकाश में उछाले हुए नींबू को चील झपट ले गई। नींबू पृथ्वी पर गिरा ही नही इसलिए मूलराज भी सिंहासन से नीचे नहीं उतरा। राजा सावन्तसिंह इस पर आपे से बाहर होकर गालियाँ बकने लगा और उसने मूलराज को सिंहासन से नीचे धकेल दिया। इस पर मूलराज सिंह की भाँति उछलकर सिंहासन पर चढ़ गया और तलवार के एक ही भरपूर हाथ से सावन्तसिंह का सिर भुट्टे-सा उड़ा दिया। उसके चाचा और पिता भी तलवारें निकालकर पिल पड़े। जो आगे आया उसी को काट डाला। दोनों पक्ष के लोग भिड़कर मार-काट करने लगे। अन्त में सावन्तसिंह के पक्ष में भगदड़ मच गई और बीजा ने

सावन्तसिंह के गर्म रक्त का मूलराज के मस्तक पर तिलक कर उसे रक्त से भरी गद्दी पर बैठाया और सम्पूर्ण गुजरात का राजेश्वर घोषित कर दिया उसके प्रशंसक और समर्थक जय जयकार करने लगे। मूलराजदेव का यथा-समय विधिवत् राजतिलक हुआ। बहुत धूमधाम मची। जागीर, इनाम, इकराम बाँटे गये। मूलराजदेव गुजरात के राजराजेश्वर बन गए।

यह घटना ६१८ वर्ष पहले घटी थी। इस घटना से चावड़ा वंश की समाप्ति हुई तथा सोलंकी वंश का राज्य स्थापित हुआ, जिसका संस्थापक और प्रथम नरपति यही मूलराजदेव प्रथम था। उसने पैंतीस बरस एकछत्र राज्य किया और अनहिलपट्टन अनहिल वाड़ा में नयी राजधानी बसाई। उसने सम्पूर्ण सारस्वत मण्डल (सरस्वती नदी से सींचे जाने वाले भू-भाग) पर अधिकार किया। मूलराज, राजाओं के मुकुट का बेजोड़ मोती था। उसने अपने वंश को उत्कर्ष के उच्च शिखर पर पहुँचाया। विद्वान उसे प्यार करते थे, सम्बन्धी उसका मान करते थे, ब्राह्मण-भाट उसके शौर्य पर मुग्ध थे। उसने अनेक देश जीते। उसने तेलंगाना के प्रतापी तैलप को पराभूत किया और बहुत से वेदपाठी, कर्मकाण्डी ब्राह्मण परिवारों को उत्तरी भारत से बुलाकर गुजरात में ला बसाया। उन्हें पूर्वी काठियावाड़ में सिद्धपुर स्तम्भतीर्थ या कैम्बल और अन्य ग्राम दान दिये, जो बनस और साबरमती के मध्यवर्ती थे। इन सब ब्राह्मणों के वंशज ही कालान्तर में औदीच्य नाम से प्रसिद्ध हुए।

२५
कलंक

ऋतु बड़ी सुहावनी थी और मित्र-मण्डली मौज में थी। चाय और सब लवाजमा गरमागरम टेबुल पर सजा रखा था। जैसे ही गरमागरम बहस चल पड़ी थी। बीच-बीच में हँसी के ठहाके भी चल रहे थे। मित्र-मण्डली बहुत खुश थी। इसी सप्ताह दो लाख रुपये मुनाफे का उनकी जेब में आया था, जो बैंक में जमा था, किन्तु जिसकी गरमी और स्फूर्ति सबके

मस्तिष्क में थी। सबके व्यंग्य का केन्द्र रघुनाथ बाबू थे। लोग जितना उन्हे उत्तेजित कर रहे थे, वह प्रसन्न हो रहे थे।

इसी समय एक भिखारी धीरे-धीरे वहाँ आकर खड़ा हो गया और अपनी घिनौनी आँखो से टेबुल पर सजी हुई वस्तुओं को ललचाई नजर से देखने और अपने होंठ चाटने लगा। परन्तु कुछ कहने का उसे साहस नहीं हुआ।

रघुनाथ बाबू एकाएक उत्तेजित होकर कुर्सी से उठ खड़े हुए और हथेली पर मुक्का मारकर रोषपूर्ण आवेश में बोखला उठे—यह देखो—यह दीन-हीन, गन्दा, घिनौना आदमी जो सामने खड़ा है, दुनिया की सबसे बडी इकाई है। मैं कहता हूँ इसी की बिजय-निष्ठा सबसे बड़ा कार्य है।

मित्र-मण्डली ठहाका मारकर हँस उठी। परन्तु रघुनाथ बाबू ने इसकी कुछ परवाह न करके उससे कहा—"चले आओ, यहाँ बैठो।"

उन्होंने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कुर्सी पर बैठा लिया। चाय का प्याला और नाश्ता उसके आगे पेश करके कहा—"खाओ-पियो दोस्त।"

उस घृणित अर्ध-विक्षिप्त भिक्षु ने यह समझा जैसे स्वर्ग का द्वार खुल गया और जल्दी-जल्दी स्वादिष्ट नाश्ता और चाय गले में उतारने लगा।

एकदम वातावरण क्षुब्ध हो उठा। मित्र-मण्डली तुरन्त कुर्सियाँ छोड़-कर उठ खड़ी हुई और सब लोग क्रोध-भरी आँखों से रघुनाथ बाबू को और उस भिखारी को देखने लगे।

गोपाल बाबू ने रघुनाथ को डपटते हुए कहा—"रघुनाथ बाबू, यह तुम्हारा बड़ा अत्याचार है। तुम्हें यह भी सोचना था कि यह तुम्हारा ही घर नहीं है।"

और फिर एक महाशय ने आगे बढ़कर टेबुल का सब सामान उस भिखारी की झोली में डाल दिया और उसको डपटकर कहा—"भाग, भाग, दूर हो यहाँ से।"

बेचारा भिखारी खाता-पीता भयभीत मुद्रा से मित्र-मण्डली को देखता हुआ चला गया। यह देखकर रघुनाथ बाबू ने क्रोध में आकर कहा—"यह आप लोगों का शिष्टाचार है? और यही सभ्यता है? कैसी लज्जा की

बात है।

मित्र-मण्डली का मूड़ खराब हो चला था और प्रत्येक मित्र क्रोध और घृणा से रघुनाथ बाबू को घूरते हुए अपनी-अपनी कारों में बैठकर चले गये। लेकिन रघुनाथ बाबू गुस्से में भरे हुए कुर्सी पर अचल बैठे हुए थे। मेजवान गोपाल बाबू ने कहा—"रघुनाथ बाबू, यह तुम्हारा घोर अत्याचार है और अशिष्ट व्यवहार है। तुम्हें इसपर लज्जित होना चाहिए।"

रघुनाथ बाबू ने कहा—"लज्जित तो हूँ, किन्तु अपने व्यवहार के कारण नहीं, तुम्हारे व्यवहार के कारण। तुमने दुनिया की सबसे बड़ी इकाई की पूजा, निष्ठा की भावना हृदय से निकाल दी है। कैसी लज्जा की बात है! यह तुम्हारा कृत्रिम समाज जिसमें एक मनुष्य घृणित और बहिष्कृत और दूसरा समाज का अधिपति! यह तुम्हारा समाज जीवित प्राणियों का समाज नहीं है। जैसे गोदाम में एक के ऊपर एक बोरी लदी रहती है, वैसे ही यह तुम्हारा समाज है—जिसमें मनुष्य ही मनुष्य पर लदा हुआ है। यह मनुष्य का सबसे बड़ा कलंकित जीवन है। इस समाज का नाश हो और विश्व में मानव प्राणी—जो दुनिया की सबसे बड़ी इकाई है—सुखी, स्वतन्त्र और आनन्द से पूर्ण हो।"

गोपाल बाबू ने कहा—"किन्तु तुम समाज का क्या रूप चाहते हो?"

रघुनाथ ने उत्तेजित होकर कहा—"मैंने तो कह दिया कि वह दीन-हीन घृणित व्यक्ति दुनिया की सबसे बड़ी इकाई है। उसी की पूजा-निष्ठा मनुष्य का सबसे बड़ा कर्तव्य है।"

बातचीत में कुछ रस नहीं आ रहा था। रघुनाथ बाबू अनमने से उठ खड़े हुए और बिना ही कोई शिष्टाचार प्रकट किए चल दिये। गोपाल बाबू ने इन्हें रोका नहीं।

२६
अभाव

लाला लाजपतराय का जन्म पंजाब के एक छोटे से गाँव में सन् १८६५ मे हुआ था। वे जाति के अग्रवाल वैश्य थे। उनके पिता लाला राधाकृष्ण

जी कट्टर आर्यसमाजी थे। लाजपतराय ने २० वर्ष की आयु में पंजाब विश्वविद्यालय की कानूनी परीक्षा पास करके हिसार में वकालत आरम्भ कर दी और आर्यसमाज के कार्य में जुट गये। इनके दो साथी थे जिनमे एक महात्मा हंसराज ने २५ वर्ष तक ज्ञान-दान देकर पंजाब के बच्चो को कुछ और ही बना दिया। दूसरे साथी थे—पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, एम० ए०, जो अकाल ही मे काल-कलवित हो गये थे।

इन तीनों महानुभावों ने जो एक महान कार्य किया, वह था लाहौर मे 'दयानन्द कालेज' की स्थापना। तीनों व्यक्ति इस संस्था पर मर मिटे। महात्मा हंसराज ने २५ वर्ष तक कालेज की तन, मन, धन से सेवा की। एक पाई लेना हराम समझा। लालाजी ने अपनी समस्त कमाई इसीमे लगा दी।

इन तीनों व्यक्तियों में परस्पर कैसी लगन थी और गुरुदत्त लाजपत राय पर कैसा शासन करते थे तथा लाजपतराय किस पारस के योग से सोना बने, यह बात प्रकाश में लाने के लिए हम गुरुदत्त के दो पत्र यहाँ उद्धृत करते हैं, जो लालाजी के जीवन में परिवर्तन लाये। पहला पत्र ता० १० जुलाई सन् १८८६ को लिखा गया था—

'मेरे पिता बहुत निर्बल हैं और रोग शय्या पर पड़े हैं। उनकी इच्छा है कि मैं उनसे पृथक् न होऊँ। मैं लाहौर में केवल एक अस्थायी पद पर नियुक्त हूँ। नि:सन्देह उनके यहाँ आने पर मुझे अति उद्विग्न होना पड़ेगा और बाहर न जा सकूँगा। सामाजिक प्रचार के लिए जाने का मेरा संकल्प इस प्रकार पूर्ण न हो सकेगा। पैतृक स्वत्व और जातीय कर्तव्य में परस्पर वैर है। चित्त में अशान्ति है, प्रत्येक छुट्टी में मैं मुलतान जाता और आता हूँ।'

इसके १२ दिन बाद दूसरा पत्र इस प्रकार था—

'मुझे अफसोस है कि मैं मुजफ्फरगढ़ नही छोड़ सकता और मुझे पूरी तातीलात यहीं गुजारनी पड़ेगी। इसलिए प्रचार के लिए बाहर जाने से सख्त माजूर हूँ। मेरे पिता सख्त बीमार है। और वह हर वक्त मुझे अपने पास ही रखना चाहते हैं। मैं नही जानता कि मुझे उनको खुश करने के लिए क्या-क्या कुरबानी करनी पड़ेगी?

लाजपतराय, क्या तुम किसी और मुस्तकिल तजवीज का ख्याल नहीं कर सकते, जो तुमको कौमी काम करने में मदद दे। तुम हिसार या रोहतक में क्या कर रहे हो? जिन्दगी इस तरीके से, जिसमें तुम इसको बसर करते हुए मालूम होते हो, गुजारने के काबिल नहीं हैं। क्या वहाँ पर तुम्हारे कोई मुहिब्बदिली हैं? अगर हैं, तो खुश रहो और मुबारिक हो। क्या तुमको वहाँ पर अपने मुल्क को बेहतर हालत में लाने की कोई उम्मीद बन पड़ती नजर आती है? मेरे ख्याल से ऐसी बात करना बेहूदापन है।

क्या तुमको अपनी तबियत के भाव बढ़ाने के मौके वहाँ पर हासिल हैं? तुम्हारा दिल बहलाने वाली फाहत का तार गिर गया और एक नामर दीना-सी आवाज इसकी जगह कायम हुई। मैं तुम्हारी खानगी हालत को अच्छी तरह सोचता और ख्याल करता हूँ। अगर मुमकिन हो तो कौम और मुल्क की बेहतरी की तदबीर सोचो, शुहरत अजीब व गरीब तरकीब होती है। लेकिन ऐ मेरे प्यारे दोस्त, शुहरत के पीछे मत मरो। मुल्क के असली और हकीकी फायदे की कोशिश करो।

बगैर इस ख्याल के कि तुम अपने को इससे ज्यादा दिखाने की कोशिश करो जिस कदर कि तुम मुस्तहिक हो और कुछ परवा न करो अगर तुमको इसका नतीजा इतना न मिले जितना कि तुम मुस्तहिक समझते हो। चुपचाप काम करते चले जाओ। आइन्दा नस्लों में तुम जिकरे खैर से याद किये जावोगे और यही तुम्हारा बहतरीन इन्तजाम होगा। नसल मौजूदा ऐसी नसल नहीं है कि जिससे तुमको शोहरत के मन्दिर में दाखिल होने की दर माँगनी चाहिए। उस शख्स की हालत बहुत अफसोसनाक है कि जो महज शोहरत का तलबदार होकर जाहरी और बनावटी तुहफातहायक से इस देवी के पीछे जाता है।'

उपर्युक्त दोनों पत्रों से स्पष्ट है कि गुरुदत्त विद्यार्थी की ही प्रेरणा से लाजपतराय एक महान व्यक्ति बने। वे पंजाब के शेर कहलाने लगे। उनकी वक्तव्य शक्ति शेर की दहाड़ के समान थी। वह अथक और प्रबल वक्ता और तेजस्वी महापुरुष थे। उनमें काम करने की अद्भुत क्षमता थी। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वे सभी क्षेत्रों में कार्य करने में समर्थ थे। उन्होंने जो काम हाथ में लिया, अधूरा नहीं छोड़ा। आर्यसमाज के प्लेटफार्म

उनकी गर्जना से कम्पायमान हुए थे। अछूतो और अनाथों के लिए उन्होंने उस समय काम किया था जब इस ओर से हिन्दू समाज बिल्कुल बेखबर था।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त में राजपूताना, मध्य प्रान्त और पूर्व बंगाल मे भीषण अकाल पड़ा था। लालाजी ने उसमे पीड़ितों की भारी सहायता की। उन दिनों सरकार जो सहायता अकाल-पीड़ितों की करती थी वह बड़ी विचित्र होती थी। स्त्रियाँ, बच्चे और पुरुष अलग-अलग मिशनरियों को भेज दिये जाते थे। उनका परस्पर बिछोह हो जाता था। सम्वत् ५६ मे अकेले राजपूताने के ७० हजार स्त्री, पुरुष, बच्चे मिशनरियों को सौंपे गये। यह देखकर लाजपतराय दहल उठे। उन्होने देश को ललकारा और राजपूताना, बंगाल, मध्य प्रदेश और मध्य भारत में कमेटियाँ बनानी आरम्भ की और हजारों हिन्दू बच्चों को अन्न-वस्त्र देकर उनके प्राण बचाये।

इस विषय को लेकर सन् १९०१ मे जो कमीशन बैठा था और जिसने अकाल पीड़ितों की सहायता के उपायों पर विचार किया था, उसके सामने लाजपतराय ने इस बात की बड़े जोरों से कोशिश की थी कि हिन्दू अन्य धर्मियों को न सौंपे जायें। कमीशन ने उनकी इस बात को मानकर लिखा था कि अकाल-पीड़ित क्षेत्र में पाये गये बच्चो और स्त्रियों को उसी धर्म वाली संस्थाओं को सौंपना चाहिए। सन् १९०५ में कांगड़ा में भूकम्प आया। लाजपतराय ने उस समय वह सेवा की कि विदेशियों ने भी प्रशसा के पुल बाँध दिये। इसके बाद उन्हें कांग्रेस ने गोखले के साथ इंग्लैण्ड भेजा। वहाँ जाकर अपने व्याख्यानों से ऐसा जबरदस्त प्रभाव डाला कि इंग्लैण्ड में भारत के अनेक मित्र बन गये।

लाजपतराय करोड़पति व्यापारी और पूँजीपति नहीं थे, बल्कि कठोर परिश्रमी और श्रमजीवी थे। परन्तु उनके दान की रकम दस-पन्द्रह लाख से कम नहीं। दयानन्द कालेज, अनेक अनाथालय, तिलक विद्यालय और अन्त में क्षय के अस्पताल के लिए उन्होंने सर्वस्व दे दिया, अपने लिए भी कुछ नहीं रखा। बारम्बार सर्वस्व दान करना उनका स्वभाव हो गया था। उन्होंने कभी अपने लिए कुछ न रखा। कितने साधु-सन्त, महन्त देश में हैं जो गेरुआ वस्त्र पहनकर भी लाखों की सम्पदा, आसक्त होकर भोगते

हैं, परन्तु लाजपतराय अपनी वकालत से जो कमाते थे उसे वह आर्य-समाज के उत्सव पर, डी० ए० वी० कालेज की अपील पर, देश में अकाल पड़ने पर दे डालते थे। जब वकालत बन्द कर दी, तब मित्रों का ऐसा समूह उन्होंने उत्पन्न किया जिनका कोई नाम न जान पाया और लाखों रुपये उनके इशारे से उन्हें मिलते रहे। उनका रहन-सहन सादा, वस्त्र सादे, व्यवहार सरल और मन त्यागमय था।

वह कहते पीछे, करते पहले थे। सच्चे व्रती, दृढ़ निश्चयी और निर्भय थे। उन्होंने शिक्षण, अनाथ सेवा, देश-भक्ति में अपने को फेंक दिया था। वह गरीबों के बन्धु, किसानों के सगे और दुखियों के भाई थे। वे ऐसे भारतीय थे जिनके मुख से पृथ्वी की महाशक्तियों ने भारत को जाना था।

यही वे व्यक्ति थे जिन्होंने भारत में राष्ट्रीयता की शक्ति उत्पन्न की। जो भारत को महाशक्ति बनाने के लिए अन्तिम क्षण तक जिये और मरे।

लोगों पर प्रभाव उत्पन्न करने और जनता को वश में करने की उनमे अद्भुत क्षमता थी। उनके व्यक्तित्व में एक प्रभाव था जो जनता को क्षुब्ध और शान्त कर सकता था। उनकी गर्जना, उनकी चेष्टा, उनका चरित्रबल लोगों की दृष्टि में उन्हें परमपूज्य बनाये हुए था। लोग उनपर विश्वास करते थे, युवक उनपर प्राण देते थे और वह उनके लिए चाहे भी जब, उनसे बड़े बनकर नही, समान बन्धु बनकर उनके लिए मरने को उद्यत रहते थे।

: २ :

एक बार उनके सेक्रेटरी ने उनसे कहा—

'मद्रास अछूतोद्धार फण्ड में अब एक रुपया भी नही रहा। आगे कैसे काम चलेगा ?'

लालाजी ने कुछ क्षण सोचा, फिर कहा—

'यह लो मेरी चैकबुक। जो बैंक मे है, सभी भेज दो।'

'सभी ?'

'है ही कितना ? पचास-साठ हजार होगा।'

'आप खायेंगे क्या ?'

'तब क्या पंजाब के घरों में मुझे रोटियाँ भी न मिलेंगी ?'

लाजपतराय ने एक हास्य बखेरा और आँखों से एक मोती टपके

गर था

सेक्रेटरी ने कहा—'अभी उस दिन तो आप एक लाख रुपये अनाथों के लिए और गढ़वाल के लिए दे चुके हैं।'

'यह उस रकम से बचा हुआ धन है।'

'आगे कैसे काम चलेगा ?'

'आगे देखा जायेगा।'

'डेढ़ लाख अस्पताल को भी आप दे चुके हैं।'

'वह तो सब जायदाद के बेचने से ही हो जायेगा।'

'लालाजी, आपके बाल-बच्चे भी तो हैं।'

लाजपतराय ने कठिनाई से आँसू रोककर कहा—

'मेरे बच्चों ही के लिए तो यह सब कुछ है।'

'ओह लाला जी, आपको वे स्वार्थी बताते हैं।'

'ठीक ही है।'

'आप देवता हैं।'

'जी चाहे जो समझ लो, परन्तु यह रुपया कल ही भिजवा देना। अब शरीर थक गया है, अपना काम सँभाल लो। अब मैं आराम-तलब हो गया हूँ।'

लाजपतराय का राजनीतिक जीवन सन् १८८८ ई० से तेईस वर्ष की आयु से आरम्भ होता है। इस समय उन्होंने सर सैयद अहमद खाँ की नीति का व्यापक विरोध एक खुला पत्र प्रकाशित करके किया था। सर सैयद का उन दिनों बहुत दौर-दौरा था और उनके पिता उनके बड़े भारी भक्त थे। लाजपतराय सबसे प्रथम मद्रास वाली तीसरी कांग्रेस में सम्मिलित हुए। इस समय तक 'कोहनूर' में प्रकाशित उनके लेखों और उर्दू में लिखी 'मेजिनी', 'गेरी बाल्डी' जैसी छोटी-छोटी पुस्तकों ने उन्हें चमका दिया था। यह वह समय था जब पूना में पूज्य चिपलूणकर के नेतृत्व में तिलक अपने तीन युवक मित्रों सहित देशभक्ति की प्रतिज्ञा करके प्रकाश में आ रहे थे। धीरे-धीरे उनके गुण प्रकट होने लगे और वह प्रकाश में आने लगे।

लाजपतराय जन्म-जात देशभक्त थे। उन्होंने नागरिकता के पूर्ण

अधिकार प्राप्त करने के लिए सरकार से प्रबल युद्ध छेड़ दिया जो जीवन के अन्त तक जारी रहा। विचारों के व्यक्त करने की उनकी शैली उग्र थी। सन् १६०५ में बनारस काँग्रेस के अवसर पर उन्होंने बंगाल की काली पुलिस के कारनामों का ऐसा भण्डाफोड़ किया कि जिससे देश भर में खलबली मच गई और सरकार हिल गई। उन दिनों देश में दमन का दौर-दौरा था। पंजाब में कोलोनाइजेशन एक्ट और लैण्ड एलिनिजेशन एक्ट की बात से तथा रावलपिण्डी जिले में मालगुजारी बढ़ा देने से जनता में क्षोभ उभर रहा था। इसका कारण भी लाजपतराय समझे गये।

१६०८ के एक्ट की तीसरी धारा के अनुसार उन्हें पकड़ कर माण्डले जेल भेज दिया गया।

उन्हें हथकड़ी-बेड़ियों से जकड़ कर पुलिस के सख्त पहरे में पंजाब से ट्रेन में बैठाकर बाहर ले जाया गया था।

: २ :

रात्रि में ट्रेन भागी जा रही थी, पहरेदार सिपाही नींद की झपकियाँ ले रहे थे। लालाजी जंगली पशु की तरह जकड़े हुए ट्रेन के डिब्बे में चुपचाप बैठे थे।

डिब्बे के सब दरवाजे बन्द थे। शायद कोई देख न ले या हवा न लग जाये। हर स्टेशन पर गाड़ी रुकती और स्थानीय पुलिस अफसर स्टेशन पर हाजिर मिलता। वह अच्छी तरह पहरेदारों और डिब्बे की चाकचौबन्दी की जाँच करता। कोई व्यक्ति डिब्बे के पास आने न पावे, इसलिए ट्रेन खड़ी होते ही ६ पुलिस जवान, दो इंस्पेक्टर और एक गोरा सार्जेण्ट मुस्तैदी से तन कर हथियारों से लैस होकर गाड़ी घेरकर खड़े हो जाते थे। उन्होंने मौन-सा धारण कर रखा था। उन छः पहरेदारों में एक मुसलमान बूढ़ा पंजाबी भी था।

जब गाड़ी चल देती तब यही डिब्बे के सिपाही भीतर उनकी हथकड़ियों की जंजीर पकड़े रहता था। वह बराबर देखते आ रहे थे कि बूढ़े पहरेदार के होंठ फड़क कर रह जाते थे। वह कुछ कहने की लालसा भरी आँखों से उन्हें रह-रहकर देख लेता था, पर कह नहीं पाता था। कैदी की दृष्टि गूढ़ जगत् में विचर रही थी।

एकाएक उस बूढ़े पहरेदार ने चार केले जेब से निकाले और जमीन तक झुककर उन्हें दोनों हाथो में लेकर अपने कैदी के सामने खड़ा हो गया और बोला—'मेरे हुजूर, इस गरीब नाचीज की यह नजर भी कबूल फरमायें।'

कैदी ने देखा—ईश्वर से प्रार्थना करने के समय प्रेम, विनय तथा भक्ति के जो चिह्न मनुष्य के मुख पर आते हैं, वे उस बूढ़े के मुख पर थे।

कैदी ने एक दृष्टि उसके मुख पर डाली और एक केला ले लिया। सिपाही ने रोकर कहा—'यह सब मैंने आपके लिए अपने पैसों से खरीदे हैं। मैं सत्तर रुपयों का गुलाम आदमी हूँ। मेरी जिन्दगी इस जल्लादी सुर्ख पगडी को सिर पर रखते बीत गई। मेरे कमीने पैसे पर दुआ बख्शिये, जिन्दगी में मुझे घमण्ड करने की बात हो जायेगी। मेरे मुल्क के माँ-बाप, कबूल कीजिए, फिर इन कदमों का नियाज कहाँ नसीब होगा?'

इतना कहकर बूढा सिपाही कैदी के पैरों में लोट गया। उसके सूखे गालों पर आँसुओं की झडी लग गई।

कैदी के आँसू टपक पड़े। उनका मौन भंग हुआ। आँसू पोंछकर उन्होने बूढे का हाथ पकड़कर कहा—मेरे बुजुर्ग, मेरे पास बैठ जाओ। मैं तुम्हारी इस नियामत को तुम्हारे ही साथ खाकर निहाल होऊँगा।

पहरे के दूसरे सिपाही अपने इस बूढ़े साथी की भाव-विह्वल श्रद्धा को कौतुक से देख रहे थे।

उनकी गिरफ्तारी से उनका नाम समस्त देश में व्याप्त हो गया और देश भर में ऐसी उत्तेजना हुई कि ६ महीने बाद ही अंग्रेज सरकार को उन्हें छोड़ देना पड़ा। परन्तु सरकार की शनि-दृष्टि उनपर बनी ही रही। उनकी खरी बातों से सरकार का धैर्य टूट जाता था, वह उन्हें अपना भयंकर विरोधी समझती थी। परन्तु उन्होंने असाधारण धैर्य से अपना कार्य जारी रखा—उन्होंने न तो क्रांतिकारियों से सम्बन्ध रखा और न ही गुप्त षड्यन्त्रों का साथ दिया—वे खुल्लम-खुल्ला राजनीति की राह बढ़ते गये। वे अन्त तक प्रजा सत्ता के पक्ष में रहे।

: ४ :

माण्डले जेल से छूटने के बाद वह अमेरिका चले गये और वहाँ छः वर्ष

तक रहे। वहाँ उन्होंने कई उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे। अमेरिका के नेशन पत्र के सम्पादक मि० ओल्सवाल्ड, गेरीसन विलार्ड, सिनेटर बारा आदि उनके घनिष्ठ मित्र थे। अमेरिका की व्यवस्थापिका सभा में ग्रेट ब्रिटेन की भारत दोहन नीति पर बड़ा वाद-विवाद हुआ था और लाजपतराय ने अमेरिकी सिनेट को भारत की पराधीनता की दुर्दशा का प्रामाणिक विवरण देकर अपने देश की वास्तविक स्थिति को अमेरिका में भली-भाँति प्रकट किया था।

प्रथम महायुद्ध काल में उन्होंने भारत लौटना चाहा, परन्तु अंग्रेज सरकार ने उन्हें देश में आने की आज्ञा नहीं दी। बहुत काल तक भारत मन्त्री से पत्र-व्यवहार होता रहा। अन्त में १९२० में बम्बई में उन्हें आने की आज्ञा मिली। वे फरवरी १९२० में बम्बई पहुँचे।

जिस प्रातःकाल वह जहाज डेक पर आने वाला था उस समय सारी बम्बई डेक पर जा जुटी थी। समुद्र-तट पर अपार जन-समूह बड़ी अधीरता से उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। लोकमान्य तिलक अपनी मोटर पर बैठे एकाग्र उनकी प्रतीक्षा करते रहे। एनीबीसेंट पत्थर की प्रतिमा बनी कई घण्टों बिना हिले-डुले वहाँ बैठी देखी गई। श्रीमती जिन्ना अपने सुरक्षित अस्तित्व की झाँकी से उपस्थित जनता के प्राणों को हरा कर रही थीं। जहाज डेक से दूर रोक दिया गया। वहाँ से वे बड़ी किश्ती द्वारा उतारे जाकर तट पर लाये गये।

लालाजी आये। पाजामा और बन्द गले के कोट के साथ सिर पर पंजाबी धवल पगड़ी थी।

बीसेंट हड़बड़ाकर उठी, लाजपतराय तीर की तरह तिलक पर झुके। दोनों वीरों के नेत्र कोण में एक बिन्दु अश्रु आया और वहीं सूख गया। इसके बाद अन्य व्यक्तियों से मिलकर वे चले। एक कार में तीनों नेता बैठे थे। अपार भीड़ थी—सिंह की जय-जयकार हो रही थी।

गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर जुलूस एक विशाल सभा के रूप में बदल गया।

पंजाब केसरी के भाषण में आग भरी हुई थी। उन्होंने कहा—

'मेरे देश की बहिनो और भाइयो, मैंने विदेश में सुना कि पंजाब ने

जलियांवाला बाग में मार खाई है और वे पंजाबी शेर जिन्होंने फ्रांस के मैदान में अपनी संगीनों की नोक पर इंग्लैण्ड की नाक बचाई थी, अपने ही घर के द्वार पर कुत्ते की तरह शिकार किये गये हैं। यदि कोई पंजाबी बच्चा यहाँ है तो वह मुझे बताये कि उसके लिए उसने क्या किया है ?'

सभा में सन्नाटा था, सुई गिरने का शब्द भी होता तो सुनाई पड़ जाता। उन्होंने ऊँची आवाज करके कहा—

'पंजाबी नहीं, भारत का कोई भी सच्चा सपूत बताये कि उसने इस अपमान का कोई बदला लिया है ? मैंने सुना है कि यहाँ मर्दों को कीड़े की तरह रेंग कर चलाया गया था और स्त्रियों की गुप्तेन्द्रियों में लकड़ियाँ डालकर उन्हें कुत्ती-मक्खी और गधी कहा गया था। अरे देश के नौजवानो ! वे जिनकी माँ, बहिनें और बेटियाँ थीं, उन पिताओं, भाइयों और पतियों ने क्या किया है ?'

भीड़ में लोग रो रहे थे। सिसकारियाँ आ रही थीं, लालाजी ने ललकारकर कहा—

'हाय मुझे उस दिन उस स्थान पर मौत नहीं नसीब हुई ! अगर मैं जानता कि पंजाब के शेर बच्चे भी अब ऐसे बेशर्म हो गये हैं, तो मैं वहीं जहर खा लेता और यहाँ अपना मुँह न दिखाता।'

जनता बरसाती समुद्र की तरह उथल-पुथल हो चली। बहिन-बेटियाँ सिसक-सिसक कर रो पड़ीं, वृद्ध नररत्न तिलक की भी अश्रुधारा बह चली।

पंजाब केसरी का कण्ठ स्वर काँपा। वह अब बोलने में असमर्थ होकर नीची गर्दन किये बैठ गये।

सितम्बर में काँग्रेस के कलकत्ता विशेष अधिवेशन में उन्हें सभापति बनाया गया। इसी अधिवेशन में काँग्रेस ने असहयोग आन्दोलन को स्वीकार किया था।

यह वह समय था जब देश विमूढ़ हो रहा था और लोग कुछ करने को उन्मत्त हो रहे थे। महात्मा गाँधी का उदय उन्हीं दिनों हुआ। यह वह दिन थे जब पंजाब में फौजी कानून का अमल था और जालियांवाला बाग का हत्याकाण्ड हो चुका था। महात्मा जी के सहमत न होने पर भी वे उनके साथी हुए और देश-सेवा में जुट गये।

सन् १९२१ की दूसरी दिसम्बर को लाहौर के डिप्टी कमिश्नर मेजर फैरार ने पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी के पास इस आशय का एक लम्बा पत्र भेजा कि उन्हें एक समाचार से मालूम हुआ है कि उपर्युक्त संस्था की एक सभा अगले दिन होने वाली है और चूँकि उसके सम्बन्ध में उनके पास कोई नोटिस नहीं पहुँचा इसलिए ऐसी सार्वजनिक सभा 'राज-विद्रोहात्मक सभा एक्ट' के अन्दर आ जाती है। डिप्टी-कमिश्नर ने उस पत्र में सैक्रेटरी से सभा का कार्यक्रम और साथ ही यह वचन भी माँगा था कि सभा में कार्यक्रम के अतिरिक्त और किसी विषय पर विचार न किया जायेगा।

कांग्रेस सेक्रेटरी के० सन्तानम ने उत्तर में लिखा कि उपर्युक्त एक्ट उनकी सभा पर लागू नहीं होता, क्योंकि वह सभा सार्वजनिक नहीं, वरन् पंजाब कांग्रेस के कुछ चुने हुए प्रतिनिधियों की है और उन्हें उस सम्बन्ध में व्यक्तिगत नोटिस भेजा गया है।

प्रत्युत्तर में डिप्टी-कमिश्नर ने फिर लिखा कि मेरी इच्छा न तो सभा पर उपर्युक्त एक्ट लगाने की है और न सभा रोकने की, मैं सिर्फ यह वचन चाहता हूँ कि सभा में ऐसी कोई कार्यवाही न हो, जिससे जनता में असन्तोष फैले।

के० सन्तानम ने फिर उत्तर दिया कि यद्यपि कानून के अनुसार डिप्टी-कमिश्नर को सभा का कार्यक्रम पूछने का कोई अधिकार नहीं है, परन्तु मुझे कार्यक्रम बतलाने में कोई संकोच नहीं है।

उन्होंने लिखा कि सभा में उस नयी परिस्थिति पर विचार होगा, जो पंजाब के कई जिलों में 'विद्रोहात्मक सभा एक्ट' प्रचलित होने से उत्पन्न हो गई है। सभा में क्रिमिनल या एमेण्डमेंट एक्ट सम्बन्धी विज्ञप्ति पर भी विचार होगा और इन दोनों के सम्बन्ध में पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी अपना कर्तव्य-पथ भी निर्धारित करेगी।

तीसरी दिसम्बर को २ बजे लाला लाजपतराय के सभापतित्व में सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सभा में के० सन्तानम, डा० गोपीचन्द और मलिक लालखाँ भी उपस्थित थे। मेजर फैरार, पुलिस के डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेंट और कुछ यूरोपियन कांस्टेबिलों के साथ सभा-स्थल पर गये

और उसे सार्वजनिक सभा कहकर गैर-कानूनी करार दे दिया। साथ ही उन्होंने सदस्यों से भी सभा बरखास्त करने के लिए कहा।

लाजपतराय ने सभा के सभापति की हैसियत से यह कहकर कि 'सभा सार्वजनिक नहीं है' उनके आर्डर का विरोध किया और सभा बरखास्त करने से भी साफ इन्कार कर दिया।

इसपर मेजर फैरार ने पुलिस सुपरिन्टेंडेंट को उन्हें गिरफ्तार करने का आर्डर दिया और वह तुरन्त गिरफ्तार कर लिये गये। अन्य तीन सदस्य भी गिरफ्तार कर हवालात भेज दिये गए।

सातवीं दिसम्बर को चारों अभियुक्त लाहौर के एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि० कैफ के सम्मुख पेश किये गए और उनके मुकदमे के लिए १२वीं तारीख निश्चित कर दी गई। १०वीं दिसम्बर को पुलिस ने लाहौर में लालाजी के घर, पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर और कई प्रेसों की तलाशियाँ लीं, परन्तु उसे कोई विद्रोहात्मक चीज न मिल सकी।

मुकदमे की कार्यवाही १२ दिसम्बर को जेल के अन्दर प्रारम्भ हुई। लालाजी और उनके सहयोगियों पर 'विद्रोहात्मक सभा एक्ट' की ६वीं धारा और दण्ड-विधान की १४५वीं धारा का अभियोग लगाया था।

सबसे पहले सरकारी गवाह मेजर फैरार थे। उन्होंने अपनी गवाही में सभा की आयोजना, उसे बर्खास्त करने से इन्कार करने और उनकी गिरफ्तारी का सब हाल आदि से अन्त तक कह सुनाया।

पहली गवाही हो जाने के उपरान्त अदालत ने पहले अभियुक्त लालाजी पर 'विद्रोहात्मक सभा एक्ट' भंग करने के कारण उसकी ६वीं धारा का अभियोग लगाया।

लालाजी ने अपने बयानों में कहा कि वे न तो ब्रिटिश गवर्नमेंट की अदालतों को मानते हैं और न उसकी कार्यवाही में भाग लेने के लिए तैयार हैं।

इसके बाद उन्होंने ब्रिटिश गवर्नमेंट के शासन-विभाग की पोल खोलना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु अदालत ने उन्हें बीच ही में रोक दिया और विरोध-स्वरूप उन्होंने अपना वक्तव्य बन्द कर दिया। बैठने के पहले सभा के सम्बन्ध में उन्होंने अग्र बातें कहीं—

सभा में मेरे सिवाय किसी ने भाषण नहीं दिया। सभा के सभापति की हैसियत से उसकी सम्पूर्ण कार्यवाही के लिए मैं जिम्मेदार हूँ।

इस पर अदालत ने उन्हें अदालत के अपमान का अभियोग लगाने की धमकी दी परन्तु इस धमकी का उनपर कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने उत्तर देने से साफ इन्कार कर दिया। अदालत ने उनपर अभियोग लगा दिया और जमानत पर छोड़ने की आज्ञा निकाली, परन्तु जमानत देने से उन्होंने इन्कार कर दिया और वे हवालात भेज दिये गये। इसके बाद कुछ अन्य गवाहियों के बाद मामला १९वीं दिसम्बर के लिए स्थगित कर दिया गया।

इसी बीच हाईकोर्ट के वकीलों ने एक सभा की जिसमें उन्होंने जेल के अन्दर दरवाजे बन्द कर कार्यवाही करने का घोर विरोध किया। इसी समय 'हाउस आफ कॉमन्स' में कर्नल वैजवुड ने यह प्रश्न किया कि लाला लाजपतराय जैसे राजनीतिक कैदियों के साथ विशेष व्यवहार किया जाता है या उन्हें जेल में साधारण कैदियों की भाँति रखा जाता है। उत्तर में उस समय के भारत मन्त्री मि० माण्टेग्यु ने कहा कि वे भारतीय सरकार से इस सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। शायद इसी के परिणामस्वरूप लालाजी और उनके साथियों के साथ विशेष व्यवहार करने की आज्ञा निकाली गई थी। इस बीच में लाला त्रिलोकचन्द कपूर को अदालत के अपमान के दो अभियोगों में अलग-अलग तीन-तीन माह की कैद और तीन सौ रुपये जुर्माने की सजा दे दी गई।

लाजपतराय और उनके साथियों का मुकदमा फिर २२वीं दिसम्बर को स्थगित कर दिया गया और जब अगले दिन मामला प्रारम्भ हुआ तब कुछ शर्तों पर जनता को अदालत में जाने की आज्ञा दे दी गई। ६० आदमी अन्दर गये, अदालत ने लाजपतराय से कुछ प्रश्न किये, परन्तु उन्होंने उत्तर देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। अपनी इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि इसका अर्थ अदालत का अपमान करना नहीं है। मैं वही कर रहा हूँ जो भारत भर के सहयोगियों ने किया है। जो वक्तव्य मैं पेश कर रहा हूँ उससे मुकदमे सम्बन्धी सभी बातें स्पष्ट हो जायेंगी।

इसके बाद उन्होंने अपना लिखित बयान मजिस्ट्रेट को दे दिया। अन्य

अभियुक्तों ने भी कार्यवाही में भाग लेने से इन्कार कर दिया। अभियोग लगा देने के उपरान्त अदालत ने मि० स्लीम बैरिस्टर को अभियुक्तों की ओर से कानूनी बहस के लिए नियुक्त किया, परन्तु अभियुक्तों ने इसका विरोध किया। कार्यवाही समाप्त कर फैसले के लिए जनवरी मास की ७वीं तारीख निश्चित कर दी गई।

लाला लाजपतराय और के० सन्तानम को पहले अभियोग में छ:-छ: माह की सादी कैद और पाँच-पाँच सौ रुपये जुर्माने की सजा और दूसरे अभियोग में एक-एक साल की सख्त कैद की सजा दी गई। फैसले के अनुसार दूसरे अभियोग की सजा अभियुक्तों को पहले भोगनी थी। डाक्टर गोपीचन्द और मि० मलिक लाल खाँ को पहले अभियोग में चार-चार माह की सादी कैद और तीन-तीन सौ रुपये जुर्माने की सजा दी गई। इन्हें भी दूसरे अभियोग की सजा पहले काटने की आज्ञा निकाली गई थी।

असहयोग आन्दोलन को निष्क्रिय समझ कर बाद में लाजपतराय सी० आर० दास के स्वराज्य दल में सम्मिलित होकर देश-सेवा करते रहे। मृत्यु से आठ दिन पहले साइमन कमीशन के बहिष्कार सम्बन्धी जुलूस का वह नेतृत्व कर रहे थे। वहाँ पुलिस ने उनपर लाठियों का प्रहार किया। जिस पुलिस कर्मचारी ने उन्हें लाठी मारी थी—उसका हाथ पकड़कर उन्होंने ललकार कर कहा—यदि मर्द है तो अपना नाम बता? पर वह भाग गया।

: ५ :

जीवन भर कष्ट, चिन्ता और गहन विचारधारा में तन-मन-धन से लाजपतराय लगे रहे। ६३ वर्ष की आयु होने पर भी विश्राम नहीं किया। बीच में जेल की यन्त्रणाएँ भी कम न हुई थीं। इन सभी कारणों से उनका स्वास्थ्य गिर गया था। बहुत दिनों से उन्हें नींद न आने की शिकायत थी। वे प्रबल मानसिक परिश्रम करने वाले चिन्तनशील व्यक्ति थे। सन् २२-२३ मे जेल में वे महीनों तक ज्वर-पीड़ित रहे थे। वहीं उनके फेफड़ों में खराबी आ गई थी। सन् २४ में जब वह इंग्लैण्ड में गये तो उन्हें प्लूरिसी की बीमारी हो गई, जिसका उन्होंने स्विट्जरलैण्ड में इलाज कराया था। सन् २७ मे एक प्रख्यात इंग्लैण्ड के डाक्टर ने रेडियो द्वारा उनके फेफड़ों

की परीक्षा करके बतलाया था कि छाती के दाहिने भाग में कीटाणुओं के कुछ चिह्न हैं। पर उसकी उन्होंने कभी परवाह न की, न उनसे किसी प्रकार की हानि हो रही थी। इसके सिवा उनका पेट तथा आँतें ठीक तरह से काम नहीं करती थीं। सन् २७ के जुलाई तथा अगस्त में लालाजी फ्रांस के बीची स्थान में ६ सप्ताह तक रहे। इससे उनका स्वास्थ्य सुधर गया। परन्तु नींद न आती थी। फिर भी जिस दिन उनपर लाठियां पड़ीं, उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। लाजपतराय बड़े मानधनी थे। अंग्रेजों से इस प्रकार पिटने पर उन्हें भारी मानसिक व्यथा हुई। वे ऊपर से शान्त रहे, पर भीतर-ही-भीतर एक ज्वाला उनके हृदय में धधक उठी।

इस चोट का प्रभाव ऐसा घातक होगा, यह किसी को विश्वास न था। चोट का साधारण उपचार मालिश, विश्राम आदि किये गये। पर उसका प्रभाव दूर न हुआ। वह दिल्ली आये और बहुत थकान और सुस्ती अनुभव करके लौट गये। हृदय की वेदना बराबर बनी रही।

१६ नवम्बर की रात को साढ़े नौ बजे उनके सारे शरीर में दर्द बढ़ गया। छाती के दाहिने भाग में रीढ़ की हड्डी की ओर अधिक पीड़ा थी। डाक्टरों ने परीक्षा करके कहा कि हृदयरोग के कोई लक्षण नहीं दीखते, पर लालाजी ऐसा अनुभव करते थे कि मानो ज्वर बढ़ रहा है, परन्तु फिर भी नाड़ी की गति सुस्त थी। साँस अलबत्ता कुछ तेज चल रही थी। रात एक बजे सब डाक्टर व्यवस्था करके चले गये। लालाजी के पौत्र भारतभूषण मालिश करते रहे। रात्रि में डेढ़ बजे के लगभग लालाजी ने कहा—"मुझे नींद नहीं आयेगी, तुम मालिश बन्द कर दो और सो जाओ।"

रात बेचैनी से कटी। साढ़े छः बजे प्रातःकाल वह उठकर अपनी चारपाई पर बैठ गये और कहा—दर्द अधिक हो रहा है। भारतभूषण उठकर अपने पिताजी को बुलाने गये परन्तु उन्होंने आकर देखा तो लालाजी के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे, वे महान लोक को चुपचाप प्रस्थान कर गये थे।

डा० धर्मवीर और डा० गोपीचन्द, जो लालाजी के चिकित्सक थे, ने बतलाया कि लालाजी की मृत्यु का कारण चोटें थीं। डा० धर्मवीर ने २७ वर्ष इंग्लैण्ड में चिकित्सा की थी जिनमें २० वर्ष वहाँ के एक नगर के हैल्थ

आफिसर रह चुके थे। उनका कहना था कि हमें इस बात का आश्चर्य है कि उसी समय लालाजी की मृत्यु क्यों न हुई जब पीटे गये थे। उनका यह भी कहना था कि हमारी निश्चित धारणा है कि यदि लालाजी को यह चोट न लगी होती तो अभी वह कई वर्ष और जीवित रहते।

उनकी मृत्यु का समाचार लाहौर में बिजली की तरह फैल गया। नगर-वासी उन्मत्त होकर दौड़े। स्त्री, पुरुष, विद्यार्थी, धनी, विद्वान सभी थे।

दस बजते-बजते बीस हजार मनुष्य द्वार पर उपस्थित थे। खास व्यक्तियों में से श्रीमती सरलादेवी चौधरानी, जस्टिस बख्शीटेकचन्द, जस्टिस जियालाल, जस्टिस कुँवर दिलीप सिंह, सर अब्दुल कादिर, मौलाना बरकतअली, डाक्टर आलम, मौ० जफरअली, लाला दुलीचन्द, श्री रलियाराम, भाई परमानन्द, ला० हरकिशन लाल, श्री सन्तराम, डा० गोकुलचन्द नौरंग, डा० सत्यपाल, श्री गिरधारी लालजी, सरदार मगलसिंह, श्री नानकचन्द आदि थे। आधा दिन व्यतीत होते-होते यह समाचार देशभर में हा-हाकार के साथ फैल गया। चारों ओर से सहानु-भूति के तार तथा टेलीफोन आने लगे।

दिल्ली, रावलपिण्डी के लोगों ने बड़े आग्रहपूर्वक तार भेजकर प्रार्थना की थी कि अर्थी आज न निकाल कर कल निकाली जाये। पर अन्त्येष्टि-क्रिया का रोका जाना उचित न समझा गया। डेढ़ बजे शव को स्नान कराकर फूलमालाओं से सजाकर बाहर लाया गया। अर्थी को लाला जगन्नाथ, डा० गोपीचन्द तथा पीपुल सोसाइटी के लोगों ने कन्धों पर उठाया। 'बन्देमातरम्' के प्रचण्ड जयघोष के साथ अनारकली और पापड़ मण्डी पहुँचते-पहुँचते भीड़ ६०-७० हजार से ऊपर पहुँच गई थी। हीरा मण्डी में एक लाख आदमी थे। हृदयवेधी दृश्य था। कोई शब्दों से और कोई आँसू बहाकर हृदय की वेदना को व्यक्त कर रहा था। लाहौर में किसी की अर्थी के साथ इतने व्यक्तियों के होने का यह प्रथम अवसर था। आगे विद्यार्थी, उनके पीछे महिलाएँ, उनके पीछे धार्मिक-राजनीतिक और भिन्न-भिन्न सामाजिक संस्थाओं के लोग टोलियों में थे। विद्यार्थी वेदमन्त्र पढ़ते चल रहे थे, कुछ गीत गा रहे थे। गीतों में लालाजी के गुण और उनपर बरसी हुई पुलिस की लाठियों का जिक्र था। जुलूस अनारकली, लाहौरी

और गेरी बाल्डी की जीवनी तो बहुत पसन्द की गई थी भारत का इतिहास' भी एक असाधारण कृति है।

उनकी पुस्तक 'यंग इण्डिया' छपते ही जब्त कर ली गई थी। इस पुस्तक की कुछ पंक्तियाँ सुनिये—

'देश की वर्तमान परिस्थिति में दमन, फाँसी और कैद उसके लिए अत्यन्त लाभदायक हैं। आत्म-त्याग, सहिष्णुता और राष्ट्रीयता का यह भाव जितना कुचला जायेगा उतना ही अधिक फैलता और बढ़ता जायेगा। यह वह चीज है जो शहीदों के खून द्वारा सींची जाकर ही अच्छी तरह उगती है।

'अंग्रेजों की भारत की जीत तलवारों की जीत नहीं थी। वह जीत किसी भी तरह सैनिक जीत नहीं कही जा सकती। वे भारत को कभी नही जीत सकते। लेकिन उन्होंने कुछ आदमियों की कमजोरी से लाभ उठाया और कुछ आदमियों की आशा को उत्तेजित किया और इसी कारण उन्होंने अपनी जीत के काम में भारतवासियों की नैतिक और भौतिक सहायता प्राप्त की।

'अंग्रेजों के इस सम्बन्ध के कारनामे उतने ही काले हैं जितने कि वे हो सकते थे। जब कोई यह सुनता है कि भारत के राष्ट्रवादियों पर यह जुर्म लगाया गया है कि वे नियम द्वारा स्थापित सरकार को उखाड़ फेंकने की चेष्टा कर रहे हैं तो उस सुनने वाले को हँसी आये बिना नहीं रह सकती। कोई आदमी यह पूछ सकता है कि कौन-सा नियम है जिसके द्वारा यह सरकार स्थापित हुई है और किसने बनाया है उस नियम को?

'स्वतन्त्रता का कोमल पौधा जिस खुराक पर पनपता है वह शहीदों का खून है। फाँसी का फन्दा, जल्लाद की कुल्हाड़ी या बन्दूक की गोली एक व्यक्तिगत जीवन को ही बुझाती है—किन्तु इसके आगे वह एक काम और करती है कि वह सामूहिक जीवन की इच्छाओं को अधिक तीव्र और बलवती बना देती है। देश-निष्कासन, कालापानी, कारावास, दण्ड, यन्त्रणाएँ और जायदाद छीनना यह सब जालिम के हथियार हैं। इन्ही से वह स्वतन्त्रता का गला घोटना चाहता है।

'परन्तु अभी तक ये हथियार इतिहास में स्वतन्त्रता को विनष्ट करने

दरवाजा, पापड़ मंडी, शाहआलमी बाजार आदि से होकर जा रहा था। सड़क के दोनों ओर के मकानों के छज्जे ठसाठस भरे थे और उनपर से फूलों और गुलाबजल की वर्षा हो रही थी।

साढ़े पाँच बजे रावी के तट पर जुलूस पहुँचा और विधिवत् अग्नि-दाह किया गया। साढ़े सात बजे शव पूर्ण रीति से भस्म हो गया। लालाजी के दूसरे पुत्र उस समय खन्ना में थे। वह १५० मील मोटर द्वारा दौड़कर ५ बजे पिता के चरणों में पहुँचे। डाक्टर किचलू एक स्पेशल ट्रेन लेकर अमृतसर से आये थे। लाहौर स्टेशन पर उस ट्रेन का पहुँचना एक हाहाकार वातावरण बना रहा था।

लाहौर में सम्पूर्ण हड़ताल थी परन्तु मुसलमानों की दुकानें खुली थी। चीफ जस्टिस सर शादीलाल अनुपस्थित थे। अतः सीनियर जज जस्टिस फ्लोर्ड ने लालाजी के शोक में एक दिन हाईकोर्ट बन्द रखी थी। प्राय: सब ही सरकारी, अर्द्ध-सरकारी कालेज बन्द थे। ब्रिटिश सरकार का गर्वीला यूनियन फ्लैग भी उस दिन इस नरश्रेष्ठ के लिए आधा झुका दिया गया था।

यह शोक और हड़ताल केवल लाहौर में ही नही वरन् समस्त देश में हुई थी। जगह-जगह शोक सभाएँ हुईं और इस महान पुरुष के उठ जाने पर खेद प्रकट किया गया। पृथ्वी भर के विद्वानो, राजनीतिज्ञों और पत्रों ने इस दुर्घटना पर खेद प्रकट किया।

कर्नल वेज्वुड ने पार्लियामेंट में प्रश्न किया—'क्या पुलिस की लाठियों के कारण लालाजी की मृत्यु होने की सम्भावना के कारण पंजाब सरकार ने अपना दु:ख प्रकट किया?'

लार्ड विन्टर्टन ने जवाब दिया—'किसी भी सरकार के लिए उस समय क्षमा माँगना जरूरी नही है जबकि वह आक्रमण का उपयोग करना जरूरी समझती हो। पुलिस की लाठियों से मरने की कोई गवाही नही मिली।'

: ६ :

लालाजी ने महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी जो कभी पुरानी न होंगी। न उनका महत्त्व नष्ट होगा। लालाजी की प्रारम्भ में लिखी हुई 'मेजिनी'

और गेरी बाल्डी की जीवनी तो बहुत पसन्द का गई थी। 'भारत क इतिहास' भी एक असाधारण कृति है।

उनकी पुस्तक 'यंग इण्डिया' छपते ही जब्त कर ली गई थी। इस पुस्तक की कुछ पंक्तियाँ सुनिये—

'देश की वर्तमान परिस्थिति में दमन, फाँसी और कैद उसके लिए अत्यन्त लाभदायक है। आत्म-त्याग, सहिष्णुता और राष्ट्रीयता का यह भाव जितना कुचला जायेगा उतना ही अधिक फैलता और बढ़ता जायेगा। यह वह चीज है जो शहीदों के खून द्वारा सींची जाकर ही अच्छी तरह उगती है।

'अंग्रेजों की भारत की जीत तलवारों की जीत नहीं थी। वह जीत किसी भी तरह सैनिक जीत नहीं कहीं जा सकती। वे भारत को कभी नहीं जीत सकते। लेकिन उन्होंने कुछ आदमियों की कमजोरी से लाभ उठाया और कुछ आदमियों की आशा को उत्तेजित किया और इसी कारण उन्होंने अपनी जीत के काम में भारतवासियों की नैतिक और भौतिक सहायता प्राप्त की।

'अंग्रेजों के इस सम्बन्ध के कारनामे उतने ही काले हैं जितने कि वे हो सकते थे। जब कोई यह सुनता है कि भारत के राष्ट्रवादियों पर यह जुर्म लगाया गया है कि वे नियम द्वारा स्थापित सरकार को उखाड़ फेंकने की चेष्टा कर रहे हैं तो उस सुनने वाले को हँसी आये बिना नहीं रह सकती। कोई आदमी यह पूछ सकता है कि कौन-सा नियम है जिसके द्वारा यह सरकार स्थापित हुई है और किसने बनाया है उस नियम को?

'स्वतन्त्रता का कोमल पौधा जिस खुराक पर पनपता है वह शहीदों का खून है। फाँसी का फन्दा, जल्लाद की कुल्हाड़ी या बन्दूक की गोली एक व्यक्तिगत जीवन को ही बुझाती है—किन्तु इसके आगे वह एक काम और करती है कि वह सामूहिक जीवन की इच्छाओं को अधिक तीव्र और बलवती बना देती है। देश-निष्कासन, कालापानी, कारावास, दण्ड, यन्त्रणाएँ और जायदाद छीनना यह सब जालिम के हथियार हैं। इन्हीं से वह स्वतन्त्रता का गला घोटना चाहता है।

'परन्तु अभी तक ये हथियार इतिहास में स्वतन्त्रता को विनष्ट करने

मे सफल होते नहीं दीख पड़े हैं।

'वे राष्ट्र और व्यक्ति जो अपने ही मद में चूर हैं, जो अपकी शक्ति और अपने साधनों की शराब पीकर उन्मत्त हैं, जो अपनी ही इच्छा के अनुरूप चीजों को बनाने और बिगाड़ने के अभ्यस्त हैं, जो अपने हाथ की चीजों को अपने ही हाथ में सदा रखने का इरादा किये बैठे है, जो ऐसी चीजों को नहीं देखते जिन्हें देखना वह नापसन्द करते हैं, वे इंग्लैण्ड के राजा केन्यूट की तरह यह सोचते हैं कि समुद्र की लहरों को चाबुक मार-कर वे हटा देंगे। परन्तु लहरें उनकी क्या परवाह करती हैं!

'भारतीय राष्ट्रीयता की लहर बढ़ आई। शासन-पद्धति में इधर-उधर कितना ही उलट-फेर क्यों न किया जाये या कितनी ही अच्छी-अच्छी बातें क्यों न कही जायें लेकिन इनसे राष्ट्रीयता की लहरें नहीं मिटेंगी।'

उनकी अन्तिम पुस्तक 'दुःखी भारत' है जो उन्होंने अंग्रेजी में मिस-मेयो लिखित पुस्तक 'मदर इण्डिया' के उत्तर में लिखी थी। पृथ्वी-भर मे इस पुस्तक की चर्चा हुई। उनकी मृत्यु के चार दिन बाद उसका हिन्दी सस्करण इण्डियन प्रेस, प्रयाग ने प्रकाशित किया।

लालाजी ही मिस मेयो के फैलाये विष को दूर करने की क्षमता रखते थे।

इनके अतिरिक्त रवीन्द्र, गाँधी और बोस यह तीन ही व्यक्ति ऐसे और थे जो ऐसी पुस्तक लिखने का साहस कर सकते थे। वे अपने अमेरिका के प्रवास पर भी एक पुस्तक लिख रहे थे, पर उसके दो ही अध्याय लिखे गये।

उर्दू का 'बन्देमातरम्' और अंग्रेजी का 'पीपुल' लालाजी की वाक्सुधा का अमर झरना रहे। एसेम्बली में साइमन कमीशन बहिष्कार के सम्बन्ध में उनकी अन्तिम तड़प देखने को मिली थी, हाउस हिल रहा था और विरोधी सफेद हँसी हँस रहे थे। मालवीय और नेहरू साँस बन्द किये सुन रहे थे। सहस्र उल्कापात की तरह वाग्धारा उनके मुख से प्रवाहित हो रही थी। शब्द स्वयं जिह्वा पर नाचते लगते थे। लाठी खाकर उन्होंने अपने भाषण में लाहौर में कहा था—

'हम इन लाठियों को खाने के लिए तैयार हैं और जब तक अंग्रेज

में सफल होते नहीं दीख पड़ हैं।

'वे राष्ट्र और व्यक्ति जो अपने ही मद में चूर हैं, जो अपकी शक्ति और अपने साधनों की शराब पीकर उन्मत्त हैं, जो अपनी ही इच्छा के अनुरूप चीजों को बनाने और बिगाड़ने के अभ्यस्त हैं, जो अपने हाथ की चीजों को अपने ही हाथ में सदा रखने का इरादा किये बैठे है, जो ऐसी चीजों को नहीं देखते जिन्हें देखना वह नापसन्द करते हैं, वे इंग्लैण्ड के राजा केन्यूट की तरह यह सोचते हैं कि समुद्र की लहरों को चाबुक मारकर वे हटा देंगे। परन्तु लहरें उनकी क्या परवाह करती हैं!

'भारतीय राष्ट्रीयता की लहर बढ़ आई। शासन-पद्धति में इधर-उधर कितना ही उलट-फेर क्यों न किया जाये या कितनी ही अच्छी-अच्छी बातें क्यों न कही जायें लेकिन इनसे राष्ट्रीयता की लहरें नहीं मिटेगी।'

उनकी अन्तिम पुस्तक 'दुःखी भारत' है जो उन्होंने अंग्रेजी में मिस-मेयो लिखित पुस्तक 'मदर इण्डिया' के उत्तर में लिखी थी। पृथ्वी-भर मे इस पुस्तक की चर्चा हुई। उनकी मृत्यु के चार दिन बाद उसका हिन्दी सस्करण इण्डियन प्रेस, प्रयाग ने प्रकाशित किया।

लालाजी ही मिस मेयो के फैलाये विष को दूर करने की क्षमता रखते थे।

इनके अतिरिक्त रवीन्द्र, गाँधी और बोस यह तीन ही व्यक्ति ऐसे और थे जो ऐसी पुस्तक लिखने का साहस कर सकते थे। वे अपने अमेरिका के प्रवास पर भी एक पुस्तक लिख रहे थे, पर उसके दो ही अध्याय लिखे गये।

उर्दू का 'बन्देमातरम्' और अंग्रेजी का 'पीपुल' लालाजी की वाक्सुधा का अमर झरना रहे। एसेम्बली में साइमन कमीशन बहिष्कार के सम्बन्ध में उनकी अन्तिम तड़प देखने को मिली थी, हाउस हिल रहा था और विरोधी सफेद हँसी हँस रहे थे। मालवीय और नेहरू साँस बन्द किये सुन रहे थे। सहस्र उल्कापात की तरह वाग्धारा उनके मुख से प्रवाहित हो रही थी। शब्द स्वयं जिह्वा पर नाचते लगते थे। लाठी खाकर उन्होंने अपने भाषण में लाहौर में कहा था—

'हम इन लाठियों को खाने के लिए तैयार हैं और जब तक अंग्रेजी

हुकूमत है तब तक हम उनके खाने के मुस्तहिक हैं, लेकिन यह एक-एक लाठी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के कफन के लिए एक-एक कील सिद्ध होगी। यदि देश में कोई हिंसात्मक क्रान्ति होगी तो इसकी सारी जिम्मेदारी पुलिस और अफसरों पर होगी। यदि गवर्नमेण्ट तथा उसके अफसर इसी प्रकार अत्याचार करते रहेंगे जैसा कि उन्होंने आज किया है तो भारत के जोशीले नौजवान उत्तेजित होकर अधीर हो उठेंगे और उस समय मेरे, मालवीय जी के तथा महात्मा जी के लिए भी उन्हें रोकना असम्भव हो जायेगा। पर अभी जरा धैर्य से काम लेने की आवश्यकता है और जब वह दिन आयेगा तब मेरी आत्मा परलोक से नौजवानों को आशीर्वाद तथा मातृ-भूमि का उद्धार प्रत्येक सम्भव उपाय से करने की अनुमति देगी।'

इस प्रकार उस पुरुष ने परलोक की सूचना दी। 'पीपुल' में अपने अन्तिम लेख में उन्होंने लिखा—

'मैं पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता के प्रचार-कार्य का विरोध नहीं करूंगा, पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता का अर्थ मेरी समझ में ब्रिटिश सम्बन्ध का विच्छेद होना ही है। मैं समझता हूं कि गत कई वर्षों की ब्रिटिश नीति ने नवयुवकों को पूर्ण स्वाधीनता के लिए आन्दोलन करने पर विवश कर दिया है। उन लोगों को दोष नहीं दिया जा सकता।

'शिक्षित समुदाय की आर्थिक स्थिति निराशाजनक होती जा रही है और निकट भविष्य में उनके लिए बेहतरी की कोई भी आशा नहीं दिखलाई पड़ती है। इससे नवयुवक कैद का भय छोड़ते जाते हैं और वह समय निकट आता है जब वे मौत का भी डर छोड़ देंगे।

'सरकार उनको इससे अधिक और भय दिखा ही क्या सकती है? यदि यह मनोवृत्ति देश भर मे फैल जाये कि कैद या मृत्यु से कुछ भी हानि नहीं है, तो वह वर्तमान स्थिति से अच्छी है और हर कोई समझ सकता है कि उसका परिणाम क्या होगा! मुझे निश्चय हो गया है कि सरकार गिरने के लिए चढ़ रही है। हम चाहे औपनिवेशिक स्वराज्य चाहें, चाहे पूर्ण स्वाधीनता, दोनों के लिए पूर्ण स्वाधीनता के पक्षपातियों का मेल हो ही नहीं सकता। बूढ़े नौजवानों की बात नहीं मानेंगे और नवयुवक बूढ़ों की नहीं सुनेंगे।

'पूर्ण स्वाधीनता के लिए देश को तैयार करने के निमित्त जिस शारीरिक और मानसिक परिश्रम की लगातार जरूरत है अब उसके लिए मैं बहुत बूढ़ा और कमजोर हो गया हूँ। इसलिए आगे के कार्य का क्षेत्र नौजवानों के लिए छोड़ता हूँ। वे जो अच्छा समझें, करें।'

देशबन्धु चितरंजन दास की विधवा पत्नी वासन्ती देवी ने देश के युवकों से प्रश्न किया—

'मैं जब यह सोचती हूँ कि उन कमीने और हिंसक हाथों ने स्पर्श करने का साहस किया था एक ऐसे व्यक्ति के शरीर को, जो इतना वृद्ध, इतना आदरास्पद और भारतभूमि के ३० करोड़ नर-नारियों का इतना प्यारा था, जब मैं यह सोचती हूँ तब लज्जा और आत्मापमान के भावों से उत्तेजित होकर काँपने लग जाती हूँ।

'क्या देश का यौवन और देश का मनुष्यत्व आज भी जीवित है?

'क्या यह यौवन और मनुष्यत्व का भाव इस कुत्सित काण्ड की धधकती हुई लज्जा और ग्लानि को अनुभव करता है?

'मैं, इस भारत-भूमि की एक स्त्री, इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर चाहती हूँ। पूर्व इसके कि हमारे प्यारे लाजपत की चिता-भस्म ठण्डी पड़े, भारत का मनुष्यत्व और युवक जागे और इसका जवाब दे।'

२७

पहली तरंग

सू................!

मैं अच्छा हूँ। पर मुझे यह सहन नहीं होता कि तुम मुझे मनाओ। इससे मैं बहुत बेचैन हो जाता हूँ। जैसे जंगल के पशु अपने घावों को चाट-चूट कर आराम कर लेते हैं—वैसे ही मैं भी अपने हृदय के सब घावों को आराम कर लेता हूँ। मुझे उसकी आदत पड़ गई है। फिर मेरे पास एक ऐसी तेज शराब है जो हर वक्त मुझे गर्क रखती है। कसक तो कभी मालूम ही नहीं होती! कभी-कभी तो मुझे अपने घाव नकली से मालूम

पड़ने लगते हैं, समझते हो न ?

इसमें शक नहीं कि तुमने मुझे बड़ा ही अपमानित किया है। मैं तुम्हारे लिए अपनी आशा के कच्चे डोरे को इतना मजबूत समझता था कि इतराता था। पर तुमने उसे तोड़ दिया, अगर मैं औरत होता तो तुम्हारे मर्दपन पर धिक्कारता, क्या मर्दों की कुदरती शक्ति ऐसी होनी चाहिए ? साँस के झटके से टूट जाने वाले प्यार की आशा का अभागा तार तो सिर्फ प्यार के ही घमण्ड पर बाँधा जाता है। कोमलता का तो यह स्वाभाविक ही घमण्ड है कि वह अपने को कठोरता से सदा जबर्दस्त समझती है। कोई सजीव कठोरता तो उनके सन्मुख तनकर खड़ी रह ही नहीं सकती !

तुम यहाँ न आये ! खैर, मैंने सन्तोष कर लिया। इसे मैं धीरे-धीरे आप ही भूल रहा हूँ। इसमें मनाने की क्या बात है ? मैं तुम्हें चिट्ठियाँ इसलिए नहीं लिखता कि मैं अब अपने प्यार के बचे-खुचे रस को बहुत ही किफायत से खर्च करना चाहता हूँ। मैंने उसे बुरी तरह लुटाया है। वह किसी के पल्ले कम पड़ा है। पर बिखरा बहुत है। अभी तो मरने मे देर है। इस सबको खर्च कर दूँगा तो जीऊँगा कैसे ? युग बीत गये, हरीश को कभी नहीं लिखा। वहाँ तक डाक ही नहीं जाती। पर जब वह आता है वैसा ही छका हुआ। आनन्द और हास्य बखेरता हुआ, कभी चिट्ठी की शिकायत ही नहीं। बहुत दिन हुए, पर मुझे सब याद है—जब उसके हाथ और आँखें सलामत थी, एक बार लिखा था—

जिन्हों को इश्क सादिक हैं वे कब फरियाद करते हैं।
लबों पर मोहर खामोशी दिलों में याद करते हैं।।

वह भी जब आती है, मानो कहीं गई ही न थी। बातचीत और प्यार का जो प्रसग चलता है वह प्रारम्भ और समाप्ति से रहित सिर्फ मध्य भाग से—समझे ! मध्य भाग से ! हाय, तुम नहीं समझोगे, उधर गये हुओं से तुम्हारी मुलाकात ही नहीं है। तभी तो तुम ऐसी तुच्छ बातें जबान पर ले आते हो ? मुझे जरा उधर जाने दो, मैं प्रमाणित कर दूँगा कि मैं तुम्हारे लिए कितना उदार हूँ !

२८

भक्त रैदास

मीरा जोधपुर राज्य में मेड़ता के ठाकुर सरदार रतनसिंह की इकलौती बेटी थी। इनका विवाह मेवाड़ के राजपुत्र भोजराज से हुआ। मीरा अपना गुरु रैदास को मानती थी। विवाह के दस वर्ष बाद वह विधवा हो गईं। तभी से ये गिरधर गोपाल के भक्ति-प्रेम में लीन रहने लगी। साधु-सन्तों की संगत भी करने लगीं। महाराणा को यह पसन्द न था। उन्होंने बहुत रोका, बल प्रयोग किया, विषपान भी कराया। परन्तु मीरा की कृष्ण-भक्ति बढ़ती गई। उन्होंने तुलसीदास को एक पद लिखकर इस अवरोध की बात लिखी और उनका उत्तर पाकर पितृगृह मेड़ता चली गई। वहाँ से वृन्दावन और कुछ दिन बाद द्वारका जाकर वहीं रहने लगीं।

एक बार वे भावावेश में कृष्ण कीर्तन गातीं भक्तराज रैदास के दर्शन करने उनके स्थान पर आ गईं। रैदास उस समय वृक्ष के नीचे बैठे अपना काम कर रहे थे। कृष्ण कीर्तन का मधुर भक्ति-संगीत सुन वे आत्मविभोर हो अपने आसन से उठ खड़े हुए और कौतूहलपूर्ण नेत्रों से देखने और इधर-उधर के मनुष्यों से पूछने लगे। जन-समूह इधर ही आ रहा था। निकट आने पर देखा—एक देवांगना जैसी भावावेश में तन्मय हुई, अर्धनिमीलित नेत्र वाली परम सुन्दरी, गौर-वर्णीय, कृशांगी स्त्री, अद्भुत नृत्य करती और संगीत लहरी से वातावरण में एक कम्पन्न उत्पन्न करती, रस विमूढ़ हुई बढ़ी चली आ रही है। उसे न शरीर का ज्ञान है, न जनरव का, न परिस्थिति का। पचासों दासियाँ उसे घेरे हैं। कुछ के हाथ में वाद्य, कुछ के हाथ में थाल हैं, और बहुत-सी प्रचुर स्वर्ण मुद्राएँ मार्ग में बिखेरती चल रही हैं।

देवी की प्रत्येक भाव-भंगी पर जन-समूह प्रचण्ड जयघोष करता है। एक साधारण श्वेत साड़ी के परिधान से उसका शरीर ढका हुआ है। अलंकार नहीं, पैरों में जूता नहीं, पर एक अपूर्व उज्जवल आलोक उसके अर्धनिमीलित नेत्रों में और शारदीय चन्द्र के समान आलोकित करने वाली एक प्रभा उसके मुखमण्डल से निकलकर, सहस्रावधि जनता को

उन्मत्त कर रही थी। अनेक लोग बेसुध हुए, देवी की ताल पर नाचने लगे थे। असंख्य पुरुष जय-जयकार का उन्मत्त घोष कर रहे थे। धीरे-धीरे वह जाग्रत ज्योति आगे बढ़ रही थी।

: २ :

भक्तराज ने और निकट आने पर देखा और विस्मय तथा हर्ष से विक्षिप्त होकर कहा, 'अरे! यह तो मीरा माँ हैं।' वृद्ध भीड़ की ओर दौड़ा। पीछे शिष्यवर्ग भी दौड़ा। भीड़ में बहुत लोग 'हैं-हैं', 'चमार-चमार', 'दूर-दूर' चिल्लाने लगे। कंधे पर शाल डाले और पीताम्बर पहने चिकनी तोंद वाले पण्डित 'शिव! शिव!!' कहते दूर भाग गये। बहुत-से पण्डों ने चीत्कार करके कहा 'दूर हो', 'दूर हो', 'ओ चमार!' यह कहकर दण्ड-प्रहार का आयोजन किया। बहुत-से धक्का देने चले, पर स्पर्श होने के भय से रह गये।

भक्तराज जाग्रत न थे, वे समाधिस्थ आगे बढ़ रहे थे। उनके विमूढ़ नेत्र न कुछ देख रहे थे, न कान कुछ सुन रहे थे। वे दोनों हाथ पागल की भाँति आकाश की ओर उठाये 'मीरा माँ' 'मीरा माँ', कहते तीर की भाँति सीधे भीड़ मे घुस गये। भीड़ स्पर्शदोष से बचने के लिए हट गई। क्षण-भर में भक्तराज मीरा के सम्मुख थे।

मीरा हठात् स्तम्भित हो गई। मन्त्र मुग्धा सर्पिणी की भाँति वह अचल खड़ी हो गई। उन्होंने विस्फारित नेत्रों से क्षण भर भक्तराज की ओर देखा—भक्तराज तो अब भी सावधान न थे। वे 'माँ मीरा', 'माँ मीरा' करके नाच रहे थे। निकट आते ही वे धड़ाम से मीरा के चरणों में गिरकर वहाँ की धूल सिर पर डालने लगे। पर उसी क्षण मीरा भी पृथ्वी पर 'गुरुदेव' कहकर लोट गई।

अद्भुत दृश्य था। दोनों भक्त शिरोमणि एक-दूसरे के चरण-स्पर्श करने की सम्पूर्ण चेष्टा कर रहे थे। धीरे-धीरे दोनों के नेत्रों मे प्रेमाश्रुधारा बह चली। जन-समूह उन्मादग्रस्त-सा होकर 'जय माँ मीरा' बारम्बार चिल्लाने लगा। अब ऊँच-नीच का भेद भीड़ भी भूल गई। 'जय भक्तराज रैदास' की पुकार भी बारम्बार आकाश को चीरने लगी। असंख्य लोग भक्तिमग्न होकर नाचने लगे।

धीरे-धीरे मीरा उठी। उसने अर्ध-मग्नावस्था में गाना आरम्भ किया—

ऐसा वैद मिले कोई भेदी, बिदेस पिछानी,
तासो पीर कहूँ तन केरी, फिर नहि भरमों खानी,
खोजत फिरों भेद वा घर को कोई न करत बखानी,
रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु, दीन्हा सुरत सह दानी,
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी,
मीरा खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी।

मीरा गाते-गाते रोने लगी। रैदास अभी पृथ्वी पर ही पड़े थे। सहस्रों नर-नारी रो रहे थे। किसी को तन-मन की सुध न थी।

मीरा ने फिर गाया—

म्हाला मैं बैरागिण हूँगी हो।
जी जी भेष म्हाँरों साहिब रीझै, सोई सोई भेष धरूँगी हो।
सील सन्तोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी हो।
जाको नाम निरंजन कहिए, ताको ध्यान धरूँगी हो।
गुरु ज्ञान रँगू तन कपड़ा, मन मुद्रा फेरूँगी हो।
प्रेम प्रीति सूँ हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी हो।
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम रटूँगी हो।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, साधां संग रहूँगी हो।

इतना कहकर उसने रैदास के चरणों पर सिर नवाया। रैदास उठे। उनका मुख आँसुओं से भीग रहा था, वे सिर नीचा किए अपनी दुकान की ओर चले। पीछे मीरा और उसके पीछे अपार भीड़ थी।

: ३ :

रैदास अपने आसन पर जा बैठे। अधसिला जूता सामने रक्खा था। मीरा उनके सम्मुख एक चटाई के टुकड़े पर बैठी थी। सड़क पर असंख्य नर-नारी खड़े थे। मीरा कर-बद्ध ध्यान से भक्तराज की वाणी सुन रही थी। भक्तराज कम्पित कण्ठ और गद्गद स्वर से हृदय के गम्भीर प्रदेश से भक्ति-रस के पद सुना रहे थे। समुद्र की तरह उमड़ती भीड़ मग्न हो रही थी।

अन्त में मीरा ने संकेत किया। दासियों ने स्वर्ण मुद्राओं से भरे दो थाल मीरा के सम्मुख रखे। कुछ गन्ध-द्रव्य और बहुमूल्य वस्त्र भी थे। मीरा ने करबद्ध कहा—गुरुवर! दासी की तुच्छ भेंट स्वीकार करें।

रैदास ने स्वर्ण समूह को देखा। उनके मुख पर हास्य की रेखा आयी। उन्होंने सामने के अधसिले जूते को हाथ में लेकर कहा—"मीरा माँ! ये स्वर्ण मुद्राएँ मेरे किस काम की हैं? मैं इनका क्या करूँगा? रखूँगा कहाँ? यह देखो, मैं प्रतिदिन दो जोड़े जूते आसानी से बना लेता हूँ। एक को बेचकर गृहस्थी पालता हूँ, दूसरे को बेचकर साधु-सन्तों की सेवा, जो बनती है, कर लेता हूँ। मेरा काम अबाध रूप से चल रहा है। इन बहुमूल्य वस्त्रों का भला यह बूढ़ा क्या करेगा?"

मीरा ने हठ किया। उसने संकेत किया—समस्त द्रव्य उसी क्षण साधु-सन्तों को गुरु रैदास के नाम पर बाँट दिया गया। जनता फिर 'जय मीरा, जय गुरु रैदास भक्त'! चिल्ला उठी।

: ४ :

मीरा राजमार्ग में उसी भीड़ में लौट रही थी। वह उच्च-स्वर में गा रही थी।

मेरो मन लग्यो हरिसूँ, अब न रहूँगी अटकी।
गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी।
चोट लगी निज नाम हरी की, म्हारे हिवड़े खटकी।
माणिक मोती परत न पहरूँ, मैं कब की नटकी।
गेणो तो म्हारे माला दोवड़ी, और चन्दन की कुटकी।
राजकुल की लाज गँवाई, साधाँ के संग भटकी।
नित उठि हरि जी मन्दिर जास्याँ नाच्यां दे दे चुटकी।
भाग खुलो म्हारो साध संगत सूँ साँवरिया की बटकी।
परम गुरु के शरण में रहस्यां परणाम करां लुटकी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर जनम मरण सूँ छटकी।

२६

वसन्त

निगमबोध को आज भी दिल्ली का बच्चा-बच्चा जानता है। आज वहाँ मुर्दा-घाट है। अमीर-गरीब हिन्दू इसी पुण्य स्थान पर महायात्रा करते है। दो-चार चिताएँ हमेशा धधकती रहती है। इधर कुछ दिनों से कुछ मनचले रईसों ने निगमबोध के इधर-उधर जमना-किनारे पक्के घाट और छोटे-छोटे बगीचे बना लिये हैं, और वहाँ जब वसन्त की बयार बहती है, जाड़ा कुछ कम पड़ जाता है, तब बड़ी चहल-पहल रहती है। दिल्ली के छैल जोड़ी और अकेले सुबह-शाम वहाँ जाते, स्नान करते और मौज करते है।

परन्तु आज से लगभग ८०० वर्ष पहले निगमबोध की कुछ और ही रंगत थी। उन दिनों दिल्ली पर प्रबल प्रतापी, नौ लाख सवारों के मालिक, चौहान-कुल-कमल-दिवाकर महाराज पृथ्वीराज का राज्य था। आज जहाँ कुतुबमीनार ऊँचा सिर किए मीलों तक फैले खण्डहरो पर रंज-भरी नजर डाल रहा है, वहाँ उस समय महानगरी दिल्ली बसी हुई थी, और आज जहाँ दुनिया की सात अचरज की चीजों में से एक लोहे की लाट खडी है, वहाँ महाराज का सतखण्डा महल था, जिसकी ड्योढ़िया पर पराजित राजा लोग पहरे दिया करते थे।

: २ :

वसन्त की बहार थी। निगमबोध पर महाराजा का एक बड़ा भारी बाग था। वहाँ तरह-तरह की क्यारियों में तरह-तरह के बेल-बूटे, फूल लहलहा रहे थे। शीतल, मन्द सुगन्धित हवा के झोंके खा-खाकर डालियाँ लहरा रही थीं। केसर, कुंकुम, जाती, मालती, चमेली, चम्पा, जुही, गुलाब, कुन्द, कदम्ब की भीनी सुगन्ध से कोसों की हवा में मस्ती बिखरी रहती थी। अनार, दाख, पिण्डखजूर, लीची, नारियल आदि तरह-तरह के फलों से लदे पेड मतवालों की तरह झूम रहे थे।

वसन्त पंचमी का दिन था। महाराज की आज्ञा से उस साल निगमबोध पर वसन्तोत्व मनाने की बड़ी भारी तैयारी की गई थी। ढेरों सामान इकट्ठा किया था। मनों अबीर, गुलाल; सेरों केसर, कस्तूरी, चन्दन,

अगर, कपूर जुटाये गये थे। हरी-भरी डालियों, बन्दनवारों और भाँति-भाँति के फूलों से दरबार सजाया गया था। ढोल, डफ, नगाड़े, शंख, वीणा शहनाई, मोरचंग, झालर, घण्टा, विजयघण्ट आदि बाजे बज रहे थे। बीचो-बीच महाराज का हीरों का सिंहासन था। उनके सिर पर कुसूमल पाग थी, जिस पर का पुखराज सूरज की भाँति चमक रहा था। अगल-बगल खवास मोर्छल झल रहे थे। महाराज के बाईं ओर गोइंदराय, निड्डुरराय और सलख प्रमार थे। दाहिनी ओर सोमेश्वर के भाई महासुभट कान्ह थे, जिनकी दृष्टि में शनिश्चर का वास था! वह जिसे क्रोध से देखते, भस्म हो जाता था। उनकी आँखों पर अस्सी लाख की कीमत की पट्टी बँधी रहती थी, जो रणक्षेत्र में और सेजों पर ही खुलती थी। गद्दी के पीछे साक्षात् ब्रह्मा के समान विद्वान् गुरुराम पुरोहित का आसन था, और सामने कवि चन्द विराजमान थे, जिन्हें अदृष्टदर्शन और सरस्वती सिद्ध थी। और भी शूर-सामन्त दरबार में अपनी-अपनी जगह बैठे थे। राजा और दरबारियों की पोशाक बसन्ती थी। बसन्ती रंग को छोड़ वहाँ दूसरा रंग न था। अबीर-गुलाल की बौछार हो रही थी। संगीत और नृत्य में चतुर, रूप की खान वेश्याएँ ताल के हिसाब से बँधी हुई लय में, ऊँची-नीची चल-फिर और आडी-तिरछी लौट-फेर करती हुई, राग-रागिनियों का समा बाँधकर राजा और दरबारियों का मन चुरा रही थी।

चोबदार ने पुकार की—"पृथ्वीराज, कन्नौज से एक ब्राह्मण महाराज को आशीर्वाद देने आया है।"

महाराज ने ब्राह्मण को सम्मुख आने का आदेश दिया। ब्राह्मण ने हाथ मे जनेऊ ले राजा को ऊँचे स्वर से आशीर्वाद दिया, और कहा—"हे प्रतापी चौहानराज! आपकी जय हो। मैं कन्नौज से चला आ रहा हूँ। कन्नौज राजकुमारी संयोगिता चौदह वर्ष कीहुई है। पंगराज उसका स्वयंवर कर रहे हैं, परन्तु मैंने गणना करके देख लिया, वह असाधारण राजनन्दिनी आपके लिए उत्पन्न हुई है। वह रम्भा का अवतार है। वह अपने गंगा-किनारेवाले महल में, सौ सखियों के साथ रहती है। महाराज, उससी सुन्दरी बाला न जन्मी है, न जन्मेगी। उसके शरीर से हजार कामदेव प्रकट हो रहे है। जैसे वसन्त में पुराने पत्ते झड़कर नयी कोपल फूटने से वृक्ष की शोभा

होती है, वैसे ही बचपन के जाने और यौवन के आने से उसकी शोभा हो रही है। अजी महाराज, जैसे बरसात में नदी उमड़-उमड़कर समुद्र के हृदय में हलचल मचा देती है वैसे ही उस बाला का यौवन उसके बालपने को हराकर ऊधम मचा रहा है। अजी, वह तो वसन्त की फुलवारी बनी है। जैसे वसन्त से दिन में कुछ पक्कापन आने लगता है, वैसे ही वह भी कुछ निडर-सी हो गई है। उसकी आवाज भौंरे की गूँज को मात करती है। वसन्त की वायु के झोंके से झुकी, फूलों से लदी डाल की तरह वह लाज से झुकी-सी रहती है। हे महाराज! इस राजनन्दिनी के ब्याह के लिए महाराज जयचन्द ने आकाश-पाताल को मन्त्र-बल से और बाकी आठ दिशाओं को अपने घुड़सवारों के बल से बाँधने की तैयारी की है। वह बाला सहज मिलने की नहीं। उसके जन्म-काल में मंगल, बुध, शुक्र, शनि और चन्द्रमा चौथे स्थान में गोचर में पड़े हैं, गुरु और केतु केन्द्र में तथा राहु अष्टम हैं, जन्म से राहु पंचम है। राजन्! इसके विवाह में लोहू की नदी बहेगी, और हजारों छत्रधारियों के मुण्ड धरती में लोटेंगे। महाराज! सावधान होकर तैयारी कीजिए।"

ब्राह्मण चुप हो गया। राजा और राजसभा सन्नाटे में आ गई। पृथ्वीराज ने आपा खो दिया, उनको सब ओर संयोगिता-ही-संयोगिता दिखाई देने लगी। उन्होंने विकल होकर कहा—"इस ब्राह्मण को अनगिनत रत्न, धन, हाथी, घोड़े और सोना देकर बिदा करो।"

: ३ :

लगी बुरी होती है। वह लगी ही क्या, जिसमें आँख लगे। फिर वसन्त की हवा, जो वियोग की आग को और भी भड़का देती है। पृथ्वीराज का खाना-सोना जाता रहा। उनकी नस-नस में संयोगिता बस गई। आधी रात होने पर भी जब उन्हें नींद नहीं आयी, तो उन्होंने चन्द कवि को हाजिर होने का हुक्म दिया। चन्द कवि ने आ, हाथ बाँध मुजरा किया।

राजा ने कहा—"मित्र, कहो, कैसे वह सुन्दरी हाथ लगेगी?"

"महाराज, जयचन्द का बल अथाह है।"

"यार, यह कहो, कब चलोगे? बिना संयोगिता को हरण किए मैं एक पल भी नहीं रह सकता।"

महाराज, सब आगा-पीछा सोच लें।"

"सोच लिया, परसों चल दो, है क्या? यह जिन्दगी पानी-भरी खाल है, इसलिए दिल का अरमान निकाल डालना ही अच्छा है।"

"तब महाराज, शूरवीरों को ताक में रखकर, भेष बदलकर चलिए। किसी को कानोंकान खबर न हो। चुने हुए सामन्त और शूरमा साथ लीजिए।"

"ऐसा ही सही, तो कूच की तैयारी कर दो।"

"जो आज्ञा।"

: ४ :

गहरी अंधेरी रात में ग्यारह सौ सवार चुपचाप दिल्ली से कन्नौज की राह पर जा रहे थे। इनमें सौ महाबली, अजेय सामन्त और एक हजार सुभट योद्धा थे। एक को भी जीते-जी लौटने की आशा न थी। यह छोटी-सी सेना कूच-पर-कूच करती हुई कन्नौज के सिवानों पर ज्यों ही पहुँची, महाकवि चन्द ने कहा—"वीरो! समस्त क्षत्रिय-वंश और छत्रधारियों में श्रेष्ठ अनगिनत सेना के स्वामी, महाबली, धर्म-धुरन्धर, पृथ्वी पर इन्द्र के समान, कर्मध्वज-कुल-कमल-दिवाकर कन्नौजपति के—जिनके सामने छत्तीसों वंश के क्षत्रिय सिर झुकाते हैं, और दरबार में छहों भाषाएँ, नवों रस, और चौदह विद्या, चौंसठ कला देह धरकर विराजती हैं—महलों के कलश यही तो हैं।"

सामन्तों ने नरनाह कान्ह के पास आकर कहा—"महाराज, यह भटवा न जाने कहाँ मरवाएगा। यह जबरदस्त जयचन्द का दरबार है; बेदाग निकलना आसान नहीं। अब आप पट्टी खोल डालिए, नहीं तो नगर-वासी सन्देह करेंगे।"

कान्ह ने पट्टी खोल दी, और कहा—"वीरो, अब सोचने का समय नहीं, आगे बढ़ो।"

अंगार क्या राख में छिपा रह सकता है? जयचन्द की आज्ञा से पृथ्वीराज का कटक दस लाख सेना ने घेर लिया। सब नाके रोक लिये गए। मार-काट, हाय-हाय मच गई। योद्धा जूझने लगे। रुण्ड-मुण्ड कटकर गिरने लगे। घायलों की चिल्लाहट, वीरों की हुंकार से धरती गूँजने लगी।

पृथ्वीराज उछलकर घोड़ पर सवार हो बोले—"लो भाई, समय आ गया। अब मालूम हो जायगा, कौन कितने गहरे में है !"

उन्होंने अपार सेना को देखा, कंधे उचकाए, लंगरीराय से हँसकर कहा—"क्षण-भर आप लोहा लें, मैं अभी आया।"

एक छोटा-सा व्यूह बनाया, और चुने हुए सामन्तों से गसे हुए, पग-सेना को चीरते हुए बिजली की भाँति निकल गए। वह काई की तरह शत्रुओं को चीरते हुए निकल गए। गंगा किनारे रत्नमहल मे कुमारी मछली की भाँति तड़प रही थी। उसने सब सुन लिया था। वह चौहानराज पर मोहित थी। दासियाँ कह रही थीं—"अरी, तूने ऐसे से मन लगाया, जिसे तेरा पिता तेल में होकर देखता है। उसके लिए तू कहाँ तक कलपेगी, जिसपर हजारों हाथ उठे हैं।" संयोगिता ने दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया। उसने रोकर कहा—"अरी, क्यों जले पर नमक छिड़कती हो ? मरे को गाली देने से क्या ? कर्म-रेखा के सामने विद्या-बुद्धि किसकी चली है ?"

एक धमाके के साथ चहारदीवारी फाँदकर पृथ्वीराज आ गए। सखियाँ सहम गईं। संयोगिता मूर्च्छित हो गई। दो-एक सयानी सखियाँ तत्काल ब्याह की तैयारी में लगीं। उन्होंने कहा—"अन्तरिक्ष के देवता साक्षी हैं।" और उन्होंने पंगराज-बाला और चौहान का हाथ मिला दिया। राजा ने उसे उठाकर बाएँ पार्श्व में बैठाया, और सखियों ने गठजोड़ी करके मंगल-गीत गाने शुरू कर दिए।

बाहर तलवारों की झनझनाहट होने लगी। वीरों की हुँकार महल मे आकर मंगल-गीत को ले डूबी। एक सखी ने कहा—"महाराज, शूरों को समर-रूपी मानसरोवर में स्नान करने का सौभाग्य कभी-कभी मिलता है।"

राजा सिंह की भाँति गर्दन ऊँची कर उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—"चलो राजबाला, यह संकोच का अवसर नहीं है।"

संयोगिता ने धरती की ओर देखकर कहा—"आप कैसे मुझे इन थोड़े से साथियों-सहित ले जाएँगे ?"

राजा ने कहा—"हम एक-एक लाख के समान हैं। हम हाथी के दाँत मूली की भाँति उखाड़ते हैं। उठो।"

संयोगिता आँखों में आँसू भरकर बोली—"महाराज ! मेरे पिता के

यहाँ बीस हजार बख्तरिए, सोलह हजार निशान, सत्रह हजार हाथी और तीस लाख दुधारे और तेगाबर्दार हैं। पैदलों की तो गिनती नहीं। सौ सामन्त उन्हें कैसे रोकेंगे ?"

नरनाह कान्ह ने आगे बढ़कर कहा—"जब तक मैं हूँ, बहू, तू निर्भय हो, सुर, नर, नाग, सब मुझसे भय खाते हैं। तू कहे, तो इन्हीं भुजाओं से तेरे पिता के सिंहासन-सहित राजमहल को खोदकर गंगा में फेंक दूँ।"

संयोगिता अछता-पछताकर उठी। पृथ्वीराज ने बायाँ हाथ खींचकर घोड़े के पुट्ठे पर बैठाया, और उछलकर सवार हो लिये। यह देख सामन्तों ने उन्हें चारों ओर से गाँस लिया। दाहिने काका कान्ह और केहर कण्ठोर, बाएँ निड्डरराय, आगे सलख प्रमार, लक्खन बघेरा और जेतराव, पीछे प्रहार राव तँवर, भोहाँ चँदेला, अल्हनकुमार, लक्खन दाहिमा और गक्खर चले।

चन्द कवि ने आगे बढ़कर कान में कहा—"पृथ्वीनाथ, आप राजकन्या को लेकर कूच करिए, हम सब सामन्त पंगदल को रोकते हैं।"

पृथ्वीराज ने विषधर नाग की भाँति फुफकारकर कहा—"वाह, मैं चौहान कैसा, जो पंग-दल को मार-मारकर धुर्रे न उड़ा दूँ। जाओ कवि, पुकारकर कह दो कि चौहान पृथ्वीराज पंगराजनन्दिनी संयोगिता का हरण कर बीच मैदान में खड़ा है। जो माई का लाल हो, आगे आकर रोक ले।"

चन्द ने एक ऊँची जगह चढ़कर पुकार की—"जयचन्द का यज्ञ विध्वंस करने वाले, महाप्रतापी, संभरीनाथ चौहानपति सुन्दरी संयोगिता का पाणिग्रहण कर खड़े हैं, पंग-पुत्री संयोगिता विदाई में युद्ध का कंगन माँगती हैं।"

सोलह हजार निशानों को उड़ाती पंग-सेना ने चारों ओर से धावा बोल दिया, जैसे प्रबल भूकम्प आया हो। संयोगिता ने लाज त्यागकर कहा—"स्वामी! अब मेरा मुँह न देखिए, बढ़-बढ़कर हाथ मारिए, और पल्ले-भर कीर्ति ले क्षत्रिय-जन्म सफल कीजिए।"

पृथ्वीराज ने हँसकर कहा—"पंगकुमारी, सँभलकर बैठो, और जरा रास पकड़े रहो, और चौहान की तलवार के खेल देखो।"

राजा दो तलवारें ले पिल पड़े। नरनाह कान्ह ने दुधारा सँभाला और बोले—"यार, मरना है, तो ऐसे मरो कि लोग भी जानें।" सारंगराव सोलंकी गुर्ज उठाकर बोला—"बढ़ो नरनाह! अब कटा-कटी चली।" कान्ह दुधारे से कभी हाथी का कपोल चीरता, कभी छाती मे सेल मारता, कभी दाँत पकड़ मूली की भाँति उखाड़ता। उनके शरीर से ऐसा खून बहा, जैसे काजल के पहाड से गेरू का झरना, खून की नदी बह निकली, और हाथियो की कटी सूँड़ें मगर-सी और ढालें कछुए-सी तैरने लगी। सारंगराव ने खोपड़ियों के ठठ लगा दिए। इस प्रकार तिल-तिल युद्ध करते, साढ़े इक्यासी मील जमीन पार कर पृथ्वीराज सोरों आ पहुँचे। यहाँ से दिल्ली की हद लगी थी। बासठ सामन्त खेत आ चुके थे, और केवल पैंतालीस आदमी पृथ्वीराज के पास बचे थे। पृथ्वीराज के शरीर पर बयासी और संयोगिता के शरीर पर सत्ताईस घाव थे। वह एक हाथ में कटार और दूसरे में घोड़े की रास पकड़े पति की पीठ की रक्षा कर रही थी। पीछे उमड़ती हुई सेना देखकर पृथ्वीराज ने कहा—"वीरो, अब तो मरने का समय आ गया।" वह घोड़े से उतर पड़े। संयोगिता को घोड़े पर छोड़ा। बारह-बारह सामन्त घोड़े के दोनों बगलों में तलवार सूतकर खड़े हो गए। जोगी जंधारा और भीमदेव लौटकर मोर्चा रोकने खड़े हो गए। अब घड़ी-घड़ी की खैर न थी, महारार मची थी।

दशमी की दुपहरी ढल गई। चार घड़ी दिन रहा, तो जयचन्द हाथी से उतर, घोड़े पर सवार हो खुद पृथ्वीराज को पकडने बढ़े। पर जब उनकी निगाह अपनी ओर करुण नेत्रों से ताकती हुई संयोगिता पर पड़ी—जिसके बाल बिखर रहे थे, होंठ सूख रहे थे, वदन के घावों का खून सूखकर उन पर धूल जम गई थी—तब वह पकड़ो-पकड़ो! कहते बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े। सब सरदार घोड़ों से उतर पड़े। उन्होंने इशारे से युद्ध रोक दिया। वे सब राजा को घेरकर खड़े हो गये। राजा उठे, उनकी आँखो की पुतली पुत्री के सामने ताक रही थीं, और पृथ्वीराज नंगी तलवार लिये शेष सामन्तों सहित उसके घोड़े की रास पकड़े खड़े थे। राजा की आँखो में आँसुओं की धारा बह चली। उन्होने तलवार फेंक, पृथ्वीराज की पाँच परिक्रमा करके कहा—"हे कन्नौज के यज्ञ को बिगाड़नेवाले और मेरी

प्राण-प्रिय पुत्री को हरने वाले पृथ्वीराज ! दिल्ली राज्य, अपनी इज्जत और लाज तुझे देकर मैं कन्नौज जाता हूँ।"

राजा नीचा सिर किए, दूर तक पड़ी लाशों में होकर लौट रहे थे। सूरज छिप रहा था। पृथ्वीराज और उसके तेंतालीस बचे हुए शूरों ने कमर खोली और उसी जंगल में पड़ाव डाला।

: ५ :

कवि चन्द ने दिल्ली-राजदरबार में आकर पुकार लगाई—"शत्रुओं के दाँत खट्टे कर, महाराज जयचन्द का यज्ञ विध्वंस कर संभरीनाथ पृथ्वीराज पग-राजकुमारी संयोगिता का हरण कर आ रहे हैं।" नगर में हलचल मच गई। तेंतालीस घायल सामन्तों की और चवालीसवीं संयोगिता की डोली लिये पृथ्वीराज ने नगर में प्रवेश किया। वही अकेला शूर घोड़े पर था। नगर-नारियों ने अटारियों पर बैठकर चावल और खीलें बरसाईं, द्वारों पर कलश और बन्दनवार सजाए गए। राजद्वार पर विविध बाजे बजे। चारण और कवि विरदावली बखानते चले। राजा घोड़े से उतरे, तो सोने का कलश लिये, सोलह शृंगार किए, सात सौ सुन्दरियों ने मंगल-गान गाकर आरती की। राजदरबारियों और नगर-सेठों ने हीरा-मोती, जवाहर-मुहर राजा पर न्यौछावर किए, और जब राजा ने रंगमहल की ड्योढ़ियों पर कदम रक्खा, रानियों ने अपने केशों से उनके पैरों की धूल झाड़ी।

: ६ :

फिर वसन्त आया, पुराने पत्तों को झाड़ता और नयी कोंपलें खिलाता। राजा का दरबार भरा था। सब कुछ वसन्ती था—दरबार की बहुत-सी गद्दियाँ सूनी थीं, कुछ पर अबोध बालक अपने पिता की तलवार बाँधे बैठे थे। राजा ने एक साँस ली। उस साल नाच-रंग नहीं हुआ। असंख्य धन-रत्न राजा ने लुटाया।

उन दिनों की याद करके निगमबोध की छाती अब भी सुलगती रहती है।

३०

पूर्णाहुति

अत्यन्त दयालु परमेश्वर के नाम पर जिसके असंख्य बर्बरों के घोडो की टापों ने निरन्तर तीस वर्ष तक भारत को रौंद डाला था, जिसने सत्रह बार प्रबल आक्रमण करके पश्चिमोत्तर भारत को तलवार और अग्नि की भेंट किया, जिसने नगरकोट के मन्दिर विध्वंस कर सात सौ मन अशर्फी, सात सौ मन सोने-चाँदी के बर्तन, सात सौ चालीस मन सोना, दो हजार मन चाँदी और बीस मन हीरे-मोती तथा जवाहरात लूटे थे, जो थानेश्वर के युद्ध में दो लाख कैदियों को गुलाम बनाकर गजनी ले गया था, जिसने मथुरा की अप्रतिम छः ठोस सोने की विशाल मूर्तियाँ अपहरण की थी, और जिसके प्रताप से गजनी में हिन्दू-गुलाम की दर ढाई रुपया हो गई थी, जिसने सोमनाथ का अति प्राचीन वह विशाल मन्दिर, जो छप्पन खम्भों पर आधारित था, और जिसमें चालीस मन वजनी सोने की जंजीर मे भारी घण्टा लटका रहता था, जिसमें चुम्बक के सहारे पाँच गज ऊँची शिव-मूर्ति अधर खडी लक्षावधि दर्शकों को आश्चर्यचकित करती थी, विध्वंस किया, और वहाँ से स्वर्ण और जवाहरात के अनगिनत ऊँट भरकर ले गया, जिसने गुजरात को श्मशान के समान बना दिया था, जिसकी प्रचण्ड सेना के नामी-गरामी सिपाही अपने घोड़े की जीनों को सोने और जवाहरात से भरकर और लौंडी-गुलामों के झुण्ड को बागडोर से बाँधकर सदैव उद्ग्रीव होकर अपने घरों को लौटते रहे थे, जिसके साथ अरबी भाषा और साहित्य एवं दर्शन का प्रकाण्ड पण्डित अलबरूनी आता रहा था, वह प्रबल प्रतापी सुलतान महमूद गजनवी उन समस्त लूटे हुए हीरों, मोतियों, खजानों और सोने के ढेर को सम्मुख रखवाकर और उन्हें देख-देखकर फूट-फूटकर रोता हुआ इस असार संसार को छोड़ चला था, और उसके निर्बल वंशधर मध्य एशिया के अपने पड़ोसी खूँखार देशों पर अधिकार बनाये रखने के योग्य न थे। गोर के पहाड़ी सरदार जोरों पर थे। उन्होंने गजनी के सरदारों को मिलाकर गजनी के विपुल ऐश्वर्य की लूट के लोभी

उन्हीं खूनी सिपाहियों की सैन्य संग्रह कर, जो महमूद की रकाब के साथ रहकर भारत का सर्वस्व अपहरण कर चुके थे, गजनी को तहस-नहस कर दिया। वह आठ लाख नर-नारियों से परिपूर्ण और असंख्य रत्नों से ठसा-ठस पटा हुआ नगर जलाकर खाक-स्याह कर डाला गया था। नर-नारी घास-फूस की भाँति काट डाले गए थे, और एक लाख खूबसूरत स्त्री-पुरुष और बच्चे कराहते हुए भेड़-बकरियों की भाँति हाँके और वहाँ से ले जाए जाकर दुनिया के बाजारों में मिट्टी के मोल बेच दिए गए थे। बड़ी-बड़ी नामी इमारतें जमींदोज कर दी गई थीं। वहाँ की हजारों फूल-सी सुकुमारियों को दुखते हुए हृदय और आँसू-भरी आँखों से अपना सर्वनाश करने वाले क्रूर हत्यारों की सेवा करनी पड़ी थी। सुन्दर, वीर युवकों को जंजीरों से बँधकर और चाबुक की मार खाकर कठिन परिश्रम करना पड़ा था। इस प्रकार वह प्रतापी बादशाह का वैभवशाली नगर सात दिन तक धायँ-धायँ जला था।

: २ :

उस समय भारत में सम्राट् हर्षवर्धन की सत्ता का अन्त हो चुका था। उत्तरी भारत का साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया था। कुछ पुरानी और नवीन राजपूत-शक्तियों ने पश्चिम से चलकर उत्तर-पूर्वी तथा मध्य भारत में छोटी-छोटी रियासतें कायम कर ली थीं, और वे पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक के प्रदेश को अधिकृत कर चुकी थीं। परन्तु इन सबको संगठित करने वाली कोई शक्ति न थी। आये-दिन इनके परस्पर संग्राम होते थे। पुराने साम्राज्यों की राजधानियाँ खण्डहर हो चुकी थीं।

ऐसी दशा में भारत का नैतिक पतन होना स्वाभाविक ही था। बौद्धों ने ब्राह्मण धर्म और उच्च जाति के विशेषाधिकारों को कुचल डाला था। इसके बदले में ब्राह्मणों ने नवीन जाति के नवीन शासकों की सहायता से फिर पुराने ब्राह्मण धर्म को नये रूप में खड़ा किया था। वेद के 'रुद्र' देवता पुराण के 'शिव' बन गए थे। और अब हिन्दू और बौद्ध दोनों प्रतिमा-पूजन तथा कर्मकाण्ड के प्रपंच में फिर से फँस गए थे। कनिष्क के प्रयत्न से उत्तरी प्रान्तों में महायान सम्प्रदाय की नींव जम गई थी, जिसमें बोधिसत्वों की

पूजा तथा बौद्ध मन्दिरो का समस्त कर्मकाण्ड हिन्दू मन्दिरों के ढंग पर ढल गया था। प्रारम्भ मे जो बौद्ध-मत ने संस्कृत का स्थान छीनकर प्राकृत य पाली भाषा को दे दिया था, अब वह फिर सस्कृत को मिल गया था, और ब्राह्मणों की अब बन आयी थी।

वैष्णव, तान्त्रिक और शैव मतों ने प्रबल रूप से सगठित होकर बौद्ध-मत को बलपूर्वक भारत से निकाल बाहर कर दिया था। कुछ उच्च श्रेणी के लोग उपनिषद् और दर्शन शास्त्रों का मनन करते थे। पर सर्वसाधारण का धर्म-पथ अन्धकारमय, अरक्षित, अस्त-व्यस्त था। जिस वर्ण-भेद को नष्ट कर बौद्ध धर्म ने शूद्रों और स्त्रियों को मानवीय अधिकार प्रदान किए थे, वह फिर और मजबूती से अद्यभित्ति पर कायम हो गया था। अब वर्णों के स्थान पर असंख्य जातियाँ बन गई थीं। ब्राह्मणों के असाध्य अधिकार बढ गए थे। जनता को जाति-पाँति और ऊँच-नीच की दलदल ने गले तक फाँस लिया था। असंख्य भयानक देवी-देवता, भूत-प्रेत, राक्षस, जप-तप-यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, दान, मन्त्र-तन्त्र और जटिल कर्मकाण्ड के जालो मे अभागा धर्म फँसकर फाँसी पा गया था। दुर्गा की मूर्तियों पर मनुष्य की बलि दी जाती थी, और जहाँ-तहाँ नरमुण्डों की मालाएँ पहने कापालिक भयानक वेश में घूमा करते थे। मद्य-मांस शाक्तों और कापालिकों का खुला आहार था। भैरवी-चक्रों के खुले खेल यत्र-तत्र होते थे, मन्दिरो के असाध्य अधिकार थे, भारत की समस्त सम्पदा धीरे-धीरे मन्दिरों में एकत्र हो चली थी। इस प्रकार उस समय भारत सैकड़ों उत्तरदायित्व-शून्य छोटी-छोटी रियासतों, सैकड़ों मत-मतान्तरों और अनगिनत सदाचारहीन कुरीतियों और अन्धविश्वासों का घर था। राजनीतिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी, प्रजा की जान-माल सलामत न थी। सभी राजा परस्पर लडते रहते थे। युद्ध में व्यस्त रहना मानो उनका धर्म था। ब्राह्मण अपने अधिकारों की रक्षा में इतने व्याकुल थे कि यदि वे वैश्यों और शूद्रों को वेद-पाठ करते देखते, तो तलवार लेकर उन पर टूट पड़ते थे, और उन्हे कचहरी मे घसीट ले जाते थे, जहाँ उनकी जिह्वा काट ली जाती थी। ब्राह्मण सब प्रकार के राज-कर से मुक्त थे। हिन्दू-बालाएँ सती हो जाती थी। हिन्दू समुद्र-यात्रा नही करते थे, किसी देश को नहीं जाते थे, किसी

जाति पर श्रद्धा नहीं रखते थे। वे अपने को और अपनी जाति को सर्व-श्रेष्ठ समझते थे। इस समय भारत में चार प्रधान हिन्दू शक्तियाँ थी—एक दिल्ली और अजमेर के संयुक्त राज्य चौहानों की, दूसरी गहरवारो की कन्नौज में, तीसरी सोलंकियों की गुजरात में और चौथी सिसोदियो की चित्तौड़ में। ये चारों राजवंश यद्यपि परस्पर सम्बन्धी थे, पर एक-दूसरे के कट्टर शत्रु थे। इस दुर्भाग्य के बीच भारत की करोड़ों निरीह प्रजा सर्वथा ही अरक्षित थी, जिसे खाने के लिए क्रूर और भयंकर गीधो के झुण्ड पश्चिम के पहाड़ों में बैठे थे, और जब चाहे भारत को रौंदकर और रक्त की नदी बहाकर लौट जाते थे।

: ३ :

उसका असल नाम मुइजुद्दीन था। वह एक उच्च अभिलाषी दृढ़-प्रतिज्ञ युवक था। वह गजनी-विजेता अलाउद्दीन गोरी का छोटा भाई था। गजनी की ईंट-से-ईंट बजाकर, उसे जलाकर, राख बनाकर और एक-दम ऊजड़ करके तथा उसकी अतुल सम्पदा लूटकर अलाउद्दीन गोरी अधिक न जिया। उसका यह अल्पवयस्क वीर भाई, जो मुहम्मद गोरी के नाम से प्रसिद्ध हुआ, गजनी के खजाने की बदौलत पचास हजार उग्र तुर्कों को एकत्र कर, भारत के दुर्जय काफिरों को रौंदने को जहाद का झण्डा उठाकर खड़ा हुआ, तब संसार के अधिकांश प्रदेशों से, जो इस्लाम की तलवार के अधीन थे, धर्म के जोश और लूट के लालच से असंख्य बर्बरों का लश्कर उसके झण्डे के नीचे एकत्रित हो गया। भारत के रत्न और स्वर्ण एवं सुन्दरियाँ उनके बाप-दादों की परिचित थी, और उनके अप-हरण का सुयोग छोड़ना सम्भव न था।

उसने भारत की ओर बाग उठाई। उसने सिन्धु-नद पार कर, मुलतान पर धावा कर उस पर दखल किया, और फिर दक्षिण की ओर मुड़कर अच्छा मजबूत किला भी काबू मे कर लिया। इस बार वह यहीं से लौटा। दो वर्ष बाद वह फिर आया। इस बार वह प्रबल वेग से अन-हिलवाड़ पट्टन के धनी नगर को ध्वंस करने के लिए मरुभूमि पार कर गुजरात पर जा धमका। वहाँ के बालक राजा को हाथी पर रखकर, वहाँ के राजपूतों ने प्रबल गजवाहिनी सेना ले इस योद्धा को इस बार भगा

दिया। एक वर्ष बाद वह फिर आया। इस बार उसने पेशावर को छीनकर एक वर्ष वहाँ मुकाम किया, और समस्त पहाड़ी कट्टर गौमुस्लिम जातियों को मिलाकर उसने सिन्ध के देबलगढ़ को विजय किया, और सिन्ध को लूट-पाटकर भस्म कर दिया तथा हजारों ऊँट लूट के माल से भरकर गजनी लौट गया। तीन वर्ष बाद वह फिर आया, और लाहौर को घेर लिया। इस समय लाहौर महमूद गजनवी के वंशधर के हाथ में था। उसने लाहौर को फतेह किया, और स्यालकोट का मजबूत किला भी छीन लिया। महमूद का अन्तिम वंशधर सुलतान खुसरो मलिक कैद करके फिरोज-कोह भेज दिया गया, और वहाँ वह बेदर्दी से सपरिवार मार डाला गया। इस तरह महमूद का घराना, जिसने मध्य एशिया को घोड़ों की टापों से रौद डाला था, दुनिया से उखाड़ फेंका गया।

वह फिर गजनी लौट गया। इस बार उसने जहाद के झण्डे के नीचे आने को समस्त मुस्लिम जगत् के मुल्लाओं को आमन्त्रित किया। असंख्य बर्बर सैन्य देखते-ही-देखते आ जुटी। इस बार वह एक लाख भयङ्कर सवारों को साथ ले साहसपूर्वक लाहौर को अतिक्रमण कर भटिंडा तक बढ़ आया, जहाँ प्रतापी चौहान-राज पृथ्वीराज का सामन्त दाहिमा चन्ड-पुण्डीर दुर्गाध्यक्ष था। वह तीन मास सुलतान से मोर्चा लेता रहा। अन्त में पाँच सौ योद्धाओं के साथ घेरे को तोड़कर महाराज पृथ्वीराज की सेना में आ मिला, जो थानेश्वर की ओर सुलतान से लोहा लेने आ रहे थे। यहाँ तीस हजार चौहानों को ले प्रथम बार पृथ्वीराज ने सुलतान का सामना किया। कठिन मार में सुलतान घायल हुआ। उसे बचाने को तुर्क-सिपाहियों ने अपने शरीरों के ढेर लगा दिए। वे उस घायल और बेहोश नामी युवक सुलतान को मौत के मैदान से चालीस मील की कड़ी मंजिल तक ले भागे, पर उसे पृथ्वीराज का बन्दी होना ही पड़ा, जिसे पीछे चौहान-राज ने घमण्ड और उदारता एवं राजनीतिक असावधानी के कारण साधारण दण्ड लेकर छोड़ दिया। सुलतान ने फिर तो दिल्ली-पति पर लोक-विख्यात छः आक्रमण किए। वह छहों बार बन्दी हुआ, और नतमस्तक हो दिल्ली-पति से क्षमा-याचना कर गजनी लौट गया।

: ४ :

राज्य के स्तम्भ-स्वरूप चौसठ सामन्तों को कटाकर दिल्लीपति वीर पृथ्वीराज पंगराज-नन्दिनी संयोगिता को ब्याह लाए थे। इससे पृथ्वीराज की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। वह सब कुछ भूलकर संयोगिता मे रम गए थे। वह चौदह वर्ष की सुकुमार बालिका, जिसने उस पैंतीस वर्ष के प्रबल योद्धा के लिए पिता की दुर्धर्ष भर्त्सना सही, कैद भुगती और अन्त में साहस की चरम सीमा का उल्लंघन कर, वीर पति से स्वयंवर कर, उसके साथ घोड़े की पीठ पर आरूढ हो, कटार को मजबूत मुट्ठी से पकड़े, पिता की अजेय चतुरंगिनी को चीरती हुई, वीरों की लोथें रौंद-कर, रक्त की नदी को पार कर जिसने मंजिलें तय की, वह अलभ्य मूल्य-वती पंगबाला पृथ्वीराज के प्राणों का हार थी। उसे आये तीन मास हो गए थे। इन तीन मास में किसी ने पृथ्वीराज को नहीं देखा था। दिल्ली मे उदासी छा रही थी। वीर सामन्त हाहुलीराय हम्मीर राजा से रूठकर घर बैठ रहा था। महलों के दरवाजों पर हाथी, घोड़े, सिपाही और प्यादो के पहरे न थे। मर्दाने लिबास में औरतें लाठी लिये हुए पहरे पर थी। वीर योद्धा सरदार, जो राजा के संकेत पर जान देते थे, बिलकुल बेदिल हो रहे थे। उनमें कलह का राज्य था। कोई अपना-पराया पूछने वाला न था। सब मनमानी करते थे। रियासत-भर में कुप्रबन्ध फैल गया था। कुटिल धर्मायन (?) निरंतर राज्य के छिद्रों को सुलतान के पास भेज रहा था। भीतरी भेदों को शाह तक पहुँचाने वाले और भी बहुत-से गुप्तचर थे, जो शाह से मोटी तनख्वाह पाकर स्वामी से विश्वासघात कर रहे थे। राज्य-भर में छद्मवेश में शाह के दूत फैल रहे थे। सब कोई अपने-अपने स्वार्थ-साधन में तत्पर थे। चामुण्डराय के पैरों में बेड़ियाँ पड़ी थी। मन्त्री कैमास मार डाला गया था। जिन वीरों के बल पर दिल्ली का छत्र टिका था, वे कन्नौज में कट मरे थे, जो बचकर आ गये थे, वे अपनी-अपनी खिचड़ी अलग पका रहे थे। उस विजयिनी चौहान-चमू का अब कोई धीरधनी न था। इस समय दिल्ली में कोई कौटिल्य-सा प्रबल राजनीतिज्ञ होता, या पृथ्वीराज ही सावधान और तत्पर होकर समस्त राजों से सन्धि कर सिन्धुनदी तक बढ़ जाते, और प्रतापी समुद्रगुप्त की भाँति भारत की

सीमा को सुरक्षित कर देते, तो आज भारत को एक हज़ार वर्ष तक खून के आँसू न बहाने पड़ते।

: ५ :

पिछले आक्रमण के बाद मुहम्मद गोरी छः मास रोग-शय्या पर फिरोज-कोह में पड़ा रहा। आरोग्य लाभ कर वह गजनी आया और जोर-शोर से सैन्य संग्रह करने लगा। पुराने सरदार कैद से छोड़ दिए गए। चारों ओर से मुसलमान फकीर दुआ देने आ पहुँचे। देखते-ही-देखते जहाद के जोश में भरे हुए तुर्क, अरब, अफगान, मुगल आदि बर्बरों का भयकर दल एकत्र हो गया। इनमें से एक लाख बीस हज़ार चुने हुए सैनिक लेकर उसने उनसे कुरान की शपथें लीं, और खूब चाक-चौबन्द होकर सिन्धुनद पार कर पहाड़ों के नीचे सतलज पार करता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ा।

दिल्ली में यह समाचार आग की भाँति फैल गया। नागरिक भय-भीत हो-होकर दिल्ली छोड़-छोड़कर भागने लगे। किसी की जान-माल की सलामती नजर न आती थी। इस बार किसी को रक्षा की आशा न थी। बाजार के गण्य-मान्य महाजन विकल हो गए। जो श्रीमन्त कभी घर के बाहर पैर न धरते थे, वे एकत्र हो नंगे पैर, नंगे सिर श्रीमन्त साह नगरसेठ के पास पहुँचे, और कहा—"राजा तो रनिवासों में रमा बैठा है, अब हमारी रक्षा कौन करेगा?"

श्रीमन्त साह ने कहा—"मुझे भी यही चिन्ता है। राजा का मुँह तो उड़ता पंछी भी नहीं देख सकता, आठों पहर द्वार पर लठैत दासियों का पहरा रहता है, राजकुमार रेनसी भी छः मास से राजा का मुख देखने को तरस रहे हैं, प्रजा का विनाश सिर पर है, केवल गुरुराम पुरोहित राजा को पूजन कराने नित्य जाते हैं, उन्हें हमारी भी पीर है, उनके पास चलना चाहिए।"

गुरुराम पुरोहित के निकट पहुँचकर साहूकारों ने कहा—"आपने भी तो सुना ही होगा, गजनी का शाह दिल्ली पर चढ़ा चला आ रहा है, जिसके आतंक से पंजाब में भूकंप-सा आ रहा है, प्रजा अनाज की भाँति पिस रही है, पिण्डारों ने लाहौर लूट लिया। चामुण्डराय के पैरों में बेड़ी पड़ी हैं, जिससे दाहिमा वीर बेदिल हुए बैठे हैं। हम्मीर राव अपने घर में बैठ

रहे लाहाना आजानुबाहु अजमेर मे है बाकी सब नये नये लडके हैं। यह सब संयोगिता के चरणों का प्रताप है, इसलिए हम लोग आये हैं कि आपकी आज्ञा हो, तो घर-द्वार, कार-बार छोड़ जंगल को चले जायें, या आप जैसा कहें।"

पुरोहित ने महाजनों का रोना सुनकर कहा—"सिवा कवि चन्द के अन्य से कुछ होना नहीं है, वह सभाचतुर, राजा के मुँहलगे हैं, वह औंधा-सीधा सब कुछ कर सकते हैं। सब बीज उन्हीं के बोए भी हैं। चलो, वहीं चलें।"

गुरुराम अपने सुखपाल पर सवार हुए। श्रीमन्त साह पीनस पर बैठे, और सब बनिए-महाजन अपने-अपने हाथी-घोड़े, पालकी-चण्डोल आदि मे बैठ कवि चन्द के घर पहुँचे, और उन्हें लेकर राजद्वार की ओर चले। इनके पीछे बहुत से लोगों की भीड़ लग चली। राजद्वार पर देखा, न वहाँ शूरवीर सिपाहियों के पहरे हैं, न मतवाले हाथी ही झूमते हैं, पुरुष-वेशधारी स्त्रियाँ हाथ में लाठी लिये हाजिर हैं। इनके पहुँचते ही वे मार-मार करती हुई दौड़ पड़ीं। बनिए-महाजन जान लेकर भागे, पर गुरुराम और कवि बढ़ते ही गए। इनके सिर पर सैकड़ों ही लाठियाँ छा गई। जब प्रथम पौर तक पहुँचे, तो राजमहिषी इच्छनी ने दासियों को रोककर कवि चन्द को भीतर बुला भेजा, और आने का कारण पूछा। कवि चन्द ने एक कागज देकर कहा—"इस पुर्जे को राजा तक पहुँचा दीजिए।" उसमें लिखा था—

> "कग्गर अप्पह राज कर, मुष जंपह इह बत्त;
> गौरी रत्तौ तुअ धरनि, तू गोरी-रस-रत्त।"

दासी ने डरते-डरते पुर्जा राजा को दिया। राजा ने पुर्जा पढ़ा। वह क्रोध से थरथर काँपने लगे। उन्होंने पुर्जा फाड़कर फेंक दिया, और कहा—"अब भाट और ब्राह्मण राज्य की रक्षा करेंगे?"

दोनों विद्वान् निराश होकर घर लौट आये।

: ६ :

चौहानराज के परमहितैषी और अप्रतिम विद्वान् एवं वीरवर राजर्षि चित्तौड़-अधिपति समरसिंह ने दिल्ली के समाचार सुने, और होनहार को

सौंप लिया। उन्होंने राजकुमार रत्नसिंह को चित्तौड़ की गद्दी सौंपी, और दिल्ली प्रस्थान की तैयारी करने लगे। उन्होंने आबू, बूँदी, जालौर, गौरगढ़, धार, उज्जैन, रणथम्भौर आदि के राजों के नाम परवाने भेजे और दरबार कर, कुँवर का राज्याभिषेक कर राजमहिषी पृथा सहित दिल्ली को चल दिये। पहले दिन दस कोस पर पड़ाव डाला, वहाँ तक साठ हजार सवार और सरदार रावजी को पहुँचाने आये। यहाँ से उन्होंने एक हजार चुने हुए सवार, पचास हाथी और कुछ खास सरदार साथ ले शेष सभी को वापस भेज दिया। ये राजपूत और हाथी साधारण न थे। ये वे योद्धा थे, जिन्होंने पीछे हटना जाना ही न था। वे हाथी बात-की-बात में किलों को ढा सकते थे। उन पर जरतारी झूलें पड़ी थीं, और जड़ाऊ हौदे और अंबारी कसी थीं जिनपर रंग-बिरंगी ध्वजाएँ फहरा रही थीं। घोड़े क्या थे, आग के अंगारे थे। नवीन वयस्का वेश्या के समान थिरकते हुए पत्थर में भी टाप से गड्ढा कर सकते थे। वे सिर से पैर तक रत्न-जटित, सुन्दर, सुनहरी पाखरों से सजे थे। उनकी पीठ पर दीर्घकाय राजपूत उमड़ते समुद्र की लहरों की भाँति दिखाई पड़ते थे।

रावलजी कूच-दर-कूच करते दिल्ली आ पहुँचे, और उन्होंने निगम-बोध पर डेरा डाल दिया। उनकी अवाई सुनकर संयोगिता का प्रधान दस कोस आगे बढ़कर पेशवाई को गया, और पाँच कोस से सब सामन्तों ने पेशवाई की। पृथाकुमारी पट्ट महारानी इच्छनी के रंगमहल में रहने लगी। रावलजी निगमबोध पर ठहरे थे। उनके डेरे पड़ते ही भारवरदाई और चाँदी की जिस भेजी गयी। इसके बाद रनिवास की दासियाँ कलेऊ लेकर गयी। पच्चीस झाब पूरी, साठ झाब मिठाई, बत्तीस झाब पापड़, अचार, पान, मसाला तथा भाँति-भाँति का बना हुआ मांस और फल आदि भेजे गये। वे खूब सजी-धजी और नवयौवना सुन्दरियाँ थीं। दूर ही से उन्होंने डोली से उतरकर सब सामग्री अपने हाथों में ले ली और उस सिंहासन पर बैठे समरसिंह के सम्मुख जा, सामग्री आगे रख, नीची नजर करके खड़ी हो गयीं। उनकी मुखिया ने हाथ बाँधकर कहा—"श्रीमानों की अवाई सुनकर संयोगिता को बड़ी प्रसन्नता हुई है। उन्होंने हम लोगों को यथोचित भेंट-भलाई निवेदन करने भेजा है।"

रावलजी ने संयोगिता को बहुत-बहुत आशीर्वाद दिए और दासियों को बैठने की आज्ञा दी।

ये सभी दासियाँ रावलजी की सुपरिचिता थीं। रावलजी ने उनसे हँसकर कहा—'भला, यह शिष्टाचार तो हुआ, अब असल समाचार तो कहो, क्या हाल है ?' दासियों ने उदास होकर कहा—'महाराज, क्या कहें, चौहानपति तो संयोगिता के चेरे हो रहे हैं। रात-दिन वहीं रहते हैं, राज-काज की कौन कहे, उन्हें अपने-बेगाने की भी खबर नहीं है। हादुली हम्मीर रूठे बैठे हैं, धीर पुंडीर को सौदागरों ने मार डाला, मोहाराय गंगा-तीर पर समाप्त हुए, चामुण्डराय के बेड़ी डाल दी गयी है। कैमास को राजा ने खुद मार डाला, रहे-सहे शूर कन्नौज में कट मरे। जिन्हें दिल्ली की हद में कदम रखना दुस्तर था, जो राज्य के ताबेदार थे, वे स्वतन्त्र हो गये। जो अब तक दण्ड भरते थे, अब दण्ड लेने का इरादा रखते हैं।'

यह सुनकर रावलजी माथे पर हाथ धरकर बैठ गये। कुछ देर बाद उन्होंने दासियों को पान दिए, और संयोगिता के लिए कपूर देकर विदा किया। इसका अर्थ यह चेतावनी थी कि कपूर की भाँति ही वह यौवन भी अस्थिर है, जिसमें तूने राजा को फाँस रक्खा है।

दूसरे दिन जैतराव की पहुनाई हुई। उसने आटा, मैदा, बेसन, घी, चीनी, तरकारी, दही, दूध, आम, पापड़, मसाला आदि पाँच सौ जिंस उनके डेरों में पहुँचाकर स्वयं जाकर सब सत्कार किया। उसके बाद चामुण्डराय दाहिमा ने, फिर बलभद्र राय कछवाहा और रामदेवराय खीची ने, फिर जामराय यादव, सिंह प्रमार आदि सामन्तों ने बारी-बारी से रावलजी का सत्कार किया। सबके बाद राजकुमार रेणु की तरफ से गोट रची गयी, जिसमें सब सरदार भी सम्मिलित हुए। अन्त में दरबार हुआ। कुछ देर गुरुराम पुरोहित ने अपने पोथी-पुराण की चर्चा की। फिर कवि चंद ने अपने कवित्त पढ़कर रावलजी की खूब प्रशंसा की। फिर भाँति-भाँति की बातचीत के बाद दरबार बरखास्त हुआ और सब लोग अपने-अपने घर रवाना हुए। पीछे से दो हाथी, एक सजा हुआ घोड़ा, एक तलवार और जरतारी सिरोपाव रावलजी ने चन्द कवि के पास तथा

एक हथिनी एक मोतियों की माला और अँगूठी अटाले (रसोई) के अध्यक्ष चनवीर पड़िहार के पास भेजी। फिर सूर्य-संक्राति के अवसर पर एक लाख नकद जेवर और कासको ग्राम का पट्टा गुरुराम पुरोहित को दिया। इसके सिवा वह प्रतिदिन डेढ सौ मुहर दिल्ली के चारणों और ब्राह्मणों को दान देते रहे। रोज सरदारों का जमाव जुड़ता। सदावर्त जारी रहता। इस प्रकार दिन-पर-दिन बीत चले। पृथ्वीराज को अभी खबर भी न थी।

राजसभा मण्डप, जो वर्षों से सूना पड़ा था, उसके भाग्य खुल गये। जहाँ-तहाँ सब साज दुरुस्त होने लगे। सैंकड़ों नकीब और हरकारे दरबार की सूचना देने को दौड़े-दौड़े फिरने लगे। जहाँ-तहाँ हाथी-घोड़े, फौज और शूर-सामन्त सज-धजकर सायंकाल के समय राजद्वार पर हाजिर हो गये। दिल्ली में आज फिर पुरानी रौनक थी। पृथ्वीराज मूँछें चढ़ाये गद्दी पर आ बैठे। शूर-सामन्त यथास्थान आ जमे। मधुशाह प्रधान ने सबसे प्रथम रावलजी के आने की सूचना दी, और कहा—"उन्हें आये बीस दिन हो चुके हैं।" यह सुनते ही राजा शोकसागर में डूब गये। बोले—"हाय! मैं बड़ा अभागा हूँ। हमारे पूज्य रावलजी बीस दिन से आये हैं, और मुझे खबर भी नहीं, कैसी लज्जा की बात है! खैर, वह योगिराज हैं, मुझे क्षमा करेंगे। अब ऐसा उपाय करना चाहिए कि वह चित्तौड़ चले जायँ, क्योंकि समय बड़ा टेढा आया है।"

इसके बाद राजा दरबार से उठकर दसों रानियों के पास गये और मिले। दूसरे दिन प्रातः कृत्य करके राजा ने कुसुमी पाग सिर पर बाँधी। सुगन्ध सेवन की और दो लाख मूल्य के कुण्डल की जोड़ी कानों में पहन, बागा-पटका आदि से लैस हो सामन्तों सहित रावलजी की भेंट को चले।

नये-पुराने सब सामन्त घोड़ों पर सवार राजा को कुण्डलाकार घेरे चले जाते थे। सबके पीछे सेना थी। उधर रावलजी ने राजा की अवाई सुनी तो घोड़े पर सवार हो आगे बढ़ आये। आधोआध रास्ते में दोनों सम्बन्धी परस्पर मिले-भेंटे। दोनों ने परस्पर भुज भरकर भेंट की। इसके बाद सेना सहित रावलजी और राजा निगमबोध पर आये, और यथास्थान आसन पर बैठ लौकिक शिष्टाचार तथा कुशल-प्रश्न पूछे। फिर

दिल खोलकर अपनी-अपनी बीती कही-सुनी। जब पृथ्वीराज कन्नौज की बीती सुना चुके, तब रावलजी ने कहा—'चलो, किया सो अच्छा किया, पर स्मरण रक्खो, स्त्रियों के भोग-विलास से कोई सन्तुष्ट नहीं हुआ। सोमवशी शशिवंध के महलों में दस हजार स्त्रियाँ और ग्यारह हजार पुत्र थे, परन्तु अन्त समय तक भी वह उनसे सन्तुष्ट नहीं हुआ।'

इसके बाद नये-पुराने सामन्तों से भेंट होने लगी। सब एक-एक करके रावलजी से जुहार करने लगे। कवि चंद उनका नाम, गुण और विरद बखान करने लगे। फिर इधर-उधर की हँसी-दिल्लगी की बातें होने लगीं। इसके बाद दोनों सेना सहित महलों में आये। संयोगिता का खास कमरा सजाया गया और उसमें कन्नौज के दहेज का सब सामान सजाया गया। दोनों वीर मित्र उच्चासन पर बैठे। इधर-उधर सामन्तगण बैठे। पहले इत्र-पान और टीका हुआ, पीछे भोजन का बुलावा आया। भोजन कर सब सरदारों सहित रावलजी डेरे को पधारे। दूसरे दिन पृथ्वीराज ने रावलजी की विदाई का प्रबन्ध किया। कन्नौज से आये हुए हाथी-घोड़े, रत्न, नकद वस्तु बहुत-से थालों में लगा, विदाई का सामान लगाया, और सब सामन्तों को साथ ले पृथ्वीराज रावलजी के डेरे पर पहुँचे। साधारण रीति-रस्म हो चुकने पर कवि चंद ने कहा—"महाराज, हमारे ऊपर समय पड़ा है, इसलिए हम सादर आपको बिदा करते हैं। क्योंकि उधर भी आपके बिना राज-काज में हानि हो रही है। कृपा कर चित्तौड़ पधारिए और सदा हम पर कृपा-दृष्टि रखिए।"

यह सुन रावलजी ने क्रोध में भरकर कहा—"वाह! क्या कहने है! आपने हमारी खूब मर्यादा रक्खी। ठीक है, ऐसे सुअवसर पर सुपात्र दान-ग्राही सुगमता से तुम्हें कहाँ मिलेंगे? अच्छा भाई, हमें दान देकर, तुम शूरवीर बनकर युद्ध करो, और हम कायरों की भाँति अपने घर भाग जायें। सुनो, धर्म जाय, तो धन किस काम का? अरे, हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध प्राण और शरीर का है। क्या हम ऐसे हैं कि इस समय घर पर बैठेंगे?" यह सुनकर कवि चंद ने कहा—"मरजी हुई, सो ठीक है, आपका बल-प्रताप किससे छिपा है। पर हमारी प्रार्थना केवल यही है कि इधर बहुत-से मुकुटबंध राजा हैं, और सामन्त भी हैं। इधर की चिन्ता न

कीजिए।" तब रावलजी ने क्रोध में भरकर कहा—"तुम लोगोंने जो करतूत कर रक्खी है, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा, तब मालूम होगा। आज हमें हठ करके बिदा करते हो, जिससे लोग कहें कि मौका देख खिसक गये। इस दरबार में अब ऐसे ही लोग रह गये हैं ?"

यह सुन पृथ्वीराज ने रावलजी के पैर पकड़ लिये, और कहा—"अब जैसी आज्ञा होगी, वही करूँगा।" रावलजी ने कहा—"तुमने कैमास को क्यों मारा ? और बादशाह को पकड़-पकड़कर क्यों छोड़ दिया ? सब सामान्त क्यों कटा डाले ? चामुण्डराय के पैरों में बेड़ियाँ क्यों डलवा दी ?"

पृथ्वीराज ने कहा—"उसने ऐरावत के समान हाथी को मार डाला।" रावलजी ने कहा—"हाथी लाख प्यारा था, पर चामुण्डराय से अधिक नहीं। वह तुम्हारे राज्य की ढाल है, उसके समान रणबंका वीर और कौन है ?"

यह सुन पृथ्वीराज ने गुरुराम पुरोहित को एक कुसुमानी पाग और अपनी खास तलवार दे चामुण्डराय के पास भेजने की इच्छा प्रकट की, पर रावलजी ने कहा—"नहीं, इस समय आप स्वयं उनके घर जाइए।" तब सब लोग चामुण्डराय के घर चले। पृथ्वीराज संकोच-वश चामुण्डराय के सम्मुख न जा सके। उन्होंने कवि चंद और सब सामन्तों को भेजकर कहा—"जाओ, उनकी बेड़ी उतरवा दो।"

वह देव के समान वीर चुपचाप बैठे थे। उन्होंने आँख उठाकर उनकी ओर देखा। कवि चंद ने आशीर्वाद देकर कहा—"महाराज की आज्ञा है कि आप बेड़ी उतार डालिए।" चामुण्डराय ने लाल अंगारे के समान आँखो से देखकर कहा—"राजा का मुझसे अब क्या प्रयोजन है ?"

"आप राज्य की ढाल हैं, राजा पर टेढ़ा अवसर आया है, क्रोध को त्याग बेड़ी उतारिए। महाराज सामन्तो सहित द्वार पर खड़े हैं।"

"इसकी क्या आवश्यकता थी ? सब सामन्त-शूरमा तो हैं, और तुम चतुर सलाहकार हो, फिर एक चामुण्ड न हुआ, तो न सही।"

"रावजी, इस बार धन-मान का बँटवारा नहीं है, शरीर का मास बाँटा जाने वाला है, मान छोड़िए और राजा की दी हुई पाग और तलवार बाँधिए। कुसुमती पाग या तो राजसम्मान के अवसर पर या विवाह के

अवसर पर बाँधी जाती है। आप महावीर पुरुष हैं, आपका नाम सुनकर सामन्तों के छक्के छूट जाते हैं। कृपा कर वीर-वेश धारण कीजिए, और अपने पूज्य रावलजी से भुज भरकर भेंट कीजिए।"

चामुण्डराय कुछ बोल न पाये थे कि पृथ्वीराज ने वहाँ पहुँच अपनी कमर से तलवार खोलकर चामुण्डराय को दी। यह देख वह खड़े हो गये, और बोले—"जब स्वामी की कृपा है, तब क्या कहूँ! यह शरीर तो स्वामी ही के लिए है।"

इसके बाद उन्होंने बेड़ियाँ उतार डाली, राजा को प्रणाम किया। राजा ने उन्हें जागीर और सिरोपाव दे, समझा-बुझाकर सन्तुष्ट किया। इसके बाद उन्होंने डेढ़ हजार घोड़े, सोलह हाथी, दस मोतियों की माला और बहुत-से रेशमी वस्त्र चामुण्डराय को दिये। कवि चंद ने बिरद पढ़ी और चामुण्ड ने उन्हें बहुत कुछ दान दिया। इसके बाद वह वीर-वेश धारण कर, राजा के घोड़े पर सवार हो रावलजी से मिलने निगमबोध की ओर चले।

: ७ :

युद्ध-मन्त्रणा की सभा बैठी। पृथ्वीराज ने दूत का संदेश सुनाया कि शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी लाहौर से दस कोस पर है। एक सप्ताह में वह पानीपत में आ धमकेगा। जो करना-धरना है, विचार लो। चामुण्डराय ने कहा—"विचारना क्या है, जब तक हाथ मे तलवार है, हम लड़ेंगे।"

जामराय—"चामुण्डराय, तुम्हारे पैर में लोहा लगा तो लगा, बुद्धि मे भी लग गया। अरे, शाह की सेना आँधी-तूफान है, और अपनी तरफ सौ में छः-सात सामन्त बचे हैं।"

चामुण्डराय—"अच्छा भाई, हमारी बुद्धि में लोहा लगा, अब फिर बेड़ियाँ डलवा दो। जब शत्रु सिर पर आ जाय, तब आधी रात को उठकर घर भागना।"

बलभद्रराय—"वाह, जहाँ कूरम-वंशी हैं, वहाँ भागना कैसा? शत्रु सबल है, तो क्या हुआ? हम भी दिल्ली की ढाल है।"

रामराय बड़गूजर—"भाई, मौका देखकर काम करो, मेरी राय मे शत्रु पर रात को छापा मारा जाय।"

वीरभद्रराय—"अरे गँवार गूजर, अपनी राय अपने घर रख। हम तो बीच मैदान लोहा लेंगे।"

रामराय—"आपके पराक्रम में सन्देह किसे है, परन्तु मौका भी तो देखिए। संयोगिता के स्वागत में चौसठ सामन्त काम आ चुके है।"

चामुण्डराय—"अरे, तुम सब डरपोक हो। कन्नौज से चोर की भाँति भाग आये। ऐसे ही राजा, जो लुगाई के पीछे भाग खड़े हुए! पंग की चमक में फँस अब सबको छल की सूझी।" इस पर सबने हँसकर कहा—"चामुण्डराय, तुम बड़े मुँहफट हो गये। स्वामी का भी लिहाज नहीं।"

अन्त में रावलजी ने यह निश्चय किया कि युद्ध किया जाय। राजकुमार रेनसी को दिल्ली-गढ़ पर छोड़ा जाय, और रावलजी के भतीजे वीरसिंहराय अपने सात सौ राजपूतों सहित उनकी रक्षा करें। उनके सब सामन्त भी वहीं रहें। उन्हें एक-एक हाथी और एक-एक घोड़ा दिया गया। दरबार बरखास्त हुआ।

: ८ :

रात-भर सेना की तैयारियों की धूम रही। राजा संयोगिता के महलो मे सो रहे थे, पर आज नींद कहाँ? उषा का उदय हुआ और जंगी बाजो की ध्वनि से दिशाएँ गड़बड़ा उठीं। घोड़ों की हिनहिनाहट से आकाश गूँज उठा। राजा ने शय्या त्यागी, नित्य कर्म किये और युद्ध-सज्जा से सजने लगे। हीरे-मोती, रत्न और स्वर्ण ब्राह्मणों को दान दिये जाने लगे। राजा ने दुहरी तलवार बाँधी, और अपना प्रसिद्ध धनुष और तरकस कसा। जब वह युद्ध-वेश में सजकर रानी संयोगिता के पास मिलने गये, तो उन्हें देखकर संयोगिता सक्ते की हालत में हो गयी। दोनों के मुँह से बोल न निकला। बाहर बादल की भाँति निशाने बज रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे। हाथी चीत्कार कर रहे थे। सिपाही चिल्ला रहे थे। सुनकर दिल दहलता था। राजा अधिक मोह न कर, एक बूँद आँसू और एक लम्बी साँस छोड़ जब चले, तो वह कटे वृक्ष की भाँति धरती पर गिर गयी। दासियों ने उपचार किये, पर उसकी मूर्च्छा न खुली। राजा के पास अपनी उस परम प्यारी कोमलांगी पंगपुत्री के लिए समय न था, जिसके लिए वह खवास बनकर कन्नौजराज के दरबार में गये थे और प्राण तथा प्रतिष्ठा

की बाजी लगा दी थी।

: ९ :

राजा ने इस समय सेना की हाजिरी ली। उसमें तिरासी हजार सैनिक थे, जिनमें चुने हुए वीर पच्चीस हजार थे। बीस हजार योद्धा दुहरी तलवारें बाँधते थे। बारह हजार जागीरदार सरदारों के सेवक और पाँच सौ राजपूत सरदार थे। दस सेनापति थे। इस सेना ने तत्काल कूच कर दिया।

शाह की सेना में नौ लाख बर्बर योद्धा थे। इनमें चार लाख उसने पीछे छोड़े थे। चार लाख के दो टुकड़े कर पृथक्-पृथक् छावनी डाली गयी थीं। कमालखाँ सरदार को एक लाख सैन्य तथा पत्र देकर राजा के पास भेजा गया। वह सतलज पार करके निर्भय पृथ्वीराज के पास चला आया। पत्र बहाना था, मुख्य काम राजा की सेना का भेद लेना था। पत्र में आधा पंजाब और शाही दरबार में कुँवर रैनसी की हाजिरी माँगी गयी थी, जिसे राजा ने अस्वीकार कर लौटा दिया, और उसने पाँच दिन में ही शाह को सब भेद बता दिये। दूसरे ही सप्ताह में शत्रु की प्रबल सेना सम्मुख थी।

: १० :

श्रावण की अमावस्या और शनिवार का दिन था। रातभर व्यूह-रचना और युद्ध-मन्त्रणा होती रही। पानी गिर रहा था, और भयानक अंधेरी थी। आँधी गरज-गरजकर चल रही थी। समस्त सैन्य चार भागों में बाँट दी गयी। तैंतीस हजार सैन्य ले रावलजी बायें बाजू पर चले गये। यह देखकर राजा घोड़ा दौड़ाकर उनके पास आये, और विनीत भाव से कहा—"आप कृपा कर पीठ की सेना में जाइए, और दोनों सेना की गतिविधि देखते रहिए।" यह सुन रावलजी ने हँसकर कहा—"यह बड़ा भारी दूभर भार हमें दिया।" फिर स्नेह से राजा की ओर देखकर कहा—"यह समय स्नेह और आदर का नहीं, अब हम सम्बन्धी नहीं, सिपाही हैं।" राजा ने तब जामराय यादव, बलभद्रराम कूरम, पावसपुण्डीर और मदनसिंह, इन चार प्रबल सामन्तों को उनकी सहायता के लिए भेज दिया। इक्कीस हजार सेना का सिरमौर जैतराव प्रमार दाहिनी बाजू पर आ डटा। आरज राज राठौर, अचलेश खीची, धीरराय प्रमार, चन्द्रसेन बड़गूजर,

विजयराज बघेला आदि नौ सरदार उसकी सहायता को नियुक्त हुए। उन्नीस हजार सेना ले वीर चामुण्डराय छायल मे जमा। भारतराय और तियाराय परिहार, जंगलीराव दाहिमा, ठंठरराय परिहार आदि पाँच सरदार उसकी सहायता करते थे। शेष दस हजार सेना ले पृथ्वीराज सेना की पीठ पर सुरक्षित थे। गुरुराम पुरोहित, चाँचराय गहलौत, पंचादनराय आदि दस सरदार उनके साथ थे। इस प्रकार व्यूह रचकर, समरसिंह को साथ लेकर एक बार राजा ने घूम-फिरकर समस्त सेना का निरीक्षण किया, फिर मध्य में आये, तब पृथ्वीराज ने एक बहुमूल्य मोतियों की माला रावलजी के गले में पहनाई, और सब अपने-अपने स्थान पर आ डटे।

शाह की सेना में एक लाख सवार, नौ लाख पैदल और दस हजार हाथी थे। दाहनी बाजू पर सरदार तातारखाँ दो लाख सिपाही और दो हजार हाथी तथा पाँच सौ सरदारों सहित था। बायी बाजू पर सरदार खुरामानखाँ दो लाख सिपाही, दो हजार हाथी और तीन सौ सरदारो सहित था। तीन हजार हाथी और दो लाख सेना ले एक वीर सरदार अनेक सरदारों सहित हरावल में था। शेष नायकों सहित शाह सेना के पीछे के भाग में सुरक्षित था। दो घड़ी दिन चढ़े मुठभेड़ हुई। देखते-देखते धूल, गर्द और लोहे से मीलों का मैदान भर गया। चीत्कार, हाहाकार, मार-काट की भयानक पुकार पड़ी। कठिन मार होने लगी। गाजी होने की धुन में बर्बर योद्धा दाँत पीस-पीसकर उमड़े आते थे, और इधर राजपूत जान पर खेल रहे थे। दोपहर के युद्ध में वीरवर चामुण्डराय घायल हुआ। देवराय बग्गरी, सालुखाराय भाठी, राना माल्लहनसिंह परिहार आदि छः सौ कूरम्भ और टाँक चन्देलों सहित जैतराव प्रमार भी घायल हुआ। शत्रु के पच्चीस हजार सरदार और सिपाही काट डाले गये।

सन्ध्या-समय दोनों सैन्य फिरीं। रावलजी के सभापतित्व में समर-सभा जुड़ी और आगामी दिन के युद्ध का कार्यक्रम बनाया जाने लगा। इसके बाद सबने विश्राम किया। प्रातःकाल रावलजी ने गरुड़ व्यूह रचा। एक पक्ष पर बलभद्रराय, दूसरे पर जामराय यादव, चोंच पर पुण्डीर, पाँव और पिंड पर समरसिंह, पूँछ पर मदनसिंह और कुछ सेना बीच देकर पीछे पृथ्वीराज स्थित हुए।

यवन-दल ने चन्द्र व्यूह रचा। आधे भाग के नेता खुरासान खां और आधे के रुस्तम खां हुए। हरावल में मारूफखां गक्खरों की सेना सहित था।

युद्ध के प्रारम्भ होने पर पुण्डीर ने कहा—"महाराज, क्या आज्ञा है? स्वामिद्रोही हम्मीर का सिर काट लाऊँ या शाह को बाँध लाऊँ?" तो राजा ने कहा—"हम्मीर का सिर काट लाओ, तो क्या बात है!" यह सुन वीर पुण्डीर अपनी सेना ले भयानक वेग से शत्रु-सैन्य में घुस गया। सैनिकों की लाशों के ढेर को रौंदता हुआ वह हम्मीर तक पहुँच गया, और उसका सिर काट लाकर राजा के सम्मुख रक्खा। यह देख राजा ने प्रसन्न होकर शाबाशी दी और कहा—"अब चार-चार तलवार बाँधकर शाह को बाँध लाओ।" हम्मीर का सिर कटने पर शाह क्रुद्ध होकर सफेद हाथी पर चढ़ गया और सेना को ललकारा। शत्रु-दर्प ने भयानक धावा बोल दिया। यह देख रावलजी ने कहा—"वीरो, अब मरने-मारने की ठान लो, और जीत की आशा त्याग दो। पुण्डीर पर सारी शत्रुसेना टूट पड़ी थी, पर उसका साहस देखने योग्य था। उसने कठिन मार मारी, और अन्त में वह खेत रहा। उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ। तीसरे दिन जैतराव प्रमार श्वेत वस्त्र पहन और श्वेत हाथी पर सवार होकर समस्त सेना का नेता बना। उसके दायें रामराय, बायें चामुण्डराय और हरावल पर समरसिंह रहे। यवन-सेना ने जैतराव को ही राजा समझ उस पर भारी आक्रमण कर दिया। जैतराव दोपहर तक के युद्ध में मारा गया। अब चामुण्डराय ने तिरछे रुख धावा किया। एक बार यवन-दल विचलित हो गया। यह देख शाह अपनी सेना को पीछे हटाकर ले गया। अब उसने तीस-तीस हजार चुने हुए सवारों को चार दल बनाकर चौहान-सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। सेनापतियों को आज्ञा थी कि घोर युद्ध का अवसर न आने दो। मौका बचाकर पीछे हटते रहो। शाम तक यही खेल होता रहा। यवन-दल आगे बढ़ता और पीछे हटता रहा। सन्ध्या होते-होते यवन-दल एकदम भाग खड़ा हुआ। यह देख चौहान सेना भूखे सिंह की भाँति उस पर टूटी पड़ी। पृथ्वीराज ने अपना धनुष सँभाला और ताक-ताककर बाण छोड़ने लगे। यह देख अवसर पा सुलतान अट्ठारह हजार चुने हुए

विजयराज बघेला आदि नौ सरदार उसकी सहायता को नियुक्त हुए। उन्नीस हजार सेना ले वीर चामुण्डराय छायल में जमा। भारतराय और तियाराय परिहार, जंगलीराव दाहिमा, ठंठरराय परिहार आदि पाँच सरदार उसकी सहायता करते थे। शेष दस हजार सेना ले पृथ्वीराज सेना की पीठ पर सुरक्षित थे। गुरुराम पुरोहित, चाँचराय गहलौत, पंचादनराय आदि दस सरदार उनके साथ थे। इस प्रकार व्यूह रचकर, समरसिंह को साथ लेकर एक बार राजा ने घूम-फिरकर समस्त सेना का निरीक्षण किया, फिर मध्य में आये, तब पृथ्वीराज ने एक बहुमूल्य मोतियों की माला रावलजी के गले में पहनाई, और सब अपने-अपने स्थान पर आ डटे।

शाह की सेना में एक लाख सवार, नौ लाख पैदल और दस हजार हाथी थे। दाहनी बाजू पर सरदार तातारखाँ दो लाख सिपाही और दो हजार हाथी तथा पाँच सौ सरदारों सहित था। बायीं बाजू पर सरदार खुरासानखाँ दो लाख सिपाही, दो हजार हाथी और तीन सौ सरदारों सहित था। तीन हजार हाथी और दो लाख सेना ले एक वीर सरदार अनेक सरदारों सहित हरावल में था। शेष नायकों सहित शाह सेना के पीछे के भाग में सुरक्षित था। दो घड़ी दिन चढ़े मुठभेड़ हुई। देखते-देखते धूल, गर्द और लोहे से मीलों का मैदान भर गया। चीत्कार, हाहाकार, मार-काट की भयानक पुकार पड़ी। कठिन मार होने लगी। गाजी होने की धुन मे बर्बर योद्धा दाँत पीस-पीसकर उमड़े आते थे, और इधर राजपूत जान पर खेल रहे थे। दोपहर के युद्ध में वीरवर चामुण्डराय घायल हुआ। देवराय बगरी, सालुखाराय भाठी, राना माल्लहनसिंह परिहार आदि छः सौ कूरम्भ और टाँक चन्देलों सहित जैतराव प्रमार भी घायल हुआ। शत्रु के पच्चीस हजार सरदार और सिपाही काट डाले गये।

सन्ध्या-समय दोनों सैन्य फिरीं। रावलजी के सभापतित्व में समर-सभा जुड़ी और आगामी दिन के युद्ध का कार्यक्रम बनाया जाने लगा। इसके बाद सबने विश्राम किया। प्रातःकाल रावलजी ने गरुड़ व्यूह रचा। एक पक्ष पर बलभद्रराय, दूसरे पर जामराय यादव, चोंच पर पुण्डीर, पाँव और पिंड पर समरसिंह, पूंछ पर मदनसिंह और कुछ सेना बीच देकर पीछे पृथ्वीराज स्थित हुए।

यवन-दल ने चन्द्र व्यूह रचा। आध भाग के नेता खुरासान खाँ और आधे के रुस्तम खाँ हुए। हरावल में मारूफखाँ गक्खरों की सेना सहित था।

युद्ध के प्रारम्भ होने पर पुण्डीर ने कहा—"महाराज, क्या आज्ञा है? स्वामिद्रोही हम्मीर का सिर काट लाऊँ या शाह को बाँध लाऊँ?" तो राजा ने कहा—"हम्मीर का सिर काट लाओ, तो क्या बात है!" यह सुन वीर पुण्डीर अपनी सेना ले भयानक वेग से शत्रु-सैन्य में घुस गया। सैनिकों की लाशों के ढेर को रौंदता हुआ वह हम्मीर तक पहुँच गया, और उसका सिर काट लाकर राजा के सम्मुख रक्खा। यह देख राजा ने प्रसन्न होकर शाबाशी दी और कहा—"अब चार-चार तलवार बाँधकर शाह को बाँध लाओ।" हम्मीर का सिर कटने पर शाह क्रुद्ध होकर सफेद हाथी पर चढ़ गया और सेना को ललकारा। शत्रु-दर्प ने भयानक धावा बोल दिया। यह देख रावलजी ने कहा—"वीरो, अब मरने-मारने की ठान लो, और जीत की आशा त्याग दो। पुण्डीर पर सारी शत्रुसेना टूट पड़ी थी, पर उसका साहस देखने योग्य था। उसने कठिन मार मारी, और अन्त में वह खेत रहा। उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ। तीसरे दिन जैतराव प्रमार श्वेत वस्त्र पहन और श्वेत हाथी पर सवार होकर समस्त सेना का नेता बना। उसके दायें रामराय, बायें चामुण्डराय और हरावल पर समरसिंह रहे। यवन-सेना ने जैतराव को ही राजा समझ उस पर भारी आक्रमण कर दिया। जैतराव दोपहर तक के युद्ध में मारा गया। अब चामुण्डराय ने तिरछे रुख धावा किया। एक बार यवन-दल विचलित हो गया। यह देख शाह अपनी सेना को पीछे हटाकर ले गया। अब उसने तीस-तीस हजार चुने हुए सवारों को चार दल बनाकर चौहान-सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। सेनापतियों को आज्ञा थी कि घोर युद्ध का अवसर न आने दो। मौका बचाकर पीछे हटते रहो। शाम तक यही खेल होता रहा। यवन-दल आगे बढ़ता और पीछे हटता रहा। सन्ध्या होते-होते यवन-दल एकदम भाग खड़ा हुआ। यह देख चौहान सेना भूखे सिंह की भाँति उस पर टूटी पड़ी। पृथ्वीराज ने अपना धनुष सँभाला और ताक-ताककर बाण छोड़ने लगे। यह देख अवसर पा सुलतान अट्ठारह हजार चुने हुए

सवार ले तीर की भाँति राजा के ठीक सम्मुख टूट पड़ा, और राजा के हाथी को घेर लिया। यह देख जैतराव ने छत्र अपने सिर पर धारण कर लिया। यवन दल ने भीषण रूप में जैतराव को राजा समझ घेर लिया। अन्त में वीरवर जैतराव और चामुण्डराय दोनों ही उस भयानक आक्रमण मे काम आये। अब प्रसंगराय खीची ने छत्र सिर पर धारण कर लिया। यह देख शाह खीझ गया। उसने समझा था कि राजा मारा गया। इतने मे राजा ने घोड़े पर चढ़कर समरसिंह के पास जाने का उपक्रम किया, पर घोड़ा अड़ गया। होनहार प्रबल थी। उधर शाह ने राजा को पहचानकर उन्हें चारों ओर से घेर लिया। धरो-पकड़ो करती हुई शाही सेना राजा पर टूट पड़ी। समरसिंह ने दूर से यह देखा, तो वह मार-काट करते वहाँ तक आये, और सब सरदार भी वही जुट गये। अब किसे प्राणो का मोह था! शाह भी वही आ जुटा। भारी समर हुआ और रावलजी वहीं खेत रहे। पृथ्वीराज फँस गये। यह देख पृथ्वीराज ने दो लाख मूल्य के कुण्डल कानों से निकालकर गुरुराम पुरोहित को दिये और कहा—"आप दिल्ली जाकर कुमार की रक्षा कीजिए।" ज्यो ही गुरुराम लौटे, एक यवन ने एक ही हाथ में उनका सिर धड़ से जुदा कर दिया। उसने राजा को कुण्डल देते देख लिया था।

गुरु की इस भाँति हत्या होते देख राजा क्रोध और क्षोभ से थरथर काँपने लगे। पर अब क्या हो सकता था! उनके पास कोई सामन्त जीवित न था। केवल सौ-पचास सिपाही थे, जो प्रत्येक क्षण कम हो रहे थे और यवन-दल टिड्डी की भाँति वेग से उमड़ा चला आ रहा था। शाह ने ललकार कर कहा—"पृथ्वीराज, कमान रख दो।" पर पृथ्वीराज ने न सुना। उसने उजबकखाँ को हुक्म दिया कि राजा की कमान छीन ले। यह प्रबल धनुर्धारी था। उसकी कमान अठारह भार की थी, और तरकस में तेरह सौ तीर थे। वह अठारह भार की लुंगी वेधता था। राजा के पास एक ही तीर बचा था, उसीसे उन्होंने उसे मार गिराया। अब इनके तरकस मे तीर न था। सहस्रों योद्धाओं ने शस्त्रों के आघात से कमान काट दी। अब उन्होंने तलवार निकाली। वह भी टूट गई। तब कटार निकाली। अन्त में एक भीमकाय यवन-सरदार ने गले में कमान डालकर राजा को घोड़े पर से खींच लिया।

राजा गिर गये और वह कसकर बांध लिये गये दस पांच राजपूत जो बचे थे, कट मरे। एक भी वीर जीवित न लौटा।

राजपूत छावनी लूट ली गयी और उसमें आग लगा दी गयी। शाह ने फीरोजखाँ को राज्य दे उसी दिन पृथ्वीराज सहित गजनी प्रस्थान किया।

श्रावण शुक्ला २, सोमवार, संवत् ११५८ के दिन यह शोकपूर्ण चिर-स्मरणीय घटना घटी, और एकादशी को यह समाचार दिल्ली पहुँचा। नगर मे हाहाकार छा गया। संयोगिता ने सुनते ही शरीर त्याग दिया। पृथा कुमारी ने शान्त भाव से पति की मृत्यु का समाचार सुना और वह शान्त भाव से सती हो गयी। उसी के साथ सहस्रों राजपूतनियों ने अग्नि-प्रवेश किया।

गजनी में राजा को महल के दक्षिण पार्श्व में रक्खा गया। हुजाब खाँ उनका निरीक्षक नियत किया गया। दस हिन्दू सेवक राजा की सेवा के लिए नियुक्त किये गये। राजा ने अन्न-जल त्याग दिया। शाह ने स्वयं आकर समझाया, तो राजा ने क्रोध से आँखें गुरेरकर शाह को देखा। इसपर क्रुद्ध हो शाह ने उनकी आँखे निकाल डालने का हुक्म दे दिया। राजा की मुश्कें कसकर धरती पर पटक दिया गया और उसी क्षण उनकी आँखें निकाल ली गयीं। इस प्रकार वह महावीर, प्रतापी, साहसी दिल्लीपति अन्धे और लाचार हो भूखे और प्यासे उस यवनपुरी में दिन काटने लगे।

: ११ :

हाड़ा हम्मीर पृथ्वीराज का एक वीर सामन्त था। वह किन्हीं कारणों से पृथ्वीराज से बिगडकर काँगड़े का अधिपति बन गया था। युद्ध-यात्रा के समय राजा ने उसे मनाने के लिए कवि चन्द को भेजा था, पर हम्मीर ने उसे धोखा देकर देवी के मन्दिर में बन्द कर दिया और स्वयं शाह की सेना मे जा मिला। दैवयोग की बात है कि इस सर्वनाशकारी युद्ध के अवसर पर राजा का प्रधान मित्र, सलाहकार कवि चन्द काँगड़े के मन्दिर में ही बन्द रहा। जब कवि चन्द का मन्दिर से छुटकारा हुआ, तब उसने सुना कि दिल्ली का तो नाश हो गया। वह धावे पर धावे मारता दिल्ली पहुँचा। नगर में सन्नाटा था। दिल्ली की दुर्दशा देख उसकी छाती फटने लगी। उसने वीरासन से बैठ दो महीने पन्द्रह दिन में सात हजार छन्दों में पृथ्वीराज

रासो लिखा और अपने ज्येष्ठ पुत्र को पढाया इसके बाद अपना इष्ट बीज-मन्त्र सुनाया, और सब माया-मोह छोड़ गजनी की राह ली।

उसने साधु के वेश में यात्रा की। गजनी पहुँचकर उसने देखा, नगर के बाहर कोसों तक हाथी-घोड़े बँधे हैं। फौजें पडी हैं। मियाँ लोग नमाज पढ़ रहे हैं। शहर में चहल-पहल है। वह भीड़ को पार करता हुआ राजद्वार तक पहुँच गया। देखा, बहुत-से शस्त्रधारी योद्धा पहरे पर हैं। उसे देख एक ने पूछा—"कौन हो?"

"हिन्दू फकीर हूँ, बहुत काम जानता हूँ, कवि भी हूँ, गाना-बजाना, नाचना, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण सभी कुछ जानता हूँ।"

एक द्वारपाल ने उसे पहचानकर कहा—"तू कवि चन्द है, जरूर फसाद करेगा।"

यह सुन कवि चन्द वहाँ से खिसक गया। इधर-उधर घूमने लगा। जब शाम को शाह हदफ खेलकर घोडे पर चढकर लौटा, तब वह बीच मार्ग मे खड़ा हो गया। सिपाहियों ने रोका, पर उसने हाथ उठाकर कहा—'हे राजाओं के तेज को नष्ट करने वाले शाह, यह कवि चन्द तुमको आशीर्वाद देता है।" शाह ने उसे पास बुलाया और कहा—"तुम राजा के दोस्त और कवि थे, मगर युद्ध में कहाँ थे?"

कवि ने सब आपबीती सुनाई और आँखो मे आँसू भरकर कहा—"जब मेरा स्वामी ही नहीं, तब मेरे जीवन को धिक्कार है। बस, एक नजर अपने स्वामी को कैद करने वाले को देखने की इच्छा से आया था। वह इच्छा अब पूर्ण हो गयी। अब बद्रिकाश्रम जाता हूँ।"

शाह ने कहा—"बेशक, तुझे अफसोस होगा, मगर खैर, मैं कल तुझसे बात करूँगा।" इसके बाद उसकी पहुनाई का हुक्म दिया। गजनी में एक भीम नामक खत्री रहता था। उसके सुपुर्द कवि का आतिथ्य किया गया। उसने कवि का बड़ा आदर-सत्कार किया। कवि ने उससे बिल्कुल एकान्त एक स्थान माँगा, और वेदी रच देवी का अनुष्ठान कर होम रचा।

दूसरे दिन अच्छे वस्त्र पहन कवि शाह के दरबार में गया। शाह के सरदारों की इच्छा न थी कि वह कवि को दरबार में आने दें। उन्होंने उसे बहुत रोका। शाह ने कवि को आने की आज्ञा दे दी। सम्मुख आने पर शाह

ने कहा—"कहो, क्या चाहते हो ?"

"एक चीज माँगने आया हूँ।"

"पृथ्वीराज के सिवा जो चाहो, माँगो।"

"मेरे लड़कपन में राजा ने शब्दवेधी बाण से सात घड़ियाल गोलचः मे रखकर फोड़ने की प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्ण करा दें।"

"पर वह इस वक्त अन्धा और भूखा लागर पड़ा है, कैसे तीर चला सकता है ?"

"शाह वचन दे चुके हैं।"

शाह ने हँसकर कहा—"अच्छी बात है। राजा को उज्र न हो, तो मैं राजी हूँ। यह भी एक खास तमाशा होगा।" इसके बाद उसने एक अफसर के साथ कवि को राजा के पास कैदखाने में भेज दिया।

राजा एक साधारण कमरे में साधारण बिछौने पर करुणा की मूर्ति बने बैठे थे। उन्हें देखते ही कवि की छाती फटने लगी। कवि ने कड़ा जी करके उन्हें आशीर्वाद दिया, पर वह बैठे ही रहे। कुछ न बोले। तब कवि ने कहा—"महाराज, इस विपत्ति-काल में सेवक से नाराज न हूजिए। मेरा अपराध नहीं। मुझे हम्मीर ने छल से देवी के मन्दिर में कैद कर दिया था।" इसके बाद उसने कहा—"राजन्, उस दिन की बात याद है जब अंधेरी रात थी, हाथों हाथ न सूझता था, आपने एक ही क्षण में उल्लू को मार गिराया था। और, सात घड़ियाल एक ही बाण में बेधने का वचन दिया था। आज उसे पूरा कीजिए।"

राजा कवि का अभिप्राय समझ गये। कुछ ठहरकर कहा—"यह तो ठीक है, पर मैं अत्यन्त कमजोर हूँ, फिर शाह के अधीन हूँ, यदि शाह स्वय आज्ञा दें, तो स्वीकार है, नहीं तो नहीं। समय ही उल्टा है।" यह कहते-कहते राजा की आँखों से जल बरसने लगा।

कवि ने कहा—"स्वामी, साहसी और वीर लोगों को सदा ही समय है। कातर न हों।"

बाहर आकर कवि ने शाह से कहा—"राजा केवल आप ही की आज्ञा से बाण छोड़ने को राजी हैं।"

शाह ने हँसकर कहा—"अच्छा, हम भी यह तमाशा देखेंगे।" इसके

बाद उसने समस्त दरबारियों को सूचना दी। प्रबन्ध किया गया। सात हाँडी गोल चक्र में लटका दी गयीं। शाह सरदारों सहित एक उच्च आसन पर आ बैठा, पृथ्वीराज लाये गये। कवि ने निवेदन किया—"यदि शाह ठीक निशाना देखना चाहते हैं, तो राजा को उन्हीं का धनुष-बाण दिया जाय।" यह प्रार्थना भी स्वीकार की गयी। पृथ्वीराज ने धनुष पर बाण चढ़ाया। कवि ने कहा—"यह चूके, तो चूके।" इसके बाद बादशाह से निवेदन किया—"अब आप आज्ञा दीजिए।" शाह ने उच्च स्वर से कहा—"छोड़ो।"

कठिनाई से 'छोड़ो' शब्द उसके मुँह से निकला था कि बाण शाह के गले, तालू, दाँत, जीभ सबको फोड़ता हुआ पार निकल गया, और शाह पुण्य-क्षय नक्षत्र की भाँति उच्च आसन से गिरकर, छटपटाकर ढेर हो गया। यह देख उपस्थित जनता में हाहाकार मच गया। जब तक लोग दौड़ें, कवि ने जड़े से कटार निकाल अपना पेट चाक कर लिया, और फिर अद्‌भुत धीरज से वही कटार राजा को दी। राजा ने गोविन्द का नाम लिया, और कलेजे में भोंक ली।

३१

प्राण-वध

प्राण-वध ! पूरे पाँच सप्ताह भर केवल इसी एक विचार में लीन रहा हूँ। प्रतिक्षण केवल वह है और मैं हूँ। प्रतिक्षण उसकी उपस्थिति से भयभीत और उसके असह्य भार से विदलित।

प्रारम्भ में, यद्यपि कुछ सप्ताह ही व्यतीत हुए थे, परन्तु मानो वर्षों व्यतीत हो गये। प्रतिदिन, प्रति घण्टा, प्रति मिनट वही विचार और उसकी वस्तुस्थिति। मेरी मेधाविनी, विकसित और नूतन बुद्धि मानो स्वप्न-जगत्

प्राणवध, स्कॉटलैण्ड की रानी मेरी का कत्ल, पिता अब्राहिम लिंकन का वध—ये तीन कहानियाँ चाँद के फाँसी अंक से उद्धृत हैं।

में भटक गई है। मैं एक काल्पनिक, अस्त-व्यस्त और अनन्त जीवन का मानचित्र बनाता हूँ, जिसमें सहस्रों स्वप्न-वासनाएँ और जीवन की कोमल भावनाएँ हैं। उसमें अनिन्द्य सुन्दरियाँ हैं, धर्म-बन्धन हैं, यशस्विनी विजय हैं, जीवन और आलोक से परिपूर्ण रंगमंच हैं, मैं सुन्दरी कुमारियों के झुरमुट में, क्रीड़ोद्यान में विहार कर रहा हूँ। मैं सदैव एक ऐन्द्रजालिक आनन्द-लोक में हूँ, मेरी विचारधारा स्वच्छन्द है और मैं भी स्वच्छन्द हूँ।

पर अब तो मैं बन्दी हूँ। मेरा शरीर लोहरज्जु से जकड़ा हुआ है और मैं कालकोठरी में बन्द हूँ। मेरा अन्तःकरण उस एक—केवल एक ही भयानक, वीभत्स, गम्भीर और कृतान्त समविचार से काँप उठता है। वह एक ही अटल विचार है, एक ही निश्चय है, एक ही गहन कल्पना है, और वह यही कि मैं प्राण-वध की आज्ञा प्राप्त कैदी हूँ।

मैं करूँ भी क्या? वह थर्रा देने वाला विचार छाया की तरह मेरे साथ है। अकेला और घृणित, वह मेरे सुख के प्रत्येक विचार को तत्क्षण मुझसे दूर भगा देता है। वह मेरे सम्मुख मूर्तिमान उपस्थित है, मैं ज्योंही उसकी ओर से जरा आँख बन्द करता हूँ या जरा मस्तिष्क में निश्चिन्तता लाता हूँ तो वह अपने ठण्डे हाथों से मुझे जकड़ लेता है।

उसे भूल जाने से सम्बन्धित मेरे जितने विचार हैं, उन सबपर उसका असाध्य अधिकार है। मुझे सम्बोधित करके जो शब्द कहे गए थे, उन्हें मैंने भय के थपेड़ों की तरह सहा था। इस काल-कोठरी की सींखचेदार खिड़की से बाहर मुँह निकालकर जरा ही ज्योंही मैं झाँकता हूँ, वह सम्मुख ही खड़ा दीख पड़ता है। जब मैं टहलता हूँ, वह मुझ पर चोट करता है। जब मैं सोता हूँ तब वह मुझे मार डालता है और स्वप्न में वध-यन्त्र के भीषण कुठार के रूप में दीख पड़ता है।

और जब मैं हड़बड़ाकर उठ बैठता हूँ, तब वह कहता है—'यह तो स्वप्न मात्र है!' पर जब मैं सावधान होकर, आँखें फाड़-फाड़कर अपने चारों तरफ के वातावरण को देखता हूँ, तब लैम्प के धुँधले पीले प्रकाश में, जेल की गीली पत्थर की दीवारों पर लिखा देखता हूँ, अपने मलिन वस्त्रों पर लिखा देखता हूँ, खिड़की के पास अचल खड़े दुपहरी की काली आकृति में लिखा देखता हूँ, वही एक शब्द! फिर स्पष्ट शब्दों में धीरे से

कोई कहता है "प्राण-वध !"

: २ :

अगस्त का मनोरम प्रभात था।

तीन दिन से मेरा मुकदमा चल रहा था। लोगों की उत्सुक भीड़ घण्टों पहले कचहरी में जमा हो जाती थी। तीन दिन से जजों, वकीलों, गवाहों और पब्लिक प्रॉसीक्यूटरों का अद्भुत और दर्शनीय अभिनय हो रहा था। वे कभी-कभी हँस पड़ते थे, पर मूर्तिमान खूनी हत्यारे और यमराज थे।

पहले दो दिनों तक उत्तेजना और बेचैनी में मुझे नींद नहीं आयी। तीसरे दिन आधी रात तक तो मुझे जूरी ने ही छोड़ा। मैं अपनी कोठरी में आकर जमीन पर ही पड़ गया और शीघ्र ही नींद में बेसुध हो गया। कई दिन बाद यह पहली बार विश्राम था। मैं बेसुध सो रहा था कि उन्होंने मुझे जगा दिया। जेलर की भारी पदध्वनि और चाबियों के गुच्छे की झनकार से भी मेरी नींद न टूटी। उसने मुझे हिलाया और कान के पास चिल्लाकर कहा—"उठो!"

मैंने आँखें खोली और हड़बड़ाकर उठ बैठा। कोठरी की ऊँची और तंग खिड़की से उदीयमान सूर्य का धुँधला प्रकाश कोठरी में आ रहा था। प्रकाश से मुझे बड़ा प्रेम था। मैंने जेलर से कहा—"कैसा सुन्दर दिन है!"

वह कुछ देर चुप रहा। मानो वह सोच रहा था कि मुझ जैसों को उत्तर देने से क्या लाभ? फिर उसने कहा—"हाँ, ऐसा ही प्रतीत होता है!"

मैं अविचल बैठा था। मेरी विचार-शक्ति लुप्त हो गई थी। मेरी आँखें उस खिड़की से आती धुँधली सूर्य-किरणों पर अटकी थीं। मैंने फिर कहा—"बहुत सुन्दर दिन है!"

"हाँ, किन्तु वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" उसने कहा।

इन गिने हुए शब्दों ने मेरी विचारधारा पलट दी। मैं मकड़ी के जाले में फँसी मक्खी की तरह छटपटाने लगा। मैंने हठात् देखा—वही अदालत, वही जज, जज के सामने मेज, उस पर रक्त वस्त्र का आवरण, गवाहों की तीन पंक्तियाँ, और उनके भावशून्य मुखमण्डल, द्वार के दोनों तरफ सिपाहियों की दो टुकड़ियाँ, कौन्सिलर का हवा में लहराता हुआ काला

गाउन, ठसाठस भरे हुए नरमुण्ड, और बारहों जूरियों की मुझ पर एकटक दृष्टि !

मैं उठ खड़ा हुआ। मेरे दाँत कटकटा रहे थे। मेरे हाथ काँप रहे थे। मुझे वस्त्र पहनना भी दुर्भर था, पैर लड़खड़ा रहे थे। मैं कदम उठते ही बोझ से दबे हुए मनुष्य की तरह झुक गया। फिर भी मैंने साहस किया और मैं चला।

दो सन्तरी मेरे लिए बाहर खड़े थे। उन्होंने मुझे हथकड़ी पहनाई और कसकर ताला लगा दिया। मैंने कोई आपत्ति न की, मानो एक यन्त्र दूसरे यन्त्र से संयुक्त कर दिया गया।

हम भीतरी दालान में होकर जा रहे थे। प्रातःकाल की प्राणोत्तेजक वायु ने मुझे शक्ति प्रदान की। मैंने अपना सिर उठाया। आकाश स्वच्छ और नीला था। सूर्य की गर्म किरणें रोशनदानों को भेदती हुई जेल की ऊँची, काली और मैली दीवारों पर पड़ रही थी। सचमुच यह बहुत सुन्दर था।

हम एक गोलाकार जीने पर चढ़े। एक-एक करके तीन मंजिलें पार कीं। दरवाजा खुला, भीतर की गर्म हवा और मनुष्यों का कोलाहल मुझे प्रतीत हुआ। मैंने भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करते ही मैंने देखा—हथियारबन्द पुलिस का पूरा पहरा है, लोगों की बड़ी भीड़ है और उनमें धक्कम-धक्का हो रहा है, शोर भी काफी है। मैं बीच के मार्ग से जाने लगा। दोनों तरफ हथियारबन्द सिपाही थे। सभी की दृष्टि मुझपर थी, मानो मैं मध्य-बिन्दु था, जिस पर प्रायः सभी की दृष्टि गड़ रही थी।

अब मेरी हथकड़ी और बेड़ियाँ खोल दी गई, पर मुझे इसका होश न था।

एकदम सन्नाटा हो गया। मैं नियत स्थान पर जा खड़ा हुआ। निस्तब्धता का अभिप्राय मैं समझ गया। मेरे अन्तिम निर्णय की घड़ी आ पहुँची थी। उसे सुनने ही को मैं लाया गया था।

आपको आश्चर्य होगा, ज्योंही यह विचार मेरे मस्तिष्क में उदय हुआ, मैं जरा भी भयभीत न था। अदालत की खिड़कियाँ खुली हुई थीं, स्वच्छ वायु भीतर आ रही थी। नगर की कोलाहल ध्वनि साफ सुन पड़ती थी।

अदालत का कमरा इतनी फसाहत से साफ किया गया था मानो कोई विवाह होने वाला हो। धूप का प्रकाश काँच की खिड़कियों से छन-छनकर भीतर आ रहा था। जज एक कोने में अपनी पोशाक पहने गम्भीरता से बैठे थे। उनका कार्य समाप्त हो चुका था। सभापति शान्ति से बैठे थे, किन्तु उनका अर्दली अपने पीछे बैठी एक युवती से हँस-हँसकर बातें करता और टोपी से खिलवाड़ कर रहा था। केवल जूरीगण पीले और उदास दीख पड़ते थे। उनमें से कुछ लोग रात-भर जागने के कारण जम्हाइयाँ ले रहे थे। उनकी चेष्टाओं से प्रतीत होता था कि अभी सुनाये जाने वाले फैसले पर उनका कोई उत्तरदायित्व ही नहीं है। इन सम्माननीय दुकानदारों को देखने पर यही प्रकट होता था कि ये सोने की इच्छा कर रहे हैं।

ठीक मेरे सामने एक लम्बी खिडकी खुली थी, जिससे विक्रेताओं की हास्य-ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

इस चहल-पहल में कोई कैसे दुखदाई विषयों पर विचार कर सकता था? स्वच्छ वायु और सुनहरी धूप मेरे चारों ओर अठखेलियाँ कर रही थी, फिर भला मैं स्वतन्त्र होने की आशा कैसे न करता? सूर्य-किरणों की ही तरह आशा की किरणें मेरे चारों ओर भी छितरा रही थीं। मैं जीवन और स्वतन्त्रता की उपासना-सी करता हुआ अपने मुकदमे के फैसले की प्रतीक्षा कर रहा था। मेरा वकील आया। वह खूब आनन्द से डटकर नाश्ता कर आया था। उसी की प्रतीक्षा हो रही थी। अपने स्थान पर आते ही उसने झुककर धीरे-से मुझसे कहा—मुझे अभी आशा है!

"सचमुच" मैंने धीरे-से जरा मुस्कराकर कहा।

"हाँ", उसने फिर कहा—"यह तो मैं नहीं कह सकता कि किस कानूनी नुकते पर जोर दिया जायेगा, किन्तु यदि वे पूर्व संकल्प साबित न कर सकें तो तुम्हें सिर्फ आजन्म कैद होगी।"

"किस तरह महाशय! इससे हजार गुनी अच्छी तो मौत ही है।"

हाँ, मृत्यु, मेरे निकट मेरी आत्मा कह रही थी, इसमें भय क्या है? आधी रात के समय, जब भयानक वर्षा हो रही हो, तीर-सी ठण्डी हवा चल रही हो, ऐसे समय में अन्धकारमय स्थान में किसी का मृत्युदण्ड सुनना सम्भव है? किन्तु अगस्त के मास में, इस सुहावने दिन में, प्रातःकाल के ८

बजे, व उदार जूरीगण क्या मुझे अपराधी समझ सकेंगे? इस समय मैं खिड़की से बाहर खिले हुए फूलों पर दृष्टि दिये हुए था।

अचानक सभापति ने मुझे खड़े होने की आज्ञा दी। सन्तरी ने संगीन चढ़ा ली। बिजली के धक्के की तरह उपस्थित समूह विचलित हो उठा। एक साधारण से व्यक्ति ने, जो जज की कुर्सी के निकट बैठा था और जो अदालत का मुंशी था, जूरी का फैसला पढ़ सुनाया। मुझे जैसे काठ मार गया। मैं दीवार के सहारे टिककर खड़ा हो गया। मुझे भय था कि कहीं मैं गिर न पड़ूँ।

इसके बाद प्रेजिडेण्ट ने मेरे वकील से पूछा—आपको क्या इस दण्डाज्ञा में कुछ आपत्ति है?

मैं बहुत कुछ कह सकता था, परन्तु मेरी जीभ तालू से सट गई थी और मेरे मुँह से शब्द नहीं निकल रहा था।

मेरा वकील खड़ा हुआ। उसने बहस शुरू की, वह जूरी से दयापूर्ण फैसले का अनुरोध करने का दाव-पेच खेल रहा था। उसका मतलब इससे कुछ हलकी सजा दिलाने का था—अर्थात् आजन्म कैद। मैं उसकी बातों से घायल हो रहा था। मैंने जोर से फिर यही कहने की चेष्टा की कि मृत्यु हजार गुना अच्छी है, पर मैं यही कर सका कि जोर से उसकी बाँहें पकड़ लीं और मेरे मुँह से निकल गया—नहीं, नहीं।

पब्लिक प्रॉसीक्यूटर ने मेरे वकील का प्रतिवाद किया और मैं मूर्ख की तरह अवाक् होकर उसे सुनता रहा। तब जज लोग विचार के लिए उठ गये और लौटकर उन्होंने फैसला दिया—"प्राणदण्ड!!"

भीड़ में से एक ध्वनि उठी—"प्राणदण्ड!"

सन्तरी मुझे घेरकर ले चले, भीड़ मुझपर टूटी पड़ती थी, मैं निर्बुद्धि और विमूढ़ की तरह जा रहा था।

क्षणभर में ही मुझ मे परिवर्तन हो गया। फैसला सुनने से प्रथम मैं समझता था कि मैं अन्य मनुष्यों ही की तरह साँस लेता हूँ पर अब मेरे और उनके बीच में एक दुर्भेद्य दीवार है। अब कुछ भी तो न सुहाता था। वे लम्बी और प्रशस्त खिड़कियाँ, चमकीला सूर्य, स्वच्छ आकाश, सुन्दर पुष्प मानो पीले और रसहीन हो गये थे। वे स्त्री-पुरुष और बच्चे, जो

मेरे चारों ओर फिर रहे थे, मानो हवा के बवण्डर थे।

एक मैली, काली, जंगलेदार गाड़ी मेरे लिए तैयार थी। मैं ज्योंही उसमे घुसा, मैंने चारों तरफ देखा। "फाँसी का असामी," लोग चिल्ला उठे। मेरे नेत्रों में अंधेरा छा रहा था। उसी अन्धकार में मैंने देखा कि वे युवतियाँ, जिनके साथ बहुधा मैं विनोद किया करता था, मेरी ओर उत्सुकता से देख रही हैं।

"बहुत ठीक" उनमें से एक ने ताली बजाकर कहा—"छः हफ्ते मे फाँसी लगेगी।"

: ३ :

"प्राणदण्ड"

क्यों जी, क्या मृत्यु सभी के लिए अनिवार्य नहीं है? तो फिर मेरी दशा में इतना परिवर्तन क्यों? जब से मेरे वध की घोषणा की गई है तब से न मालूम कितनों ने, जो अपने भविष्य की सुखद-कल्पना कर रहे थे, अपने आप मृत्यु-मुख में प्रवेश किया है। जो मुझे रस्सी पर झूलता देखने के अभिलाषी थे और स्वस्थ तथा सुन्दर थे, वे पहले ही चल बसे। और अब भी न मालूम कितने ऐसे हैं, जो मुझे मरते देखना चाह रहे होंगे, पर शायद मुझसे प्रथम ही चल बसें। फिर मैं ही चिरजीवन की अभिलाषा क्यों करूँ? जेल की अंधेरी कालकोठरी, टीन की प्यालियों का काला गन्दा शोरवा और काली रोटियाँ, प्रतिक्षण का अपमान! मैं, जो एक शिक्षित हूँ, तुच्छ पहरेदारों और जेलरों की गालियाँ सुनूँगा? सभ्य जगत् के किसी व्यक्ति से मिल भी न सकूँगा? यही तो जीवन के भोग हैं, जिन्हें जल्लाद मुझसे छीन लेगा।

पर फिर भी यह बहुत भयानक है।

: ४ :

वह काली गाड़ी मुझे यहाँ विसेटर की विशाल जेल में डाल गई। यह बहुत सी जमीन को घेरे हुए है और एक पहाड़ी की तलहटी में बनाई गई है। दूर से देखने पर यह इमारत एक भव्य महल जैसी प्रतीत होती है। पर ज्यों-ज्यों निकट आते जाते हैं, त्यों-त्यों साधारण मकान-सी लगती जाती है। टूटे हुए बुर्ज नेत्रों में विषाद उत्पन्न कर देते हैं। देखने से घृणा

और लज्जा-सी मालूम देती है मानो पाप और अत्याचार ने इसकी दीवारों को कलुषित कर दिया है।

इसमें न खिड़कियाँ हैं, न काँच, सिर्फ लोहे के बड़े-बड़े सीखचे लगे हुए हैं। इनमें से कोई क्या देखने की इच्छा कर सकता है ?

: ५ :

यहाँ पहुँचते ही मुझे लोहे के पींजरे में डाल दिया गया। मेरी कड़ी निगरानी रहने लगी। खाने के लिए छुरी-काँटा भी नहीं मिलता था। एक मोटे टाट का लबादा मुझे दे दिया गया था। वे मेरे जीवन के जिम्मेदार थे।

मुझे उनके साथ छः या सात सप्ताह तक रहना था, और उनका कर्तव्य था कि वे मुझे सही-सलामत वधिक के सुपुर्द करें।

शुरू में कुछ दिन उन्होंने मेरे साथ नर्मी का व्यवहार किया, किन्तु मेरे दुर्भाग्य से कुछ दिन बाद उनका व्यवहार बदल गया। वे अन्य कैदियों की तरह मेरे साथ अत्याचार करने लगे। इस अत्याचार के सामने मैं अपने भावी वध के कष्ट को भी भूल गया।

मेरा यौवन, मेरा सरल व्यवहार, जेल के पादरी के प्रति मेरा ध्यान, और लैटिन भाषा के एक-दो शब्द, जो समय-समय पर मैं सन्तरी से बोल देता था, पर जिन्हें वह समझ न सकता था, इन सबने उन्हें मेरे प्रति फिर दयावान बनाया। मुझे अन्य कैदियों के साथ अपनी कोठरी से निकलकर टहलने की आज्ञा मिल गई। वह कष्टदायी लबादा भी उतार लिया गया। फिर बहुत-कुछ सोच-विचार के बाद मुझे दवात, कलम, कागज और शाम को लैम्प रखने की आज्ञा दे दी गई। प्रति रविवार को मैं प्रार्थना के बाद दालान में कैदियों से बहुत देर तक बातें किया करता था। क्यों न करता ? वे अभागे गरीब आदमी स्वभाव के नेक थे, ये मुझसे अपना-अपना अपराध बताया करते थे। पहले मैं उनसे डरता था, पर पीछे हिल-मिल गया। उन्होंने मुझे अपनी निजी सांकेतिक भाषा बोलनी सिखाई। चोरों की भाषा बोलनी सिखाई। चोरों की भाषा तो बहुत भद्दी थी, सुनते ही घृणा-सी होने लगी।

इन्हीं लोगों ने मुझपर तरस खाया था। पहरेदार दारोगा, वार्डर,

इनकी दया से मुझे घृणा थी। वे मेरे सामने ही मेरी खिल्लयाँ उड़ाया करते थे, उनके लिए तो मैं एक निर्जीव प्राणी था।

: ६ :

मैंने सोचा, जब मुझे लिखने की सामग्री मिल ही गई है, तब फिर क्यों न उसका उपयोग करूँ, पर लिखूँ भी क्या? पत्थर की सीली हुई दीवारों से अवरुद्ध, जहाँ टहलने तक का भी सुभीता नहीं था, कहाँ दृष्टि फैलाकर विचार-कल्पना को दौड़ाता? खिड़की से जो धुँधला प्रकाश आया करता था और उसका प्रतिबिम्ब जो सामने की दीवारों पर पड़ता था, उसी को मैं देखा करता था। प्रतिक्षण एक ही बात मेरे मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तु पर दौड़ा करती थी—अपराध और उसका दण्ड—मृत्यु! और मृत्यु की बात अब क्या कहूँ जबकि अधिक काल तक जीना ही नहीं है? ऐसे विकृत मस्तिष्क से मैं क्या साहित्य-निर्माण कर सकता था?

पर क्यों नहीं? यद्यपि मेरा वातावरण मलिन था, पर मेरी प्रतिभा, ओज और भावुकता तो मुझमें अभी थी। यद्यपि ये विचार, जिन्होंने मुझे जकड़ रखा था, क्षण-क्षण में भिन्न-भिन्न अवस्था के नाटक दिखाया करते थे, जो एक-से-एक बढ़कर भीषण थे। मैंने सोचा, क्यों न मैं अपनी इस भयानक और गुप्त दशा का विवरण लिखूँ? लिखने के लिए यद्यपि यह प्रचुर सामग्री तो नहीं है, पर मेरे जीवन के दिन ही कितने हैं? इन अन्तिम और भयानक दुःख के दिनों को अपनी दवात-कलम के उपयोग में ही क्यों न लाऊँ?

पर किस ढंग से वह दुःख प्रकट किया जाय? क्षण-क्षण की विपत्तियों और चिन्ताओं का वास्तविक विवरण लिखूँ, जब तक कि प्रत्येक शक्ति नष्ट न हो जाय। मेरे वे अन्धाधुंध उठने वाले तूफानी विचार, जो निरन्तर उठ रहे हैं, यदि मेरे जैसे फाँसी के असामी के हाथ से लिखे जायें तो क्या उससे प्राणदण्ड की आज्ञा देने वालों को कुछ शिक्षा भी मिलेगी? कदाचित् वे इतना करने लगें कि किसी को वधिक के हाथ सौंपते समय सब बातों पर अच्छी तरह विचार कर लें। हाय! ये इतना भी तो नहीं समझते कि प्राणदण्ड के अपराधी को कैसी पीड़ा होती है!

क्या वे कभी यह भी सोचते होंगे कि उस मनुष्य में, जिसे वे नष्ट

करना चाहते हैं, एक तर्कशक्ति है, जिसपर वह अपना जीवन स्थिर रखना चाहता है ? और उसमें एक आत्मा है, जो अमर है। नहीं, वे तो उसे निकृष्ट और पतित ही समझते हैं, जिसका न भूत, है न भविष्य।

परन्तु मेरी पंक्तियाँ उन्हें कायल करेंगी। कभी वे छपेंगी और फिर जो कोई उन्हें पढ़ेगा, वह कुछ क्षण के लिए तो इस प्रकार मरने वाले के दुःख का मनन करेगा। वे गर्व करते हैं कि वे जरा-सी पीड़ा देकर ही प्राण निकाल सकते हैं, पर यह क्या कुछ अच्छी बात है ? मानसिक पीड़ा के सामने शरीर-पीड़ा क्या हैसियत रखती है ? क्या कभी वह दिन भी आयेगा, जब मुझ जैसे अभागे व्यक्ति के अन्त समय के हार्दिक उद्‌गार उनपर प्रभावशाली होंगे ?

: ७ :

अच्छा, कल्पना करो कि मेरा लेख औरों के लिए हितकर ही सिद्ध हुआ, उसे पढ़कर जज लोग किसी को प्राणदण्ड देते समय आगा-पीछा ही करने लगे, यह भी सम्भव है कि बहुत से अपराधी बच जायें, पर इससे मुझे क्या ? जब मेरा सिर ही कट जायगा; तब दूसरे का कटे या न कटे, मुझसे मतलब ? मेरी मृत्यु के बाद यदि फाँसी की टिकटी नष्ट ही कर दी गई तो उससे मेरा क्या लाभ ? क्या यह सूरज, यह बहार, फूलों से हरे-भरे बगीचे, प्रभात में चहचहाते पक्षिगण, यह उज्ज्वल आकाश, यह प्रकृति, यह स्वतन्त्रता और जीवन सभी मुझसे छूट जायेंगे ?

ओह! मुझे अपने को ही बचाना चाहिए। क्या वास्तव में मैं बच नहीं सकता ? क्या सचमुच आजकल ही में वे मुझे ले जाकर मार डालेंगे ?

मैं अपना सिर इस दीवार से टकराकर चूर कर लूँ तो……!!

: ८ :

गिनकर तो देखूँ, अभी जीवन के कितने दिन बचे हैं।

तीन दिन तो अपील की तैयारी के लिए हैं। आठ दिन कचहरी के दफ्तर में लग जावेंगे। फिर मिसिल मिनिस्टर के पास भेजी जावेगी। १५ दिन वहाँ लग ही जायेंगे। उसे तो इतना भी होश न होगा कि मेरे पास कोई मिसिल पड़ी है। वह उसे जाँचेगा और जाँचकर अपील-कोर्ट मे भेज देगा। फिर उसके विभाग होंगे और नम्बर पड़ेंगे, रजिस्टर में दर्ज

होगा, क्योंकि वहाँ तो फाँसियों का हिसाब-किताब ही रहता है, बारी-बारी से ही प्रत्येक की सुनवाई होती है। १५ दिन इसकी प्रतीक्षा में लग जावेंगे।

अपील कोर्ट बहुत करके बृहस्पतिवार को बैठेगी और बहुधा एकबारगी ही अर्जियों को नामंजूर करके मिनिस्टर के पास भेज देगी। वह उन्हें पब्लिक प्रॉसीक्यूटर के पास भेजेगा, वह जल्लाद से सलाह करके दिन नियत करेगा। इस बखेड़े में तीन दिन लग जायेंगे।

चौथे दिन पब्लिक प्रॉसीक्यूटर का सहकारी प्रातःकाल ही कपड़े पहनते-पहनते बड़बड़ाएगा—"आज यह मामला भी निबटा ! फिर यदि उसके दोस्तों ने उसका समय नष्ट न किया तो वह फाँसी की आज्ञाएँ निकालेगा, तारीख रखेगा, रजिस्टर में दर्ज करेगा, फिर कागज भेजेगा।

दूसरे दिन "पेलेसडि ग्रेव" में टिकटी खड़ी होगी। नगर में ढिंढोरा पीटकर सूचना दे दी जायगी। यह सब छः सप्ताह हुआ। युवती ने ठीक ही कहा था।

: ६ :

मैं मंसूबे गाँठ रहा हूँ। किन्तु यह व्यर्थ हैं। मुझे मुकदमे का तमाम खर्च चुका देने की आज्ञा हुई है, पर मेरा सर्वस्व बेच देने पर भी शायद यह सम्भव नहीं। यह फाँसी भी एक महँगा सुख है।

मेरी माता है, पत्नी है और बच्ची है। ३ वर्ष की भोली-भाली बालिका कैसी मधुर, कैसी सुन्दर और कैसी समझदार है। उसकी वे बड़ी-बड़ी काली आँखें और सुनहरे बाल ! अन्तिम बार जब मैंने उसे देखा था, तब वह २ वर्ष और १ मास की थी। इस प्रकार मेरी मृत्यु पर तीन अबलाएँ अनाथ होंगी। एक पति से हाथ धोवेगी, एक पुत्र से और एक पिता से। यह कानून तीन विधवाओं की सृष्टि करेगा।

मैं मानता हूँ कि मुझे ठीक सजा मिली है, पर इन निरपराध प्राणियों ने क्या किया था ? नहीं, उनका वास्तव में कोई कसूर नहीं है, वे तो व्यर्थ ही में बर्बाद किये जा रहे है। क्या यही न्याय है ?

बेचारी बुढ़िया माँ का मुझे ऐसा सोच नहीं, वह ६४ वर्ष की है। इस चोट की मार से वह न बच सकेगी। पर यदि वह कुछ दिन जीवित

भी रही तो अपने दिन दुक्खम-सुक्खम काट लेगी। और न मैं अपनी अभागिन पत्नी ही के लिए बेचैन हूँ। वह रोगिणी है, उसका दिमाग कमजोर है, वह शीघ्र ही मर जायेगी, यदि पागल न हो गई। सुना है, पागल लोग जल्दी नहीं मरते। पर यदि उसका सिर फिर जाय तो भी हर्ज नहीं, फिर उसे कुछ दु:ख न होगा। वह बहुधा सोया करेगी, यह भी तो मृत्यु से कम नहीं।

किन्तु मेरी बच्ची, मेरी भोली बिटिया, मेरी नन्ही मेरिया! जो केवल हँसना और खेलना ही जानती है, जो गीत गुनगुनाने ही में मग्न है, हाय! उसी की याद तो मेरा कलेजा चीरे डालती है।

: १० :

मेरी कोठरी की कैफियत सुनिए—

८ फीट मुरब्बा, गढ़े हुए पत्थरों की दीवारें, ९० डिग्री के अनुमान से परस्पर मिली हुई हैं। इसका फर्श बाहर की जमीन से कुछ ऊँचा है। दरवाजे की दाहिनी ओर एक सूराख है जिसमें से फूँस फेंका जाता है। इसी पर कैदी आराम करता, सोता और बैठता है, चाहे सर्दी हो या गर्मी। सिर के ऊपर आकाश की जगह गुम्बजदार छत है। इसमें मकड़ी के अनन्त जाले लटक रहे हैं। खिड़की एक भी नहीं है। दरवाजे की किवाड़ों में जो जालियाँ हैं, उन्हें लोहे की चादर से ढँक दिया गया है। पर मैं भूल कर रहा हूँ, दरवाजे के ऊपर ६ इंच चौकोर एक खुली जगह है, इसमें कटहरा लगा हुआ है। रात को जेलर इसे भी बन्द कर सकता है।

बाहर की ओर एक लम्बी गलियारी है। जेल के नियम को भंग करने वाले कैदी यहाँ रखे जाते हैं। प्रारम्भ की ३ कोठरियाँ प्राणदण्ड के लिए सुरक्षित हैं, क्योंकि ये जेल के निकट हैं और इन पर निगरानी करने मे अधिकारियों को सुभीता रहता है।

यह जेल विसेटर किले के पुराने खण्डहर हैं। इसे कार्डिनल आफ विनचेस्टर ने बनवाया था, जिसने जोन ऑफ आर्क को जलाने का हुक्म दिया था, ऐसा मैंने सुना है। सभी मुझे चिड़ियाखाने के जानवर की तरह देखते हैं। सदैव एक सन्तरी मुझपर तैनात रहता है। जब कभी दरवाजा खुलता है, मैं उसी के दो नेत्रों को अपने ऊपर घूरते देखता हूँ। अधिकारी-

गण इस कोठरी की हवा और रोशनी को काफी समझते हैं।

: ११ :

अभी दिन नहीं निकला है। यह रात कैसे काटूँ ? मुझे एक बात सूझी, मैं उठ खड़ा हुआ। लैम्प लेकर कमरे की दीवारों को देखने लगा। उनमें लेख, तस्वीर, नमूने, नक्शे और अनेक प्रकार की विचित्र आकृतियाँ बन रही थीं। इससे प्रतीत होता था कि जो कैदी यहाँ रहते रहे हैं, वे इसी प्रकार कोई-न-कोई अपना स्मृति चिह्न छोड़ गये हैं। ये या तो खड़िया से लिखी गई हैं या कोयले से, अथवा पत्थर खोदकर खून से। यदि मेरा चित्त स्थिर होता तो मैं बड़े चाव से जेल के पत्थर पर अंकित इस अद्भुत पुस्तक को, जिसके पृष्ठ सदा खुले रहते थे, बड़े चाव से मनन करता। मेरी इच्छा होती कि विचारों की वह गन्ध, जो इन दीवारों पर छिटकी हुई है, एक जगह इकट्ठी कर लूँ। प्रत्येक व्यक्ति के अंकित भाव चुन-चुनकर रख लूँ और फिर इन अधूरे वाक्यों को, बिखरी हुई पंक्तियों को, अर्थहीन शब्दों को, जो मस्तक-हीन शरीर की तरह पड़े हुए हैं—जैसे कि इनके लेखक—जीवनपर्यन्त मनन करूँ।

मेरे बिस्तरे से जरा ऊपर दो हृदय अंकित थे। उनमें तीर मारा गया था और उनमें से रक्त की धार बह रही थी। इसका शीर्षक था—'जीवन का प्यार।' किसी अभागे की इच्छा पूरी न हो पाई थी। इसी के पार्श्व में एक तिकोना टोप बना हुआ था, जिसके नीचे एक छोटी-सी सुन्दर तस्वीर कत्ल की हुई बनाई गई थी। उस पर ये शब्द अंकित थे—"सम्राट् चिरजीवित रहें, १८२४।"

फिर मैंने जलते हुए हृदय देखे। उन पर आदर्श वाक्य थे—मैं मेथियस, डरविन फेक्यूज को प्यार करता हूँ। सामने की दीवार पर "पापा बोइन" लिखा हुआ था। पहला अक्षर कुछ मिट गया था। इसके अलावा एक फोश गीत भी लिखा हुआ था। एक पत्थर में स्वतन्त्रता की टोपी खुदी हुई थी। इसका नाम था "वोविस प्रजातंत्र।" यह लारो चेले के अफसर का नाम था। हाय ! बेचारा वह युवक······!

राजनीतिक आवश्यकताएँ भी कैसी भयानक हैं, देखो न, मैं भी उस युवक पर तरस खाता हूँ। ओह ! मैंने तो सचमुच अपराध किया है और

खून बहाया है।

अब आगे मैं न देख सका, क्योंकि सफेद चाक से आगे फाँसी की टिकटी का स्पष्ट चित्र था। कैसा भयानक ! कैसा भीषण !! मेरे हाथों से लैम्प छूट गया !!!

: १२ :

मैं लौटकर बिछौने पर आ बैठा, दोनों हाथों से मुंह छिपाकर और घुटनों पर सिर टेककर। मेरा बाल्य-भय दूर हुआ और मुझे फिर कुछ देखने की उत्कण्ठा हो गई।

पापा बोइन के नाम के पास से मैंने धूल से भरा हुआ एक मकड़ी का जाला तोड़ दिया था। इसके नीचे चार नाम थे। डण्टन १८१५, पोलेन १८१८, जेन मारटेन १८२१, कास्टेंग १८२३। इन नामों को पढ़ते ही मुझे एक भयानक स्मरण हो आया। डण्टन ने अपने भाई को काट डाला था और पैरिस जाते समय उसका सिर कुएं में फेंक दिया था और शेष भाग नाले में। पोलेन ने अपनी स्त्री को मार डाला था। जेन मारटेन ने अपने बाप को गोली मार दी थी, जबकि वह बाहर खिड़की से झाँक रहा था। कास्टेंग एक डाक्टर था, जिसने अपने मित्र को विष दे दिया था। पापा बोइन एक भयंकर पागल था, जिसने छुरे से अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को काट डाला था। ये लोग—मैं सोचते-सोचते काँप गया—इस कोठरी मुझसे पहले रह चुके हैं। यही फर्श है, जिस पर बैठकर उन्होंने अन्तिम घड़ियाँ गिनी हैं, इसी छोटे से दरवाजे पर उनके मस्तक झुके हैं। वे उस समय पशु-तुल्य हो रहे थे। एक के बाद एक तेजी से वे आये। यह कोठरी कभी खाली न रही। अब उन्होंने यह कोठरी मुझे दी है। आज मैं उन्हीं की श्रेणी में हुआ। मैं कोई देव नहीं हूँ, सिद्ध नहीं हूँ, फिर मुझे भय क्यों न लगे ? मुझे ये नाम अग्नि की ज्वाला से लिखे गये दीख रहे थे। मेरे कानों में ध्वनि आ रही थी। आँखें जल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोठरी में मनुष्य ही मनुष्य भर गये हैं। उनके बायें हाथों में अपने-अपने सिर हैं और मुंह के बल उन्हें पकड़े हुए हैं, क्योंकि उनके बाल तो काट ही डाले गये थे। मेरा रोम-रोम खड़ा हो गया। मैंने आँखें बन्द कर ली। अब सब कुछ स्पष्ट दीखने लगा।

वह स्वप्न था या नाटक का दृश्य, अथवा भीषण सत्य ? मैं ज्ञान-शून्य हो चला था। मैं हिम्मत कर रहा था, पर गिरने ही वाला था। एक ठण्डी चीज मेरे पैर पर से फिर गई। यह वही मकड़ी थी, जिसका जाला अभी मैंने तोड़ा था और जो अब बचकर भाग रही थी। इस घटना से मुझे होश हुआ। पर ओह ! कैसी भयानक बात थी !

नहीं जी, वह केवल कल्पना थी—मस्तिष्क-विकार मात्र। मरने वाले मर गये और कब्र मे गाड़ दिये गये। यह जेल थी और इससे छुटकारा मिलना शक्य न था, पर मै डरा क्यों ? कब्र का द्वार तो इधर नही है।

: १३ :

ओह, यदि मैं भाग जाऊँ ? पर खेतों को कैसे पार करूँगा ? आह ! लेकिन मुझे भागना तो नहीं चाहिए। लोग मेरी ओर देखने और मुझपर सन्देह करने लगेंगे। मैं धीरे-धीरे चलूँगा। अपने चेहरे पर नीचे की ओर मैं पुराना रूमाल बांध लूँगा। यही तो मालियों का वेश है। मैं एक कुँज को जानता हूँ, जो पास ही है, बचपन में मैं वहाँ मछली पकड़ने स्कूल के साथियों के साथ जाया करता था। मैं वहाँ रात तक छिपा रह सकता हूँ।

जब रात हो जायेगी तब फिर चलना शुरू कर दूँगा। मैं बिनसेनस जाऊँगा, नहीं जी, बीच में नदी जो पड़ती है, उचित तो यह होगा कि मैं सेंट जरमैन होकर जाऊँ। वहाँ से हावरे, हावरे से फिर इंग्लैण्ड के लिए जहाज मिल सकता है। फिर मैं चलकर लौंग जूम्यू आ जाऊँ। यहाँ पुलिस-मैन पासपोर्ट माँगेगा, मैं कह दूँगा कि खो गया।

ओ ! अरे बदनसीब ! पहले पत्थर की इन दीवारों को तो पार कर, जो तुझे चारों ओर से घेरे हुए हैं। मृत्यु ! मृत्यु !!

मुझे स्मरण होता है कि जब मैं बिल्कुल बच्चा था, तब मुझे यहाँ पागल आदमी दिखाने लाया गया था।

: १४ :

इस समय, जबकि मैं यह लिख रहा हूँ, मेरे लैम्प का प्रकाश धीमा पड रहा है। दिन निकल रहा है, लो ६ बज रहे हैं।

परन्तु इसके क्या मानी ? वार्डर मेरी कोठरी में आया, उसने टोपी उतारी, और नम्रतापूर्वक कहा—क्या आप नाश्ता करेंगे ?

मेरा रक्त थम गया। क्या आज ही अन्त है !

: १५ :

निस्सन्देह आज ही। जेल-गवर्नर आकर मिला। उसने मुझसे कुछ योग्य सेवा पूछी फिर उसने कहा—मेरी या किसी कर्मचारी की कोई शिकायत तो नहीं ? मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में भी उसने बड़ी तत्परता दिखाई, रात कैसी कटी, यह भी पूछा। चलती बार उसने मुझे 'श्रीमान्' कहकर पुकारा।

सब आज ही समाप्त है।

: १६ :

जेलर को यह तो विश्वास ही नहीं हो सकता कि मैं उनके विरुद्ध कुछ शिकायत कर भी सकता हूँ। यह ठीक ही है। यह कृतघ्नता होगी, यदि मैं उनकी शिकायत करूँ। वे तो अपना कर्तव्य ही पालन करते हैं। उन्होंने मेरी खूब निगरानी की है। क्या मुझे इसी पर न सन्तोष करना चाहिए ? यह जेलर जिसका मन्द हास्य और कोमल शब्द-जाल, सतर्क दृष्टि, लम्बे और बलिष्ठ भुजदण्ड, आधा मनुष्य और आधा जेलखाना है। मैं इसका शिकार हूँ। यह मुझे जकड़ता है, फन्दे में फँसाता है, इन दीवारों में बन्द करता है, जंजीरों में कसता है। हाय, मैं भी कैसा अभागा हूँ ? मेरा क्या होना है ? मेरे साथ क्या किया जायेगा ?

: १७ :

मैं स्तब्ध हूँ। सब निपट चुका। होनहार होकर रहेगी। गवर्नर के आने से जो मुझपर चिन्ता का भार था, वह उतर गया। मैं समझ गया, अब कुछ भी आशा नहीं है।

हुआ यह कि साढ़े छः बजे मेरी कोठरी का दरवाजा खुला, एक शुभ्रकेशी वृद्ध ने मेरी कोठरी में प्रवेश किया। उन्होंने अपना लबादा उतारकर रख दिया, मैं पहचान गया कि पादरी हैं।

यह जेल के पादरी न थे। मुझे यह बात अच्छी न लगी। वे मेरे पास बैठ गये। अपने नेत्रों को आकाश की ओर करते हुए उन्होंने कहा—मेरे पुत्र, क्या तुम तैयार हो ?

मैंने धीमे स्वर में कहा—मैं तैयार नहीं, तत्पर हूँ।

किन्तु मेरी दृष्टि धुँधली पड़ गई। मुझे ऐसा प्रतीत होता था, मानो एक शोक-गीत मेरे कानों के पास गाया जा रहा है। मैं कुर्सी पर बैठा था, पर मुझे होश न था। पादरी बातें कर रहे थे, उनके होंठ, आँखें और हाथ हिलते दीख रहे थे, पर मैं कुछ सुन न रहा था।

दरवाजा फिर खुला। मैं चौंक पड़ा। गवर्नर ने कोठरी में प्रवेश किया। इनके साथ एक और व्यक्ति था जो काली पोशाक में था, इसने मुझे झुककर सलाम किया। उसके हाथों में एक कागज का मुट्ठा था।

उसने कहा—महाशय! मैं कोर्ट ऑफ जस्टिस का एक मीर मुन्शी हूँ और पब्लिक प्रॉसीक्यूटर से एक समाचार लाया हूँ।

मेरा भय जाता रहा, फिर मुझमें ज्ञान-शक्ति उदय हो गई।

मैंने पूछा—पब्लिक प्रॉसीक्यूटर मेरा सिर चाहते हैं, यही न? यह तो मेरा सौभाग्य है, मैं विश्वास करता हूँ कि मेरी मृत्यु से वे प्रसन्न होंगे।

उसने पढ़ना शुरू किया। वह प्रत्येक शब्द के अन्त में जोर देता था।

मेरी अपील खारिज हो गई थी।

सुना चुकने पर उसने कहा—"डी ग्रेव" नामक स्थान पर फाँसी लगाईजायेगी। फिर उसने बिना मेरी ओर देखे कहा—ठीक साढ़े सात बजे हम लोगों को चलना होगा। सज्जनवर! क्या आप हमारे साथ कृपया चलेंगे?

उसकी अन्तिम पंक्तियाँ तो मैंने सुनी ही नहीं। गवर्नर पादरी से कुछ कह रहा था। मीर मुन्शी की दृष्टि अपने कागजों पर थी, पर मेरी तो अधखुले द्वार पर टकटकी लग रही थी। आह! मेरा दुर्भाग्य तो देखो! वहाँ चार सन्तरी मुस्तैद थे।

इस बार मेरी ओर दृष्टिपात करके मीर मुन्शी ने फिर मुझसे पूछा—जब तुम्हारी इच्छा हो।

मैंने कहा—जब तुम्हें सुभीता हो।

उसने झुककर अभिवादन किया और आधे घण्टे में आने को कहकर चला गया। गवर्नर और पादरी भी चले गये। मैं अकेला रह गया। हे परमेश्वर! क्या भागने की कोई सूरत नहीं? कोई आशा नहीं? अरे! मैं भागूँगा। दरवाजे से, खिड़की से, छत से, जैसे बन सके वैसे।

ओह इन भीषण, दैत्याकार दीवारों में मैं एक मास पड़ा रहा! अब इन्हें विदीर्ण करने को मेरे पास एक कील भी तो नहीं, अरे! एक घण्टे का समय भी तो नहीं!

: १८ :

ठीक साढ़े सात बजे मीर मुन्शी ने द्वार पर आकर कहा—जनाब! मैं आपकी प्रतीक्षा में खड़ा हूँ।

"तुम! और भी तो हजारों—क्यों?"

मैं उठ खड़ा हुआ। मैं उसकी ओर चला। ऐसा प्रतीत होता था कि सिर बहुत भारी हो गया है और टाँगें बिल्कुल कमजोर हैं। मैं साहस करके चला। कोठरी से मैंने विदा ली। मुझे इससे भी मोह हो गया था।

जेल से बाहर आने पर गवर्नर ने प्रेम से मुझसे हाथ मिलाया। वही काली हत्यारी गाड़ी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। चारों ओर मनुष्यों की अपार भीड़ थी। वर्षा हो रही थी। हाय! वर्षा से प्रथम ही मैं समाप्त हो जाऊँगा!

मैं गाड़ी में जा बैठा। मेरे ऊपर आठ आदमी नियुक्त थे। गाड़ी चली। घोड़ों की टाप, पहियों की घड़घड़ाहट, कोचवान के कोड़ों की सरसराहट मैं सुन रहा था। मानो कोई हवा में उड़ाये लिये जाता हो। मेरी दृष्टि एक मकान पर लगे पत्थर पर पड़ी। उसपर लिखा था—

"वृद्धों का अस्पताल।"

मैंने चिल्लाकर कहा—हाँ! अवश्य ही कुछ लोग वृद्ध भी होते हैं।

गाड़ी एकाएक मुड़ी, पादरी ने मुझसे बातें करनी शुरू कीं। पर मेरा उधर ध्यान ही न था। मैं उसकी बातें सुन तो रहा था, मगर ध्यान नहीं दे रहा था।

मीर मुन्शी ने जरा ऊँचे स्वर से कहा—देखो तो, कैसी खराब गाड़ी है, कितनी धचकियाँ लग रही हैं। कितना खड़खड़ हो रहा है, बात ही नहीं कान पड़ती। मैं कह रहा था—कोई नयी खबर भी सुनी है, जिससे पैरिस भर में खलबली मच गई है।

पादरी ने कहा—नहीं, मुझे आज का अखबार पढ़ने की फुर्सत ही कहाँ मिली? शाम को पढ़ूँगा।

"क्या सचमुच ?" मुन्शी ने कहा।

मैंने कहा—मैं जानता हूँ।

"आप ? अच्छा आपका इस विषय में क्या मत है ?"

"तुम इतने उत्सुक हो ?" मैंने कहा।

"नहीं जनाब, सभी का यह हाल है। राजनीतिक मामलों में तो सभी की अपनी-अपनी राय होती रही है। मैं तो कौमी गार्ड बनाने के पक्ष में हूँ। मैं अपने गिरोह का सारजेण्ट था और सचमुच बड़ा प्रसन्न था।" मैंने टोककर कहा।

"पर मैं तो कुछ और ही समझ रहा था।"

"वह क्या ?"

"कुछ दूसरी ही बात।"

"जरा सुनाइए तो आप लोग किस तरह ऐसे समाचार पा लेते हैं ? शायद आप नहीं जानते, मैं समाचारों का कितना शौकीन हूँ। कहिए, मैं सभापति को सुनाऊँगा, उन्हें इन बातों में बड़ा मजा आता है।" वह बकता ही रहा।

अन्त में उसने कहा—"आप क्या सोच रहे है ?"

"यही कि आज सन्ध्या को कुछ न सोचना पड़े।"

"आह ! आप इस दुःखदायी विचार में फँसे हैं, इतना दिल छोटा न करिए, प्रसन्न रहिए। मि० पापा बोयन तो रास्ते-भर बातें करता और सिगरेट पीता गया था। मैं ही तो उसे हिफाजत से ले गया था। आप साहस न छोड़ें, वह तो संसार से घृणा करते थे। पर मेरे युवक मित्र! तुम सचमुच बड़े उदास हो।"

मैंने रुखाई से कहा—"युवक ? युवक कहते हो ? मैं तुमसे तो बड़ा ही हूँ, प्रत्येक १५ मिनट में एक वर्ष बढ़ रहा हूँ।"

वह आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगा।

"आप दिल्लगी करते हैं—मेरी उम्र आपके दादा के बराबर है।"

"दिल्लगी नहीं करता।" मैंने गम्भीरता से कहा।

"जनाब, नाराज न होइएगा।" यह कहकर उसने नस्य की डिबिया निकाली।

मैंने कहा   मैं नाराज नहीं हूँ

इतने में गाडी का धक्का लगा डिबिया उसके पैरो पर गिरकर बिखर गई। वह चिल्ला पडा   ' मैं कैसा बदनसीब हूँ, देखो मेरी सारी नस्य नष्ट हो गई।''

''और मैं तो स्वयं ही नष्ट हो रहा हूँ।'' मैंने मुस्कराकर कहा।

उसने नस्य बटोरते हुए बड़बड़ाकर कहा—''अधिक नष्ट हो रहे हो? यह कहना ही आसान है जनाब! यह नस्य तो पैरिस के अलावा कहीं न मिलेगी।'

पादरी ने उसके प्रति खेद प्रकट किया। मैं मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। वे दोनों बातों में लगे और मैं विचार-सागर में डूब गया।

कुछ देर के लिए गाड़ी चुंगी के दफ्तर के सामने रुकी। एक कर्मचारी ने उसकी जाँच की। अगर कोई पशु वध करने को जाता तो वहाँ टैक्स लगता, पर आदमी मुफ्त जा सकता था।

हम आगे बढ़े। सैण्ट मारकेड पहुँचने पर भीड़-की-भीड़ हमारे पीछे लग गई। सबके हाथ में एक-एक अखबार था और वे बड़ी उत्सुकता से उसे पढ़ रहे थे।

साढ़े आठ बजे हम कन्सेस ग्रे पहुँचे। इसे देखते ही मेरे रक्त की गति रुक गई। गाड़ी रुकते ही मैंने सोचा, अवश्य मेरे हृदय की धड़कन भी रुक जायेगी। मैंने साहस किया। फाटक खुला। मैं नीचे उतरा। झटपट सिपाहियों ने मुझे घेर लिया। भीड़ बड़ी उत्सुक होकर देख रही थी।

: १६ :

जब तक मैं कोर्ट आफ जस्टिस की सड़क पर होकर चलता रहा, तब तक तो मैं मजे में था, पर जब मैं एक छोटे दरवाजे में घुसकर गुप्त और तंग मार्ग से चला, जहाँ केवल जज या अपराधी ही जा सकते हैं, तो मेरी हिम्मत टूट गई।

मीर मुन्शी मेरे साथ था। पादरी दो घण्टे में लौट आने को कह गया था। गवर्नर के कमरे में ले जाकर मीर मुन्शी ने मुझे उसके सुपुर्द किया। जब मुन्शी जाने लगा तो गवर्नर ने उसे ठहरने को कहा क्योंकि एक दूसरा कैदी इसी समय वहाँ तैयार था, जो बिसेटर के किले की उसी कोठरी में,

जहाँ से मैं आया था, बन्द होने वाला था। कैदी ले जाना और ले आना उसी के सुपुर्द था। उसने कहा—"अच्छी बात है, मैं ठहरा हूँ। दोनों का इत्तलानामा एक साथ ही निकाल दें।"

जब यह सब हो चुका तो मैं डाइरेक्टर के दफ्तर के पास वाली कोठरी में बन्द कर दिया गया। दरवाजा इसका भी बहुत मजबूत था।

मुझे कुछ खबर नहीं, कितनी देर वहाँ रहा। जोर से हँसने की आवाज सुनकर मैं चौंका। एक खूब तगड़ा ५५ साला बूढ़ा सामने खड़ा मुस्करा रहा था। कपड़े मैले थे।

द्वार खुला हुआ था और वह बिना सूचना के ही घुस आया था। क्या मृत्यु भी इसी तरह घुस आयेगी? कुछ देर हम दोनों परस्पर देखते रहे, उसके नेत्रों में गम्भीरता थी, मेरे नेत्रों में भय और आश्चर्य।

"तुम कौन हो?" मैंने चिल्लाकर कहा।

"क्या खूब!" उसने हँसकर कहा।

"इसका क्या मतलब?" मैंने पूछा।

उसने खूब जोर से हँसकर कहा—"६ हफ्ते में यही छुरा मेरा सिर धड़ से जुदा करेगा, जो ६ घण्टे में तुम्हारा करने वाला है। अब समझे?"

मैं पीला पड़ गया। मेरे रोंगटे खड़े हो गये।

उसने कहना शुरू किया—"मैं एक नामी चोर का बेटा हूँ। चारलट मे उसे फाँसी मिली थी। ६ वर्ष की आयु में मैं अनाथ हो गया। मैं आवारा फिरा करता था। जाड़े के दिनों में नंगे पैरों कीचड़ मे भागता फिरता था। उँगलियाँ लहूलुहान हो जाती थीं। पाजामें में सैकड़ों छेद थे।

"नौ वर्ष की आयु में मैंने जेब काटने और कपड़े चुराने शुरू किए और दसवें वर्ष में पूरा जेबकट बन गया। पुलिस मेरे पीछे पड़ी और आखिर मैं पकड़ा गया और १५ वर्ष जेल में रहा। ३२ वर्ष की आयु में मैं छूटकर बाहर आया। उन्होंने मुझे एक पीला पासपोर्ट और ६६ फ्रेंक दिये। यह मेरी १५ वर्ष की १६ घण्टे रोज परिश्रम करने की कमाई थी। अब मेरी इच्छा भले आदमी की तरह रहने की थी, पर इच्छा से ही क्या होता है? मेरे पासपोर्ट पर लिखा था—"छूटा हुआ कैदी।" मैं जहाँ भी जाता, लोग घृणा करते और मुँह फेर लेते। मुझे कहीं भी मजदूरी नहीं मिली। एक-

एक करके मेरे सारे फ्रेंक खर्च हो गये और मेरी जीवित रहने की इच्छा बनी रही। मैं अपने बलिष्ठ बाहु दिखा-दिखाकर लोगों से कहता कि मैं बहुत अच्छा काम करूँगा और कम-से-कम मजदूरी लूँगा। पर फल कुछ न हुआ। अब क्या करूँ? एक दिन बहुत भूखा था। नानबाई की दुकान से एक रोटी चुरा ली। हाय! मैं उसे खा भी न सका था कि पकड़ा गया। फिर वहीं भेज दिया गया। मेरे कन्धे पर तभी का एक निशान है, तुम देख सकते हो। मैं टोलून में कैद किया गया। मैंने भागने की चेष्टा की। तीन दीवारें तोड़नी थीं, जंजीर काटनी थी और सिर्फ एक कील पास थी, पर मैं भाग गया।

"अब मैंने मार-धार शुरू की। जहाँ मौका पाता, बेधड़क मनुष्यों को मार डालता और उन्हें लूट लेता। अन्त मे फिर पकड़ा ही गया। अन्त सभी का है। लड़के, यही मेरी कहानी है।"

मैं एकदम काँप रहा था। वह जोर से हँसा और मेरा हाथ पकड़ना चाहा। मैं हट गया। उसने कहा—"मेरे दोस्त, निराश मत हो। प्रयत्न करो और मृत्यु की बाजी लगाओ। टिकटी पर कुछ क्षण कष्ट मिलेगा, पर शीघ्र ही सब समाप्त हो जायेगा। मैं चाहता हूँ कि तुम्हें दिखा दूँ कि किस तरह अन्तिम उछाल मारी जाती है। मुझे प्रसन्नता होगी, यदि वे तुम्हारे साथ मेरी भी आज ही अन्तिम हजामत करें। एक ही पादरी दोनों को उपदेश दे। तुम चाहो तो प्रथम अवसर तुम्हें ही मिल सकता है। कहो, मैं कैसा सुजन पापी हूँ?"

वह फिर मेरी तरफ बढ़ा। मैंने उसे पीछे ढकेलकर कहा—"महाशय! आपको धन्यवाद है।"

वह खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"महाशय! महाशय तुम अपने आपको कहो, यदि तुम हो।"

"पर अन्तिम समय क्यों नवाबी छाँटते हो?"

मैंने बाधा देकर कहा—"मित्र! मुझे अकेला छोड़ दो, मैं अपने आपको सावधान कर लूँ।" क्षणभर को वह गम्भीर हो गया। उसने सिर हिलाकर कहा—"तुम्हें पादरी की आशा है?" फिर उसने मुझे घूरकर कायरता से कहा—"अच्छा देखो, तुम तो महाशय हो ही, उदार भी हो।

यह जो तुम्हारे पास बड़ा-सा इतना अच्छा कोट है, यह अब तुम्हारे किस काम आयेगा ? इसे मुझी को दे दो, मैं इसे बेचकर तम्बाखू ले लूँगा।"

मैंने कोट उतार कर उसके हवाले कर दिया। उसने प्रसन्न होकर बच्चों की तरह ताली बजाई। मैं अकेली कमीज में सर्दी से काँप रहा था। उसने यह देखकर कहा—"ओह ! तुम्हें सर्दी लग रही है। वर्षा भी तो हो रही है। लो, इसे पहन लो।" इतना कहकर उसने अपना फटा कोट मेरी बाँहों में अटका दिया।

मैं विमूढ़-सा दीवार के सहारे खड़ा था। उसने कहकहा लगाकर कहा—"जेबें तो नयी हैं। काला भी खूब है। कम-से-कम १५ फ्रैंक तो मिलेंगे ही। कैसी प्रसन्नता की बात है, ६ सप्ताह के तम्बाकू का खर्च चल जायेगा।"

द्वार फिर खुला। वे हमें उस कमरे में ले गये, जहाँ अपराधी अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा में बैठते हैं। वह बीच में जा खड़ा हुआ और हँसकर कहा—"कुछ गड़बड़ नहीं। इन सज्जन ने मुझसे कोट बदलौवल कर लिया है। परन्तु मैं स्थान नहीं बदलूँगा। अब ६ सप्ताह के तम्बाकू की तो बेफिक्री हुई।"

: २० :

१० बजे हैं। ओह ! मेरी नन्हीं-सी बिटिया ! ६ घण्टे में मैं मर जाऊँगा। मैं अपवित्र हो जाऊँगा। मेरा शरीर ठुकरा दिया जायेगा। सभी को मुझपर तरस आता है। वे मुझे छोड़ सकते हैं, पर छोड़ते नहीं—मारने का ही निश्चय किये बैठे हैं। मेरिया बेटी ! सुनती हो ! वे मुझे मार ही डालेंगे।

हे परमेश्वर ! मेरी बेचारी बच्ची ! मैं तेरा पिता हूँ, जो तुझे अत्यन्त प्यार करता था, जो तेरे कोमल-गुलाबी गालों को चूमता था, जो तेरे सुनहरे बालों में उँगलियों से घण्टों अठखेलियाँ किया करता था, जो तेरे सुन्दर मुखड़े को हाथों में पकड़कर घुटनों पर बैठाकर घण्टों नचाया करता था और सोने के समय हाथ जोड़कर प्रार्थना सिखाया करता था, अब तेरे साथ यह सब बातें कौन करेगा ? कौन प्यार करेगा ? तेरे जैसी बच्चियों के तेरे अतिरिक्त सभी के पिता होंगे। तू मेरी प्यारी बच्ची, मेरी जुदाई कैसे सहेगी ? कैसे अपने पिता को भूलेगी ? तू अनाथ हो जायेगी—

न पी सकेगी, न खा सकेगी।

आह ! यदि जूरी मेरी नन्हीं-सी बालिका को देख पाते, तो उस तीन वर्ष की बालिका के पिता को मारने की आज्ञा देने से प्रथम तीन बार अवश्य विचार करते।

जब वह बड़ी होगी और जीवित रही तो क्या सोचेगी ? उसके पिता को पैरिस में कुछ दिन लोग याद रखेंगे। वह दर-दर फिरेगी। मेरी बुराई सुनेगी। अरी मेरी प्यारी मरे ! क्या तुम मेरा अपमान सहलोगी ?

अभागे ! मैंने कैसा अपराध कर डाला ?

: २१ :

ओ क्षमा, मेरी क्षमा ! शायद बच ही जाऊँ। राजा चाहे तो बचा सकता है। अरे कोई दौड़ो। कौन्सिल से फरियाद करो, मुझे जन्म-कैद मजूर है। ५ साल हो या २० साल की, लोहे के गर्म तकुए से दागना भी सह लूँगा, पर मुझे जीवित रहने दो। मेरी जान छोड़ दो, कैदी जीता तो है, घूमता तो है, चलता-फिरता तो है ! सूरज और आकाश को देखता तो है ! !

: २२ :

पादरी फिर आ गया। वह उदार, सरल और सज्जन है। पर मुझपर उसके उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी मैं उससे प्रसन्न हूं। वही एक व्यक्ति है जो मुझे व्यक्ति के भाव से देखता है। मधुर शब्दों के लिए मैं कितना तरसता हूँ।

हम दोनों बैठ गए। वह कुर्सी पर और मैं बिस्तर पर। उसने कहा—"पुत्र ! क्या तुम्हारा ईश्वर में विश्वास है ?"

"हाँ, पवित्र पिता।" मैंने कहा।

"क्या तुम रोमन कैथोलिक चर्च पर विश्वास करते हो ?"

"अवश्य !"

उसने फिर कहा—"पुत्र ! मुझे भय है कि व्याकुल हो रहे हो।"

फिर बहुत-सी बातें कहीं। अन्त में दृष्टि उठाकर मेरी ओर देखा। उसने पूछा—"क्यों ?"

मैंने कहा—"आपकी बातें मैंने प्रथम उत्सुकता से, फिर ध्यान से और

सके बाद श्रद्धा से सुनी हैं।"

मैं अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। मैंने कहा—"पवित्र पिता! आप कुछ क्षण के लिए मुझे अकेला छोड़ दें, विनती करता हूँ।"

"फिर कब आऊँ?"

"मैं कहला दूँगा।"

वह चला गया। शायद वह सोचता था, नास्तिक है, पर नहीं, ईश्वर मेरा साक्षी है, मैं नास्तिक नहीं हूँ। परन्तु उसने वही बातें तो मुझसे कही हैं, जो अन्य कैदियों से कहता है। मुझे उसके उपदेश में कोई प्रभाव, उच्चता और शक्ति नहीं दिखी। उसका काम ही यही है, इसी का उसे वेतन मिलता है। असामियों को टिकटी पर मरने के लिए धीरज दिलाना उसका नित्य का धन्धा है। उसने बाइबल के पन्ने छाँट रखे हैं, वही वह सबको सुनाता है।

ओह! यदि उसे न भेजकर मेरे पास कोई और वृद्ध पादरी भेजा जाता? वह इन उपदेशों के बदले मुझे आदेश देता। वह कहता कि एक आदमी को मरना है, आओ इस पर विचार करें। कल्पना करो तुम्हें उसके साथ उस समय तक रहना पड़े, जब वे उसे बाँध रहे हों और बाल काट रहे हों। उसके साथ तुम्हें गाड़ी पर जाना पड़े, उसे वध-स्थल तक पहुँचकर उसकी अन्तिम जीवन-लीला देखनी पड़े।

मैं तब भावावेश में धरती में घुटनों के बल बैठकर रोऊँ, वह भी रोवे, हम परस्पर अश्रु-विनिमय करें। मेरा हृदय कोमल हो और मैं अपनी आत्मा उसके सुपुर्द करूँ, तब मैं सचमुच आस्तिक हुआ।

परन्तु इस बुड्ढे से मेरा क्या सम्बन्ध है? मैं उसका कौन हूँ? एक तुच्छ कैदी, जैसे उसने सैकड़ों देखे हैं।

पर नहीं मेरी भूल है, उसे लौटाकर मैंने बुरा किया। मेरी उसासें मेरा सर्वस्व नष्ट कर रही हैं।

वे मेरे लिए बढ़िया खाना और पकवान दे गये, पर ज्योंही मैंने प्रथम ग्रास मुँह में दिया, मैं गले से न उतार सका। प्रत्येक वस्तु अत्यन्त कड़वी और बेस्वाद थी।

: २३ :

मैंने दोनों हाथों से आँखें बन्द कर लीं। बचपन की स्मृति-रेखा

सामने आती थी, किन्तु मैं उन्हें बलात् भुलाने की चेष्टा कर रहा हूँ।

वह विद्यार्थी जीवन, बगीचों की दौड़-धूप, खेल-कूद, सब एक के बाद दूसरा मेरी नजरों मे आने लगा, वह बालिका, जो सदा ही मेरे साथ खेला करती थी, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बे-लम्बे बाल, संगमरमर जैसा शरीर और गुलाब के खिले पुष्प की तरह मुखमण्डल, एक-एक करके नेत्रों में फिर गया। तब उसकी अवस्था १४ वर्ष की थी। नाम था 'पेपा'। माता ने हमें साथ खेलने की आज्ञा दे रखी थी। पर हम तो बातों ही में सारा समय बिताते थे। दोनों की उम्र बराबर थी।

एक वर्ष से अधिक तक हम खेले और लड़े-झगड़े, पके हुए सेब पर हमारी छीना-झपटी हो जाती थी। फिर हम दोनों ही माँ के पास आकर फरियाद करते थे। वह चलते-चलते मेरी बाँहों पर झुक जाती। ओह! कितने गर्व की बात थी! हम मस्तानी चाल से धीरे-धीरे बातें करते हुए टहला करते थे। उसका रूमाल कभी गिर पड़ता तब मैं उठाकर देता था। ओह! उस सुख-स्पर्श की बात क्या कहूँ? हम लोगों की बातों का विषय था पक्षियों की भाषा, धूप की चमक, स्कूल के साथी, कपड़े और बेल-बूटे, झालर। हमारे मन पवित्र थे, पर हम बहुधा शर्माया करते थे।

अब तो वह छोटी बालिका युवती बन गई है।

गर्मी के दिन थे और संध्या का समय। हम बाग में एक वृक्ष की शीतल छाया में बैठे थे। उसने अचानक बाँह पकड़कर कहा—"चलो दौड़ें।" वह चल दी। ओह, वह कितनी नाजुक, कितनी सुन्दर थी, कितनी कोमल थी! वह भागी, मैं भी दौड़ा। हवा से उसका वस्त्र उड़ गया। साफ बर्फ के समान गर्दन की एक झलक दीख पड़ी। मैंने लपककर उसे पकड़ लिया। वह हाँफते-हाँफते हँसने लगी और मैं एकरस उसकी रूप-सुधा पीने लगा।

उसने कहा—"आओ कुछ पढ़ें।"

हम पुस्तक खोलकर बैठे। वह पास खिसक गई। मुझसे पहले वह पृष्ठ समाप्त कर लेती थी। वह तेज थी। वह पूछती—"पढ़ चुके?" पर मेरा तो पृष्ठ आधा ही हुआ था। तब हमारे कंधे भिड़े, सिर छुए, बाल उलझे, साँसों की हवा मिली और फिर होंठ मिले। फिर जो पुस्तक पर दृष्टि डाली तो संध्या हो चुकी थी।

उसने कहा—"माँ, हम खूब खेले।"

मैं चुप था। माँ ने कहा—"क्यों बेटे! गुमसुम क्यों हो?"

हाय! वह संध्या तो जीवन के अन्त तक ही स्मरण रहेगी।

: २४ :

'होटल डीविले, सुन्दर तो नहीं, पर खूब बड़ा है। इसके आगे एक बड़ी-सी घड़ी लगी हुई है। इसकी सीढ़ियाँ मनुष्यों की ठोकरों से घिस गई हैं। जब किसी का प्राण-वध होता है तो भीड़-की-भीड़ इसकी खिड़कियों में उसका तमाशा देखने को आ जुटती है।

: २५ :

सवा बजा है। मेरा सिर फटा जा रहा है मानो खून बड़ी तेजी से सिर में चक्कर खा रहा हो। ठण्ड लग रही है। कँपकँपी छूट रही है। कलम छूट गई। आँखों से धारा बह रही है। भौंहें फटी जाती हैं। २ घण्टे और ४५ मिनट में सब रोगों की चिकित्सा हो जायेगी।

: २६ :

बहुत लोग यह कहते है कि दुःख कुछ वस्तु ही नहीं है। विज्ञान ने मृत्यु को बड़ा सरल बना दिया है।

तब फिर, मैं ६ हफ्ते से दुःख पा रहा हूँ, वह क्या है? यह आज का दिन धीरे-धीरे तेजी से बीत रहा है, क्या यह कम दुःख है? मैं मौत की टिकटी पर चढ़ने की प्रतीक्षा में बैठा हूँ।

कदाचित् वे इसे दुःख नहीं कहेंगे।

: २७ :

पर क्या दुःख कोई वस्तु नहीं है? क्या उनका कथन सत्य है? उनसे ऐसा किसने कहा? क्या ऐसा कोई उदाहरण है जिसमें किसी आदमी का सिर कट रहा हो, खून बह रहा हो और वह कहे कि इसमें कुछ भी वेदना नही है?

क्या कोई मृतक मशीन वाले को धन्यवाद देने आया है कि तुम्हारी मशीन बहुत अच्छी है, इससे मरने में जरा भी कष्ट नहीं हुआ।

एक क्षण में प्राण निकल जाते हैं, यह ठीक है, पर वे क्या स्वयं भी कभी इस पर लेटे हैं? जब एक भारी छुरा धड़ाम से गिरता है, मांस को

गट डालता है, नसों की कुट्टी कर देता है और सारे शरीर में हड़कम्प पैदा कर देता है। यह सारी वेदना क्षण-भर के लिए तो है, पर है कितनी भयानक !

: २८ :

कैसी अद्‌भुत बात है कि मैं रह-रहकर महाराज की बात सोच रहा हूँ। मेरे कान मे कोई कह रहा है—"वह इस समय इसी नगर में है। एक विशाल महल मे, जहाँ पहरे लग रहे है, पर उन्नत दशा में, और मैं अवनत मे हूँ। उसके चारों ओर विजय, प्रेम, आनन्द और आदर बिखरा पड़ा है। धन-दौलत ठोकर में है। इस समय उसका दरबार लग रहा होगा या वह शिकार खेलने गया होगा। लोग उसके आमोद-प्रमोद की सामग्री जुटाने मे लगे होंगे।"

यह मनुष्य भी तो मेरी ही तरह हाड़-मांस का बना हुआ है। इसकी कलम क्षण-भर में मेरी मृत्यु-वेदना नष्ट कर सकती है ? और मैं जीवन, स्वतन्त्रता, परिवार, धन, सब कुछ प्राप्त कर सकता हूँ। वह दयावान है, वे कहते हैं, वह तुम्हें छोड़ सकता है। पर अब तो कुछ भी न हो सकेगा ! !

: २९ :

किन्तु मुझे वीरता से मृत्यु का मुकाबला करना चाहिए ? मृत्यु से मैं पूछूँ भी तो कि तू क्या है ? तेरी क्या इच्छा है ?

मैं जब नेत्र बन्द कर, कल्पना-जगत् में विचारता हूँ तो मुझे एक प्रकाश दीखता है, और मैं उसमें खो जाता हूँ, आकाश प्रकाशमय है, और तारे मात्र धुँधले बिन्दु मात्र हैं।

कही आकाश से किसी अँधेरी खाड़ी में न गिर पड़ूँ ? ओह, मैं कितना भाग्यहीन हूँ ! मुझे ऐसा दीख रहा है कि भयानक मूर्तियाँ चारो ओर से मुँह फैलाकर मुझे खाने को तैयार बैठी हैं।

कुल्हाड़ा पड़ चुकने पर मैं उठूँगा, और जमीन पर लुढ़का-लुढ़का डोलूँगा। आँधी आवेगी और मेरा सिर लुढ़ककर दूसरे कटे हुए सिरो मे जा मिलेगा। वहाँ गढ़े और तालाब होंगे, जिनमें काला पानी भरा होगा।

जो-जो व्यक्ति पैलेस-डि-ग्रेवे में मरते हैं, वे कहीं मिलते भी तो होंगे

वे लोग पीले हो गए होंगे, खून बह रहा होगा।

शोक! ओ मृत्यु! तू कैसी भयानक है!

: ३० :

मैंने उनसे पूछा—क्या कुछ देर सो लूँ? मेरे सिर में खून इकट्ठा हो रहा है, इसलिए थोड़े विश्राम की आवश्यकता है। यह मेरे जीवन की अन्तिम नींद है।

मैं स्वप्न देख रहा हूँ। रात का समय है, मित्रों के साथ मैं पढ़ रहा हूँ, मेरी स्त्री कमरे में सो रही है, बच्ची भी उसी के पास है, हम लोग उनके जागने के भय से धीरे-धीरे बात कर रहे हैं।

एक खड़का सुनकर हम चौंके। सोचा, चोर आया है। मानो हम लोग चोर ढूँढ़ने लगे। हमें ऐसा प्रतीत हुआ, द्वार के पीछे कोई छिपा खड़ा है। मैं साहस करके उधर गया। देखा, एक वृद्धा दीवार से चिपककर खड़ी है। उसकी आँखें बन्द है और बाँहें मुर्दों जैसी लटक रही हैं।

मैं डर गया। मेरे रोंगटे खड़े हो गए। पूछा, तू कौन है?

जवाब नहीं मिला।

फिर पूछा—कौन?

वह न हिली न डुली, न आँखें खोली।

"अवश्य ही यह चोरों के साथ थी। यह भाग नहीं सकी है।" मेरे मित्र ने उसे धक्का दिया, वह धड़ाम से धरती पर आ गिरी। मैंने उसे फिर उठाकर दीवार के सहारे खड़ा कर दिया। फिर भी वह न बोली।

मेरे मन में भय और क्रोध दोनों उठ रहे थे। मैंने हाथ की बत्ती उसकी ठोढ़ी से लगा दी। उसने आधी आँखे खोल दीं, पर उनमें कुछ भी प्रभाव न था। वह पुकारने पर भी न बोली। मैंने फिर बत्ती लगा दी। उसने फिर आँखे खोलीं, घूरकर हमें देखा और झुककर फूँक से बत्ती बुझा दी। अँधेरा हो गया। उसी अँधेरे में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी ने तेज दाँत मेरे हाथ में गाड़ दिए हों।

मैं काँपकर उठ बैठा। पसीनों में नहा गया था। वही बुड्ढा पादरी बैठा प्रार्थना पुस्तक पढ़ रहा था। मैंने पूछा—"क्या मैं बहुत सोया?"

"पुत्र! लगभग एक घण्टा। वे तुम्हारी बच्ची को लाये हैं। वे प्रतीक्षा

मे हैं. पर मैंने तुम्हे जगाने नही दिया।" पादरी ने कहा।

मैंने चिल्लाकर कहा—"मेरी बच्ची! मेरी बच्ची को लाओ! अभी लाओ!!"

: ३१ :

वह मेरी छोटी-सी बिटिया, गुलाब के फूल की तरह कोमल और सुन्दर। वह बहुत सुन्दर वस्त्र पहने थी। मैंने उसे उठा लिया और घुटनो पर बैठाकर चूमने लगा। मैंने पूछा—"इसकी माँ क्यों नहीं आयी? और दादी?"

"वे बीमार हैं।"

बालिका आँखें फाड़-फाड़कर मुझे देख रही थी। मैंने उसे गले लगाया, उसे चूमा, वह घबरा उठी, रो उठी। मैंने कहा मरे, मेरी नन्ही मरे! मैंने जोर से उसे छाती से लगा लिया, वह चीख उठी। धक्का देकर बोली—ओह, मैं कुचल गई।

हाय! एक साल से उसने मुझे देखा ही नहीं था। वह मुझे भूल गई थी। मेरे शब्द, चेहरा, बोली, सब कुछ बदल गया है, फिर भला वह कैसे स्मरण रख सकती थी? इस पोशाक मे मुझे कौन पहचानेगा? पर कैसी मधुर इसकी भाषा है, और कैसी मीठी इसकी कण्ठध्वनि है! एक बार यह पिता कह दे, तो अपना ४० वर्ष का जीवन खुशी से दे दूंगा।

मैंने उसके दोनों छोटे-छोटे हाथ पकड़कर कहा—"सुनो मरे, क्या तुम मुझे नहीं जानती हो?"

स्वच्छ आँखों से मेरी ओर देखकर उसने कहा—"नहीं।"

"ध्यान से देखकर कहो—मैं कौन हूँ?"

"एक अच्छे आदमी।" उसने सरलता से कहा।

अफसोस, किसी को इतना प्यार करना भी कितना दुःखदाई है?

मैंने कहा—मरे, तुम्हारे पिता हैं?"

उसने कहा—"हाँ, महाशय।"

"भला कहाँ है?"

वह आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगी। उसने कहा—"क्या तुम नहीं जानते? वे मर गए हैं।"

वह चिल्ला उठी। मैं उसे गिरने से न रोक सका।

"मर गये है ? मरे, जानती हो मरना क्या है ?"

"हाँ महाशय, स्वर्ग में जाना मरना कहलाता है। मैं माँ के घुटनों पर बैठकर ईश्वर से प्रातः-सायं उनके लिए प्रार्थना करती हूँ।"

मैंने उसका माथा चूम लिया। मैंने कहा—"मरे, प्रार्थना सुनाओ तो !"

"नहीं महाशय, प्रार्थना दिन में नहीं सुनाई जा सकती, शाम को मेरे घर आओगे तो सुना दूँगी।"

अब नहीं सहा गया। मैंने उससे एकदम कहा—"मरे, मैं ही तुम्हारा पिता हूँ।"

"ओह !" वह बोल उठी।

"क्या तुम नहीं चाहती कि मैं तुम्हारा पिता बनूँ ?" मैंने उसपर चुम्बनों की बौछार कर दी। वह मेरी गोद से निकल भागने के लिए छटपटाने लगी।

उसने कहा—"हटो, तुम्हारी दाढ़ी मेरे चुभती है।"

मैंने उसे फिर घुटनों पर बैठाकर पूछा—"मरे, क्या तुम पढ़ना जानती हो ?"

उसने कहा—"हाँ !"

"जरा पढ़ो तो !" एक अखबार मैंने उसे दे दिया।

उसने उँगली रखकर पढ़ना शुरू किया—"मृ···त्यु···द···ण्ड !"

मैंने कागज छीनकर फेंक दिया। इसे नर्स खरीद लाई थी। मुझपर क्या बीत रही थी, सो कहना कठिन था। मेरी आकृति देखकर बालिका डर गई। उसने फिर कहा—"वह अखबार मुझे दे दो, मैं पढ़ूँगी।"

मैंने उसे नर्स को देकर कहा—"ले जाओ, इसे ले जाओ !"

मैं उदास, थका और हताश था, कुर्सी पर बैठ गया।

: ३२ :

पादरी और वार्डर दोनों दयालु थे, इस घटना पर वे भी रो उठे।

यह तो हो चुका। अब मुझे मरने को तैयार हो जाना चाहिए। मुझे साहस करना चाहिए। ओह ! भीड़-की-भीड़ मुझे देखने को उत्सुक है।

: ३३ :

मेरी नन्ही-सी मरे, वे उसे ले गए। वह खेलती होगी, वह उस भीड़ को अपनी खिड़की से झाँककर देख रही होगी। क्या उसे मैं याद आऊँगा?

अभी तो समय है, उसके लिए मैं कुछ लिख जाऊँ। १५ वर्ष बाद जब वह पढ़ेगी, तो आज के दिन के लिए रोएगी। उसे मेरी करुण-कथा मालूम हो जाएगी।

: ३४ :

ओह! मेरी खिड़की के नीचे ही वह स्थान है। वहाँ कितने आदमी जमा हो रहे हैं। वे हँस रहे हैं, कितना शोर मच रहा है।

अब मुझे हिम्मत करनी चाहिए, वरना उन दोनों लाल खम्भों को देखकर मेरा कलेजा फट जायेगा। वे मुझे यहाँ छोड़कर जल्लाद को लेने गए हैं। उसी की प्रतीक्षा में इतना समय मिल गया है।

समय निकट है, उन्होंने मुझे सूचित कर दिया है। मैं काँप उठा। ६ घण्टों से, ६ हफ्तों से, अरे ६ महीनों से मैं कुछ सोच ही न पाया था, बिलकुल इसकी आशा न थी। अचानक ही यह घड़ी आ गई।

वे मुझे ले चले। मैं कई जीने उतरा और चढ़ा। एक अँधेरी कोठरी में मैं ढकेल दिया गया। इसमें बीच में एक कुर्सी पड़ी थी। उसी पर बैठ जाने को मुझसे कहा गया। मैं बैठ गया।

पादरी और दारोगा के सिवा वहाँ और भी तीन आदमी थे। पहला व्यक्ति लम्बा, बुड्ढा और मोटा था। उसका लाल चेहरा था। उसका कोट लम्बा और तिकोनी टोपी थी। यह वही था।

यह सरदार था और वे दोनों उसके सहायक।

मैं बैठ भी न पाया था कि वे दोनों मेरे पास चले आये। बिल्ली की तरह चुपचाप, क्षणभर ही में ठण्डा लोहा मेरे बालों में छूता हुआ मालूम दिया और फिर कैंची की सरसराहट मेरे कानों के पास आयी। मैं सकते की हालत में था। बाल कन्धे पर बिखर गए थे और वह टोपी वाला मुखिया अपने बड़े-बड़े हाथों से उन्हें हटा रहा था। मेरे चारों ओर लोग कानाफूसी कर रहे थे।

बाहर से भीड़ का शोर-गुल और हँसी सुनाई पड़ रही थी। एक युवक पेन्सिल-कागज लिये खिड़की में बैठा कुछ लिख रहा था। उसने पूछा—"क्या कर रहे हो ?"

"मृतक-शृंगार !"

मैं समझ गया। ये सब बातें कल अखबारों में छपेंगी। अकस्मात वधिक ने मेरी जाकेट उतार ली। दूसरे ने तब तक मेरे दोनों हाथ पीछे करके बाँध दिये।

तीसरे ने मेरी नेकटाई खोल ली। मेरी कमीज उतारते हुए वह हिचकिचाया।

उसने उसका कालर काट डाला। इस रोमांचकारी समय में, जबकि छुरे का ठण्डा-ठण्डा लोहा मेरी गर्दन से छुआ तो मेरी भौंहें सिकुड़ गईं। मैं धीरे से कराह पड़ा। वधिक का हाथ हिल गया। उसने कहा—महाशय, क्या चोट लग गई ? क्षमा कीजिए।

हाय रे ! ये वधिक इतना सद्व्यवहार करते हैं। मैंने कहा—"धन्यवाद, मैं अच्छा हूँ"

फिर उनमें से एक ने मेरे पैर रस्सी से बाँध दिये, उसका एक सिरा सिपाही ने पकड़ लिया।

सरदार ने जाकेट मेरी पीठ पर डाल दी और ठोडी के नीचे का भाग रूमाल से बाँध दिया। अब सब तैयारियाँ हो चुकी थीं। पादरी ने आकर कहा—"आओ, मेरे पुत्र !"

जल्लादों ने सहारे से मुझे उठाया—मैं लड़खड़ाता चला। तत्क्षण सामने का द्वार खुला। वर्षा हो रही थी, फिर भी हजारों की भीड़ खड़ी थी।

सब तैयारी देखकर मेरा धैर्य छूट गया। मुझे द्वार पर देखते ही लोग चिल्ला उठे— वह है ! वह है !!

भीड़ ने चिल्लाकर कहा—आखिर वह आ रहा है।

ओह ! राजा का भी इतना स्वागत न हुआ होगा।

बाहर गाड़ी खड़ी थी। प्रधान जल्लाद सबसे प्रथम चढ़ा। बच्चों ने कहा—सलाम !

सहायक जल्लाद भी चढ़ा। बच्चा ने कहा—मंगल का शुभ दिन है न?

दो जल्लाद सामने की सीट पर बैठ गए। अब मेरी बारी आयी। मैं वीरता से उस पर चढ़ गया।

एक स्त्री ने कहा—वह मरने जा रहा है।

मेरा साहस लौट आया। मैं पिछली सीट पर बैठा। पादरी मेरे पास बैठा।

मैं कांप रहा था। एक फौजी दस्ता पहरे पर मुस्तैद था।

आफिसर की आज्ञा से गाड़ी चल दी। दर्शकों ने चिल्लाकर कहा—"टोपी उतार लो!"

मैं रूखी हँसी हँसकर बोला—"उनकी टोपी और मेरा सिर।"

फूलों के बाजार से सुगन्ध की लपटें आ रही थीं। दुकानदार काम छोड़-छोड़कर मुझे देखने खड़े हो गए थे। छतों पर लोग लदे हुए थे। स्त्रियाँ विशेष उत्सुक थीं। मेरा हृदय घृणा से भर रहा था।

गाड़ी चली जा रही थी। भीड़ पीछे दौड़ रही थी। मैंने अपने हाथ में क्रास ले लिया और कहा—हे मेरे ईश्वर। मुझ पर दया करो, और फिर मैं उसी विचार में लीन हो गया। मैं सर्दी से सिकुड़ रहा था। मेह मेरे सिर पर से कपड़ों को तर कर रहा था। मैं कांप रहा था। पादरी ने कहा—"पुत्र! क्या ठण्ड से काँप रहे हो?"

मैंने कहा—"हाँ!"

पर मैं ठण्ड से नहीं काँप रहा था। शोक! वध-स्थल आ पहुँचा। मेरी चेतना शक्ति लुप्त होने लगी। सभी वस्तुएँ मुझे मूढ़-सी प्रतीत होने लगीं और दर्शक मुझे भार से लगने लगे।

गाड़ी एकदम रुक गई। मैं आगे को गिर पड़ा। पादरी ने मेरी बाँह पकड़कर कहा—"हिम्मत, हिम्मत करो बेटे!"

गाड़ी पर जीन लगाया गया और किसी ने बाँह पकड़कर मुझे उतारा। मैंने एक कदम उठाया, दूसरा उठाने का प्रयत्न किया, पर व्यर्थ, क्योंकि टिकटी पर मैंने एक भयानक वस्तु देखी। यही मेरे भय की कुँजी थी। मैं घायल-सा होकर गिरने लगा।

"मुझे अन्तिम स्वीकृति करनी है !" मैंने भरे-स्वर में कहा।

वे मुझे यहाँ ले आये। जज, कमिश्नर या मजिस्ट्रेट, न जाने कौन था, मेरे पास आया। मैंने घुटने टेक और हाथ जोड़कर क्षमा माँगी।

उन्होंने शान्त-भाव से, मुस्कराकर कहा—"और कुछ कहना चाहते हो ?"

"माफ करो, क्षमा करो, ५ मिनट और जीवन-दान दो। मुझ गरीब पर तरस खाओ।"

जल्लाद ने उसके कान में कहा—"अब जल्दी करना चाहिए, बारिश हो रही है, सम्भव है छुरे में जग लग जाय।"

"अरे दया करो दया, माफी आने तक। एक मिनट ठहरो, तुम स्वीकार न करोगे तो मैं दाँतों और कीलों से अपने को क्षत-विक्षत कर डालूँगा।"

दोनों छोड़कर चले गए। मैं अकेला हूँ, अकेला !

ओह ! कैसी भयानक भीड़ है। कैसा भयानक कोलाहल है। मैं कैसे जानता हूँ कि मैं न छूट सकूँगा ? यदि मैं न बच सका, मेरा माफीनामा आ सकता। ओह ! ये पिशाच मुझे टिकटी पर लिये जा रहे हैं···।

चार बज रहे हैं।···

३२

स्कॉटलैण्ड की रानी मेरी का कत्ल

किनरौसशायर प्रदेश में ओचिल की हरी-भरी पहाड़ियों से दक्षिण-पूर्व के लगभग १० मील की दूरी पर लोचलेवेन के मनोहर टापू मे एक पुराने किले के खण्डहर खड़े थे।

अब से ४०० वर्ष प्रथम किले के एक महराबदार कक्ष में एक लम्बे कद की स्त्री बेचैनी से टहल रही थी। बसन्त की सुन्दर सन्ध्या थी। वह बारम्बार कमरे की तंग खिड़कियों से डूबते हुए सूर्य की क्षण-क्षण पर

क्षीण होती हुई रोशनी को देख रही थी।

सुन्दरी के दोनों लम्बे हाथ आगे लटके हुए और परस्पर गुँथे हुए थे। उसका मुख सतेज और सुन्दर किन्तु अत्यन्त पीला था। उसकी सलोनी, गहरी काली आँखों से चिर-अभ्यस्त उदासी प्रकट हो रही थी। वह भूरे रग की मखमल का गाउन पहने हुए थी, जिसपर बढ़िया लेस टँकी हुई थी। उसके गले में एक लम्बी मोतियों की माला लटक रही थी, और सफेद अतलस की एक निहायत नफीस टोपी से, उसके सुन्दर बालो से भरपूर, आधा सिर ढका हुआ था।

उसी कमरे में खिड़की के नीचे एक दुबली-पतली दासी बादामी रग के वस्त्र पहने बैठी हुई तन्मय होकर कसीदा काढ़ रही थी। इस दासी का नाम मेरी सीडन और उसकी मालकिन स्कॉटलैण्ड की रानी का नाम मेगी स्टुअर्ट था। परन्तु कभी वह रानी रही थी, इस समय तो कई महीनो से वह इस भयानक सुनसान किले की दीवारों मे बन्दिनी थी। एक वर्ष प्रथम उसने अपने पिता के उत्तराधिकार-पत्र पर अपने शिशु-पुत्र जेम्स के पक्ष मे हस्ताक्षर कर दिए थे। ये हस्ताक्षर उसने अपने उन विरोधी सरदारो के दबाव में आकर किये थे, जो न उसके विश्वासी थे और न उसकी हुकूमत ही सहन कर सकते थे।

अर्ल मरे, जो प्रोटेस्टेण्ट था और मेरी का सौतेला भाई था, इस समय राज्य का स्थानापन्न अधिकारी था। उसके और उसकी गुट्ट के हाथ मे ही सारी शक्ति थी। फिर भी कुछ हृदय थे, जो अपनी भूतपूर्व युवती महारानी को फिर से अधिकारिणी बनाने के इच्छुक थे।

किले का रक्षक सर विलियम डगलस अपने कैदी की कड़ी निगरानी रखता था। कैदी को किसी प्रकार की भी स्वाधीनता न थी। रानी का करुण अनुनय भी उसे द्रवित नही कर सकता था। फिर भी उस अशुभ एकान्त में उसके कुछ मित्र थे। सर डगलस की स्त्री रानी पर बहुत दया-भाव रखती थी और प्यार करती थी। उसका पुत्र जार्ज इस सुन्दरी दुखिया रानी के प्रति बहुत-कुछ श्रद्धा-भाव रखता था। वह छिपकर उसकी सहायता करता और उसके छुटकारे के उपाय सोचता और बताता था। परन्तु यह भेद खुल गया और जार्ज को दुर्ग त्यागना पड़ा।

दालान में संध्या का धुधला अन्धकार धीरे-धीरे फैल रहा था। मेरी सीडन ने भुनभुनाते हुए कहा—"अब तो डोरा ही नहीं दीखता" और कसीदा समाप्त कर दिया। रानी ने भी टहलना बन्द कर दिया। वह शान्तभाव से खिड़की पर गई।

"ओह! अब तो नहीं सहा जाता," उसके मुख से कातर स्वर में निकल पड़ा, "दिन-पर-दिन, सप्ताह-पर-सप्ताह व्यतीत हो रहे हैं—वही अशुभ दीवारें, वही सन्नाटा, ये लम्बी-लम्बी नीरस घड़ियाँ, क्या ये कभी समाप्त न होंगी? क्या कभी इनका अन्त न होगा? इन पत्थर की दीवारों में पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह, जहाँ केवल हिलने-डुलने और साँस लेने मात्र को स्थान है"—इतना कहकर उसने दुःख से क्षणभर के लिए शरीर को तना दिया, फिर वह खिड़की के सीखचे पर सिर टेककर झुक गई।

वह चिल्ला उठी—"आह! उधर बाहर स्वच्छ वायु है, आकाश है तथा विस्तृत पहाड़ियाँ हैं और यह महान आनन्दमय संसार! कभी मैंने भी इनका अनुभव किया था। सीडन, उन बातों को कितना समय बीत गया! मानो युग बीत गए।"

उसने मुँह फेरा और अपनी सफेद उँगलियाँ दासी के गालों पर फेरने लगी। उसने मानो स्वप्न देखते हुए फिर धीरे-धीरे कहा—"इस आनन्द-लोक में मैं भी कभी थी। तुझे क्या वे दिन याद नहीं आते? वे हमारे राजसी दिन! वे दिन, जो होलीरूड में आनन्द और उल्लास में व्यतीत हुए थे। वे नाच-रंग-मौज और बहार। वे आधी-आधी रात तक के रस-रंग। वे शानदार शहर में निकलते हुए जुलूस और सवारियाँ और चारों तरफ से बरसती हुई बधाइयाँ। लाल-लाल होठों से निकलती हुई 'चिरजीवी रहो सुन्दरी रानी' का जयघोष! फ्रांस के वे सुनहरी धूप से चमकते हुए प्यारे आनन्दमय दिवस। ओह! कहाँ विलीन हो गये वे दिन? क्या तुझे वे दिन स्मरण नहीं आते, जब हम छोटे-छोटे बच्चे थे, मैं, महा-रानी, तू और वे तीनों विश्वसनीय सखियाँ? मेरी, उन दिनों हम उस जन्मभूमि की सुन्दर झील के किनारे किस मौज से खेलते थे! वह झील, वह मेण्टथं की झील अभी तक होगी। उसके किनारे के बगीचे भी होंगे। कैसा आश्चर्य है! आह! कितना समय बीत गया। हम कितने स्वच्छन्द

थ, सर्वथा स्वच्छन्द ।

मेरी सीडन ने मुलायमियत से कहा—"श्रीमती ! कभी-न-कभी आप फिर भी स्वतन्त्र होंगी। अब भी स्कॉटलैण्ड में आपके मित्रों की कमी नहीं है। वे बहुत हैं।"

"मित्र!" रानी ने आह भरी—"इस दुर्ग की दीवारों से बाहर मित्रों का उपयोग है? इस निर्दय जेलर डगलस के सम्मुख, जो सदैव ही मुझे हीन-पशु की तरह पिंजड़े में रखता है, वे मित्र दूर कर दिए गए हैं, सब अत्यन्त दूर भेज दिए गए हैं।" रानी ने ज़ोर से सुबकियाँ लेते-लेते कहा।

दासी ने कहा—"श्रीमती ! जार्ज डगलस यद्यपि दूर कर दिया गया है, परन्तु वह अवश्य ही आपकी ओर से निश्चिन्त नहीं है। वह आपके लिए बहुत मंसूबे बाँध रहा है। इस समय भी उसका छोटा भाई विल्ले डगलस यहाँ मौजूद है।"

रानी मुस्कराई। उसने कहा—"हाँ, विल्ले डगलस का तो आसरा है।"

इसी क्षण भीमकाय द्वार खुला और रानी के उत्तर स्वरूप १५ वर्ष के दुबले-पतले एक बालक ने प्रवेश किया। वह प्रहरी जैसे साधारण वस्त्र पहने था और उसके मुख पर उत्सुकता झलक रही थी। वह आगे बढ़ा और रानी के सम्मुख घुटनों के बल गिर गया। उसने रानी की पतली-पतली उँगलियाँ होंठों से लगा लीं। रानी ने उसके झुके हुए सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए और उसके घुंघराले बाल सुलझाते हुए कहा—"प्यारे विल्ले, क्या खबर है?"

लड़के का चेहरा खिल रहा था, होंठ फड़क रहे थे, गालों पर सुर्खी दौड़ रही थी। उसने कहा—"श्रीमती…।"

रानी ने होंठों पर उँगली रखकर धीरे बोलने का संकेत किया। उसने धीमे स्वर में कहा—"श्रीमती ! शुभ समाचार है। आज रात को…।"

रानी ने जगह करते हुए कहा—"यहाँ बैठ जाओ" और उसकी गर्दन में अपनी बाँहें डाल दीं। फिर कहा—"हाँ, अच्छा, अब कहो।"

वह जल्दी से रानी से सटकर बैठ गया और बोला—"श्रीमती !

आज मेरे भाई जार्ज का समाचार मिला है। उसने संदेश भेजा है कि अब सब ठीक है। वे लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपके अनेक मित्र आपके स्वागत को तैयार है—लार्ड सीटन, हेमिल्टन और बहुत से। अब आपको यहाँ से किसी तरह निकल भागने भर की देर है।"

"ओह !" रानी के मुख से अनायास ही निकल पड़ा। उसने जरा हँसकर अपना सुन्दर सिर बालक की ओर हिला दिया। उस हास्य मे कुछ विनोद और कुछ कटुता का मिश्रण था। उसने कहा—"तब हमे सिर्फ निकल भागने-भर की ही देर है ? एक तुच्छ सी बात ! सिर्फ निकल भागना ही न ?"

"नही," बालक उत्सुकता से खड़ा हो गया, "श्रीमती, क्या आप स्वतन्त्र होने के लिए दुस्साहस कर सकती हैं ?"

"मैं ? मैं पृथ्वी और आकाश एक कर सकती हूँ।" वह मुस्कराई।

बालक के मुख पर नवीन उत्साह की सुर्खी दौड़ गई। उसकी आँखे चमकने लगी। उसने कहा—"श्रीमती मेरा विश्वास करें, कल ···।"

"कल रविवार है न ?"

"जी हाँ, श्रीमती, कल संध्या को दुर्ग की चाबियाँ निसन्देह मेरे पास होगी, और फिर ···।"

रानी ने उसपर दृष्टि डालते हुए कहा—"क्या कहा ? दुर्ग की चाबियाँ। तुम तो सदा यही कहते रहे हो न कि सूरज छिपने पर किले के तमाम फाटक बन्द हो जाते हैं और चाबियों का गुच्छा सर विलियम के पास उनके भोजन के समय पहुँचा दिया जाता है।"

"अजी, पर मैंने एक चाल सोची है", बालक ने सिर हिलाकर कहा—"क्या आप और सीडन कल शाम को सूर्यास्त के एक घण्टे बाद परस्पर भेष बदले इसी कमरे में मेरी प्रतीक्षा करेगी ?"

"मैं करूँगी, अजी जरूर मैं बदला लूँगी।"

"तब ईश्वर से प्रार्थना करो कि मेरी युक्ति बिफल न हो। सुनो, किसी के पैरों की आहट है। अब अधिक नहीं। कल सूर्यास्त के एक घण्टा बाद। स्मरण रहे।" बालक ने सिर झुकाकर अभिवादन किया, रानी का हाथ चूमा और कमरे से बाहर निकल गया।

मेरी और सीडन ने परस्पर आँखें मिलायीं। मेरी की आँखें नाच रही थी।

रानी ने कहा—"निसन्देह, अब कुछ आशा की झलक दीख पड़ती है, पर कौन जानता है, अदृष्ट में क्या है?"

सीडन ने कहा—"श्रीमती! इस लड़के का भी तो विचार करो, जो आपकी सेवा मे अपनी जान की जोखिम उठा रहा है।"

"यही तो मैं सोच रही हूँ।" रानी ने मुस्कराकर कहा—"वह अवश्य ऐसा करेगा, उन सबका यह गुण है"

"नहीं श्रीमती, यह आपका गुण है। आपका सद्व्यवहार हमारे साथ, उन सब छोटे-बड़ों के साथ एक-सा है, यही उन्हें आपके लिए मृत्यु तक का सामना करने को तैयार करता है।" दासी ने यह कहकर रानी का हाथ चूम लिया।

वह रविवार, जो मई का दूसरा दिन था, धीरे-धीरे व्यतीत हुआ। दिन के लम्बे और उत्तम घण्टे धीरे-धीरे कट गए। स्तम्भ की खिड़कियो मे होकर सूर्य की डूबती हुई किरणें झाँकने लगीं। दुर्गाध्यक्ष अपने परिवार सहित भोजन करने बैठा।

डगलस मेज के सम्मुख सबसे आगे बैठा था। वह एक लम्बा, भारी-भरकम तथा स्वभाव का गम्भीर और चुपचाप प्रकृति का आदमी था। उसकी पत्नी, जो सीधे स्वभाव की गेठी-सी स्त्री थी, सामने बैठी थी। विल्ले डगलस, जो प्रहरी की जगह पर उसके आफिस में था, इधर-उधर सावधानी से सब पर दृष्टि रखता हुआ घूम रहा था। थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला और एक प्रहरी ने प्रवेश किया। उसने चाबियों का एक भारी गुच्छा सर विलियम के बायी ओर रख दिया। इसके बाद उसने अभिवादन किया और चला गया। दुर्गपति ने उधर ध्यान न दिया। महीनों से इसी प्रकार भोजन के समय चाबियों का गुच्छा उसके सामने रखा जाता था।

विल्ले डगलस ने स्वामिनी के सम्मुख शराब का गिलास रखते हुए अपने बड़े-बड़े नेत्रों से मेज की ओर देखा। चाबियाँ खिड़की के निकट ही पडी थीं और वे लगभग आधी ढक गई थीं।

लड़के ने कमरे में एक चक्कर लगाया। एक सफेद अँगोछा उसके कन्धे

आज मेरे भाई जार्ज का समाचार मिला है। उसने संदेश भेजा है कि अब सब ठीक है। वे लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपके अनेक मित्र आपके स्वागत को तैयार हैं—लार्ड सीटन, हेमिल्टन और बहुत से। अब आपको यहाँ से किसी तरह निकल भागने भर की देर है।"

"ओह!" रानी के मुख से अनायास ही निकल पड़ा। उसने जरा हँसकर अपना सुन्दर सिर बालक की ओर हिला दिया। उस हास्य में कुछ विनोद और कुछ कटुता का मिश्रण था। उसने कहा—"तब हमें सिर्फ निकल भागने-भर की ही देर है? एक तुच्छ सी बात! सिर्फ निकल भागना ही न?"

"नहीं," बालक उत्सुकता से खड़ा हो गया, "श्रीमती, क्या आप स्वतन्त्र होने के लिए दुस्साहस कर सकती हैं?"

"मैं? मैं पृथ्वी और आकाश एक कर सकती हूँ।" वह मुस्कराई।

बालक के मुख पर नवीन उत्साह की सुर्खी दौड़ गई। उसकी आँखें चमकने लगीं। उसने कहा—"श्रीमती मेरा विश्वास करें, कल···।"

"कल रविवार है न?"

"जी हाँ, श्रीमती, कल संध्या को दुर्ग की चाबियाँ निसन्देह मेरे पास होंगी, और फिर···।"

रानी ने उसपर दृष्टि डालते हुए कहा—"क्या कहा? दुर्ग की चाबियाँ। तुम तो सदा यही कहते रहे हो न कि सूरज छिपने पर किले के तमाम फाटक बन्द हो जाते हैं और चाबियों का गुच्छा सर विलियम के पास उनके भोजन के समय पहुँचा दिया जाता है।"

"अजी, पर मैंने एक चाल सोची है", बालक ने सिर हिलाकर कहा—"क्या आप और सीडन कल शाम को सूर्यास्त के एक घण्टे बाद परस्पर भेष बदले इसी कमरे में मेरी प्रतीक्षा करेंगी?"

"मैं करूँगी, अजी जरूर मैं बदला लूँगी।"

"तब ईश्वर से प्रार्थना करो कि मेरी युक्ति विफल न हो। सुनो, किसी के पैरों की आहट है। अब अधिक नहीं। कल सूर्यास्त के एक घण्टा बाद। स्मरण रहे।" बालक ने सिर झुकाकर अभिवादन किया, रानी का हाथ चूमा और कमरे से बाहर निकल गया।

मेरी और मीडन ने परस्पर आँखें मिलायीं। मेरी की आँखें नाच रही थी।

रानी ने कहा—"निसन्देह, अब कुछ आशा की झलक दीख पड़ती है, पर कौन जानता है, अदृष्ट में क्या है?"

मीडन ने कहा—"श्रीमती! इस लड़के का भी तो विचार करो, जो आपकी सेवा में अपनी जान की जोखिम उठा रहा है।"

"यही तो मैं सोच रही हूँ।" रानी ने मुस्कराकर कहा—"वह अवश्य ऐसा करेगा, उन सबका यह गुण है।"

"नहीं श्रीमती, यह आपका गुण है। आपका सद्व्यवहार हमारे साथ, उन सब छोटे-बड़ों के साथ एक-सा है, यही उन्हें आपके लिए मृत्यु तक का सामना करने को तैयार करता है।" दासी ने यह कहकर रानी का हाथ चूम लिया।

वह रविवार, जो मई का दूसरा दिन था, धीरे-धीरे व्यतीत हुआ। दिन के लम्बे और उत्तम घण्टे धीरे-धीरे कट गए। स्तम्भ की खिड़कियों में होकर सूर्य की डूबती हुई किरणें झाँकने लगीं। दुर्गाध्यक्ष अपने परिवार सहित भोजन करने बैठा।

डगलस मेज के सम्मुख सबसे आगे बैठा था। वह एक लम्बा, भारी-भरकम तथा स्वभाव का गम्भीर और चुपचाप प्रकृति का आदमी था। उसकी पत्नी, जो सीधे स्वभाव की गैंठी-सी स्त्री थी, सामने बैठी थी। विल्ले डगलस, जो प्रहरी की जगह पर उसके आफिस में था, इधर-उधर सावधानी से सब पर दृष्टि रखता हुआ घूम रहा था। थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला और एक प्रहरी ने प्रवेश किया। उसने चाबियों का एक भारी गुच्छा सर विलियम के बायीं ओर रख दिया। इसके बाद उसने अभिवादन किया और चला गया। दुर्गपति ने उधर ध्यान न दिया। महीनों से इसी प्रकार भोजन के समय चाबियों का गुच्छा उसके सामने रखा जाता था।

विल्ले डगलस ने स्वामिनी के सम्मुख शराब का गिलास रखते हुए अपने बड़े-बड़े नेत्रों से मेज की ओर देखा। चाबियाँ खिड़की के निकट ही पड़ी थीं और वे लगभग आधी ढक गई थीं।

लड़के ने कमरे में एक चक्कर लगाया। एक सफेद अँगोछा उसके कन्धे

पर पड़ा था। दोनों हाथों में शराब की सुराही थी। अब वह स्वामी की बगल में धुँधले प्रकाश की आड़ करके खड़ा हो गया। "श्रीमान, शराब !"

वह शराब डालने को झुका। इसी समय उसके कन्धे पर से अँगोछा तालियों के गुच्छे पर गिर गया और उसने उसे ढाँप दिया। सर विलियम का गिलास भरकर उसने बायें हाथ में सुराही ली और दाहिने हाथ से मय गुच्छे के अँगोछा उठा लिया—ऐसी सावधानी से कि जरा भी खड़का न हुआ। एक दृष्टि उसने चारों तरफ डाली, पर उधर किसी का भी ध्यान न था। सर विलियम धीमे स्वर में धीरे-धीरे बातें करने में मग्न थे और साथी ससम्मान ध्यानपूर्वक सुनने में। वे साथ ही शराब उड़ाते जाते थे और भोजन भी करते जाते थे।

विल्ले डगलस शीघ्रता से लौटा और ज्योंही दूसरा नौकर कमरे में आया, उसने शराब की सुराही को वहीं पटका और धीरे से द्वार बन्द कर बाहर चला गया। बाहर आते ही उसने भागना शुरू किया। चौक में सन्नाटा था। वह तीर की तरह दौड़कर रानी के कमरे में पहुँच गया और झटके से द्वार खोलकर उसने पुकारा—"श्रीमती ! जल्दी, जल्दी आइए।" और चाबियाँ हाथ में ले ली।

रानी तुरन्त लपकी। वह साटन की गहरी बादामी पोशाक से तमाम शरीर को ढाँपे हुए थी। उसके साथ एक बालिका भी थी, जिसके भूरे बाल बड़े सुहावने मालूम पड़ रहे थे। वह उसकी किसी दासी की पुत्री थी। रानी ने बालिका का हाथ पकड़ लिया और बोली—"अभी आती हूँ।" और वह सीडन की ओर लपकी, जो कुर्सी पर बैठी सुबकियाँ ले रही थी।

"विदा, मेरी प्यारी मेरी !" उसने नम्रता से कहा—'मेरी सखी, अवश्य ही हम फिर कभी मिलेंगी।"

"श्रीमती, जल्दी !" विल्ले ने पुकारा। रानी बालिका का हाथ पकड़े द्वार से बाहर हो गई। बिना किसी प्रकार का आहट किये वे सीढ़ियों से उतर गए। अब वे चौक में थे। एक कोने में कुछ मनुष्य खड़े-खड़े बातें कर रहे थे। जब ये तीनों उनके पास होकर गुजरे तो उन्होंने कुछ ध्यान न दिया। रानी ने दम रोक लिया। वे लोग गपशप में मस्त थे। अन्त में तीनों प्राणी उन भीमकाय द्वारों से बाहर हुए, जिन्हें साहसी विल्ले ने खोल दिया

था। ताले फिर ज्यों के त्यों लगा दिये गए।

अन्धकार बढ़ रहा था, हवा बिल्कुल बन्द थी, पानी काँच की तरह स्थिर था। किनारे पर एक छोटी-सी डोंगी लगी थी। विल्ले की सहायता से रानी जल्दी से उसपर चढ़ गई। विल्ले ने बच्ची को भी चढ़ाया और फिर स्वयं भी चढ़ गया। इसके बाद उसने नाव खेना प्रारम्भ किया।

रानी ने धीमे स्वर में कहा—"किन्तु और नावें? वे क्या हमारा पीछा न करेंगी?"

"उनके चप्पू गायब हैं श्रीमती! मैंने सब ठीक कर लिया है।" बालक धीरे से हँस पड़ा।

दरिया का पाट आध मील चौड़ा था। परन्तु डोंगी उस एक जोड़े चप्पू से जितना सम्भव था, तेजी से जा रही थी।

आधा रास्ता साफ हुआ था। डगलस अचानक एक ओर को झुक गया और उस गहरे पानी में छप से उसने कोई भारी चीज डाल दी।

"किले की चाबियाँ, उसने हँसकर कहा—"अब देखें, कौन इन्हें पा सकता है?"

रानी प्रति क्षण अधीर हो रही थी। "जल्दी करो, जल्दी"। अन्त में एक चप्पू उसने अपने हाथ में ले लिया और खेने लगी।

उसने अधैर्य से कहा—"हम किनारे पर कब पहुँचेंगे? और उसके बाद हमारा क्या होगा?"

"श्रीमती! अवश्य ही लार्ड हेमिल्टन और सीटन किनारे पर प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उन्हें मालूम है कि सब ठीक-ठाक है और आप आ रही हैं। देखिए, वह संकेत है जो बुर्ज के गुम्बज में मैं लगा आया था।"

वे तेजी से बढ़ रहे थे और काले आकाश में किले का काला बुर्ज क्षण-क्षण दूर होता जा रहा था। सबसे ऊपरी बुर्ज पर कुछ रोशनी हो रही थी और उसका प्रकाश जल पर भी पड़ रहा था।

कठिन परिश्रम के और पाँच मिनट बीत गए। एकाएक बालिका डोंगी की तली से उठ खड़ी हुई। उसने हर्षोत्फुल्ल स्वर में चिल्लाकर कहा—"देखिए, श्रीमती जी, देखिए!"

किनारे पर काली-काली मानव आकृतियों की परछाइयाँ उस धुँधले

अन्धकार में खड़ी दीख रही थी। ज्योंही डोंगी उनके दृष्टिगोचर हुई, एक धीमा भयपूर्ण हर्षनाद उठा। डोंगी के किनारे लगने की देर थी कि अनेक हाथ रानी को सहारा देकर उतारने को आगे बढ़े। "स्वागत! स्वागत!!" की आवाज चारों ओर गूँज गई।

तुरन्त ही एक तेज घोड़े पर रानी को चढ़ाया गया। शेष सब लोग समस्त रात्रि की यात्रा की तैयारी और रानी की रक्षा के विषय में सोचते चले।

विल्ले डगलस ने अघाकर साँस ली। उसका कार्य समाप्त हो चुका था और वह महिला, जिसकी स्वाधीनता के लिए उसने अपनी जान जोखिम मे डाली थी, अब फिर स्वाधीन थी।

रानी और उसके साथी रात्रि-भर चलते ही गए। प्रातःकाल वे बहुत दूर पहुँच गए थे और उन्हें कोई भय न था।

देखते-ही-देखते झुण्ड-के-झुण्ड मनुष्य उसके निकट आने लगे। बढ़ते-बढ़ते उसकी सेना में छः हजार बाँके वीर एकत्रित हो गए। १३वी मई को रानी की फौज से रीजेण्ट मरे की सेना की ग्लासगो के निकट लैंग-साइट में मुठभेड़ हुई। पर कथकार्ट के दुर्ग से उसने देखा कि उसकी सेना पूरी तरह हारकर लौट रही थी। उसकी अन्तिम आशा भी विलीन हो गई।

वह तत्काल घोड़े पर सवार होकर भागी और दक्षिण की सरहद पर सोलवे पार करके इंग्लैण्ड में पहुँच गई। यहाँ उसने अपने आपको अपनी चचेरी बहिन, इंगलैण्ड की रानी एलिजाबेथ की दया पर छोड़ दिया।

परन्तु एलिजाबेथ ने बहुत कम दया की। मेरी फिर कैद कर ली गई, पर इस बार उसे अंग्रेजों ने कैद किया, स्कॉट्स ने नही। फिर २० वर्ष के लम्बे और दु.ख-भरे कैद के दिन काट लेने के बाद एलिजाबेथ ने उसका सिर काट लेने की आज्ञा दे दी।

लार्ड सेलेसबरी, कैण्ट का अर्ल, नार्थम्पटन शायर के मेयर आदि मेरी के पास यह मृत्यु सन्देश लेकर पहुँचे। उन्होंने संक्षेप में शान्ति से और गम्भीरतापूर्वक यह भयानक सन्देश कह सुनाया। उन्होंने उसे यह भी सूचना दी कि हमारे साथ आपके वध को देखने के लिए एक शाही कमीशन

भी है। अन्त में उससे कह दिया गया कि वह कल प्रातःकाल इस दुखदाई घटना के लिए तैयार रहे।

मेरी पर अनभ्र वज्रपात हुआ। उसे अपने कानों पर विश्वास नही होता था, पर सत्य उसे सब कुछ मानने को बाधित कर रहा था। उसने घृणा और कष्ट से अपना सिर ऊँचा किया और अपने चिकित्सक को बुलाकर फ्रांस में फैली हुई अपनी रकम के सम्बन्ध में उससे कुछ बातें की। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका हृदय फट जायेगा। वे लोग उसे छोड़कर चले गए, उन्हें भय था कि कही वह रात में आत्मघात न कर ले। वे सोच रहे थे कि कही ऐसा न हो कि मेरी वध-भूमि तक जाना स्वीकार न करे और उसे बलपूर्वक ले जाना पड़े।

अन्त समय आ गया। वह चिरकाल से इसके लिए भयभीत थी, पर अब तक आशा की एक क्षीण रेखा उसे दीख रही थी। जिस दृश्य के लिए उसे तैयार होने को कहा गया था और जिसके भयानक अस्तित्व से उसे सामना करना था, उसकी तमाम दुश्चिन्ताएँ, बदले की अभिलाषाएँ, विरोध की चेष्टाएँ, प्रतिद्वन्दी के सिंहासन पर बैठने की सुखमयी भावनाएँ, सबकुछ एक साथ ही नष्ट हो गई थीं। आह! उसने बहुत गहरी चाल खेली थी और उसके सब पासे उलटे पड़े थे।

फिर भी यदि वह मृत्यु का वीरता से सामना करती तो उसकी विजय निश्चित थी। अन्त समय तक यदि वह आस्तिक और कष्टसहिष्णु बनी रहती तो वह जनता में एक ऐसी क्रुद्ध अग्नि प्रज्वलित कर सकती थी जिससे कि भले ही उसे कुछ लाभ न होता, पर उसके शत्रु अवश्य ही उस प्रचण्ड तूफान में पड़कर नष्ट हो जाते। वह अन्त समय तक अपने हठ पर बनी रही और ऐसा प्रतीत होता था कि धर्म की आड़ केवल उसका पाखण्ड था। उसका अपूर्ण उद्देश्य ही उसकी प्रतिष्ठाभंग का कारण हुआ। सच्चे आस्तिक जनों की मृत्यु, वास्तव में, बहुत सरल होती है।

उसका धर्मगुरु किले की दूसरी ओर था। कमिश्नर लोग इस बात के लिए उत्सुक थे कि वह मृत्यु-समय उनके विश्वास के अनुसार प्रार्थना करे, और उन्होंने एक पादरी उसकी सहायता को नियुक्त कर दिया था, जिसे रानी ने नामंजूर कर दिया। उसने अपने धर्मगुरु को, जिसे उसके निकट

आने की आज्ञा न थी, एक पर्चा लिखा, और उसमें लिखा कि मेरी इच्छा अपने विश्वास और धर्म की रीति पालने की है। आप नहीं मिल सकते, इसलिए मैं साधारण स्वीकृति पर ही सन्तोष करूँगी, परन्तु आप रात्रि-भर सावधान रहकर मेरे लिए प्रार्थना करें।

प्रातःकाल बाहर लायी जाने के समय उसने अपने धर्मगुरु को देखने और उससे आशीर्वाद ग्रहण करने की आशा प्रकट की।

रात्रि का भोजन उसने अपनी दासी के साथ प्रसन्नतापूर्वक किया। यही अन्तिम भोजन था। भोजन कर चुकने पर उसने गोरियन से एकान्त मे पूछा—"क्या मैं तुम्हारा विश्वास कर सकती हूँ ?"

"अवश्य।"

"मेरे पास एक पत्र और दो हीरे हैं, मैं उन्हे मेण्डोजा के पास भेजना चाहती हूँ।"

गोरियन ने उन्हें लेकर वस्त्रों मे छिपा लिया और ठीक-ठिकाने पर पहुँचा देने का वादा किया। उनमे एक हीरा तो स्वयं मेण्डोजा के लिए था और दूसरा जो सबसे बड़ा था, फिलिप के लिए था। यह इस बात का चिह्न था कि वह निरपराध मारी जा रही है और उसके बाद उसके मित्रों और नौकरों की देख-भाल रखी जाय। उसने याद कर-करके अपने प्रत्येक नौकर और मित्रों के नाम बताये। अरण्डेल, पैगट, मोरगन, ग्लासगो का विशप, थोग मारटन, रोज का पादरी, दोनों सेक्रेटरी, वे सहेलियाँ और दासियाँ जो कैद में उसके साथ रही थी, सबको उसने बताया और किस-किस को कितना देने की उसकी इच्छा है, यह भी फिलिप को लिख दिया। अपने विश्वासपात्र मित्रों पर दया दिखाना उसका स्वभाव था। आज भी वह उन्हें भूली नहीं। इसके बाद उसने अपने नये-पुराने समस्त शत्रुओं को याद किया और उन्हें धन्यवाद दिया। अब उसका किसी से द्वेष न था। उसने गोरियन से कहा—"फिलिप से कहना कि यह उसकी माँ की अन्तिम प्रार्थना है, और मै चाहती हूँ कि इस सन्देश को तुम हृदय में गुप्त रखो। यह सन्देश मेरी मृत्यु के उपलक्ष में नही, बल्कि इंग्लैण्ड के भावी युद्ध के उपलक्ष में है। यह अनिवार्य विवाद है, जो तुम्हारे लिए एक गौरव की वस्तु है। जब तुम इसमें विजय प्राप्त करो तो तुम उन दुर्व्यवहारो को

स्मरण रखना जो सिसिललेसेस्टर और बलसिगम ने मेरे साथ किए हैं। लार्ड हण्टिगडन ने टटबरी आने से पूर्व १५ वर्ष तक मेरे साथ कैसा दुर्व्यवहार किया था और सर अमयास पोलट और सेक्रेटरी वेड ने कैसे-कैसे अत्याचार किये थे, यह सब स्मरण रखना।"

: २ :

वह रात्रि-भर व्यस्त रही। काम बहुत है, पर समय बहुत कम। आधी रात के बाद उसने एक पत्र फ्रान्स के बादशाह को लिखा। इसमें यही बात दुहराई गई थी कि मैं निर्दोष मारी जा रही हूँ और मेरे प्राण धर्म के लिए न्यौछावर हो रहे हैं। सिंहासन के ऊपर मेरा अधिकार है। अन्त में उसने अपने उस रुपये की बात कही, जो बादशाह के पास जमा था और बतलाया कि उसके मरने के बाद वह उसके अनुचरों को किस तरह दिया जाय।

पत्र लिखकर वह ३-४ घण्टे तक सोई और इसके बाद धैर्य तथा गम्भीरता से अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनने लगी।

प्रातःकाल ८ बजे द्वार पर किसी के पैरों की आहट सुनायी दी। किसी ने द्वार खटखटाया, पर द्वार बन्द था। आगन्तुक लौट गया। कुछ देर बाद मेयर के साथ वही व्यक्ति फिर आया। दरवाजा खुला। सम्मुख ही मेरी स्टुअर्ट की मोहनी मूर्ति खड़ी थी। उसे उन्होंने आश्चर्य से देखा। एक अपूर्व सौन्दर्य और तेज उस समय उसके मुख पर विराजमान था। वह सुन्दर सफेद अतलस की सदा की पोशाक के स्थान पर काली साटन की पोशाक पहने हुए थी। उसकी कुर्नी भी उसी कपड़े की थी और उसमें झालर टकी थी और मखमल की गोट लगी हुई थी। उसके नकली बाल बड़ी सुघड़ाई से बँधे हुए थे, सिर और कमर पर लटकता हुआ एक सफेद दुपट्टा पड़ा था, गरदन में सोने का एक नैकलेस था और हाथों में हाथीदाँत का एक सुन्दर क्रूस था। उसकी कमर मे एक पेटी थी, जिस पर जवाहरात से जड़ी हुई पवित्र प्रार्थनाएँ अंकित थीं। पोलेट के दो सज्जनों के साथ वह चली। आगे मेयर था। वह दालान मे आयी, जहाँ सेलेसबरी, केण्ट, पोलेट, जूरी और अन्य लोग उसकी प्रतीक्षा में खड़े थे। सर राबर्ट का भाई एण्ड्र्यू मेल विल्ले, जो उसका प्रधान गृह-प्रबन्धक था, घुटने टेककर आँसू बहा रहा था।

रानी ने कहा—"मेलविल्ले! रोओ मत, खुशियाँ मनाओ। मैं सच्ची

कैथोलिक की तरह मर रही हूँ। मेरे मित्रों से और मेरे पुत्र से कहना कि स्कॉटलैण्ड के सिंहासन के लिए मैंने कुछ अनिष्ट नहीं किया है।"

मेलविल्ले—"विदा !"

"मेरे धर्मगुरु और सहेलियाँ कहाँ हैं? मैं चाहती हूँ कि वे मुझे मरती हुई देखें।"

केण्ट—"मुझे भय है कि कहीं वे चीख मारकर बेहोश न हो जायें। मैं समझता हूँ कि वे अपने रुमालों को आपके रक्त में रँगने का प्रयत्न करेंगे।"

"वे शान्त और आज्ञाकारी रहेंगे, विश्वास रखिए। क्या तुम्हारी रानी एलिजाबेथ मेरी इस तुच्छ प्रार्थना को भी स्वीकार नहीं कर सकती?"

केण्ट—"श्रीमती, मुझे खेद, बहुत खेद…।"

मेरी—(रोकर) "तुम जानते हो, मैं भी तुम्हारी रानी की बहिन और स्कॉटलेण्ड की रानी हूँ। सप्तम हेनरी का रक्त हम दोनों ही के शरीर में है। विवाह के बाद मैं फ्रांस की रानी बनी, फिर स्कॉटलैण्ड का मुकुट मेरे मस्तक पर रखा गया।"

"श्रीमती, आप केवल ६ व्यक्तियों को अपने अन्तिम समय में उपस्थित रख सकती हैं।"

इसपर उसने अपना चिकित्सक, बरगन, एण्ड्रयू मेलविल्ले, गोरियन, गृह-वैद्य और दो स्त्रियाँ, इन ६ व्यक्तियों को चुना।

"अच्छा, तो अब हमें चलना चाहिए"—यह कहकर वह एक गार्ड के कन्धे का सहारा लेकर अर्ल के साथ सीढ़ी उतरने लगी। सब लोग दालान तक पहुँचे। मेरी के प्राणदण्ड का समाचार सर्वत्र फैल गया था और दालान के बाहर अपार भीड़ थी। चुने हुए सिर्फ ३०० सरदारों और रईसों को इस कत्ल के साक्षीस्वरूप अन्दर आने दिया गया। मेज-कुर्सियाँ हटा दी गई थीं। चिमनियों से आग की लपटें निकल रही थीं। दालान के ऊपरी हिस्सों में अंगीठी के पीछे की तरफ वह विकट वधस्थल बनाया गया था। इसका क्षेत्रफल १२ फीट था, और ऊँचाई २½ फीट। वह एक काले कपड़े से ढँका हुआ था और काले ही कपड़े से मढ़ी हुई एक लकड़ी की पाड़ इसपर जड़ी गई थी। मेयर के गार्ड उसके चारों तरफ घूम-घूमकर पहरा दे रहे

थे और भीड़ को उधर आने से रोक रहे थे। पाड़ पर सिर रखने की टिकटी थी। यह भी काले कपड़े से मढ़ी हुई थी। इसके पीछे एक चौकी बिछी थी और उसके पीछे एक काली कुर्सी रखी थी जिसके दाहिनी ओर सरदारों के लिए और दो कुर्सियाँ पड़ी थी।

पाड़ के सहारे एक विशाल कुल्हाड़ा रखा हुआ था। और दो निश्चल भयानक मूर्तियाँ उसके पास खड़ी थी।

रानी मेरी इस तरह उधर बढ़ रही थी, मानो वह कोई गम्भीर पार्ट करने जा रही हो। उसके चेहरे पर विषाद की रेखा तक न थी। वह पूर्ण शान्ति के साथ पाड़ पर पहुँची। मुस्कराते हुए इधर-उधर देखा और बैठ गई। सेलेसबरी और केण्ट के सरदार भी बैठ गए। अब बियेल ने जोर से आज्ञा-पत्र पढ़कर सुनाया।

उस जन-समुद्र में मेरी स्टुअर्ट ही एक ऐसी स्त्री थी जिसे अपनी मृत्यु के शब्दों में दिलचस्पी न थी।

"श्रीमती", लार्ड सेलेसबरी ने आज्ञा-पत्र सुना चुकने पर कहा—"आपने सुन लिया कि हम किस आज्ञा का पालन करने को बाध्य हैं?"

"तुम अपना कर्तव्य पूरा करो!" यह कहकर वह प्रार्थना के लिए उठ खड़ी हुई।

पीटरबर्ग का पादरी डॉ० फ्लेचर उठा और पाड़ तक पहुँचा। "श्रीमती!" उसने मन्दी आवाज से कहना शुरू किया—"श्रीमती, उदार रानी, स्कॉटलैण्ड की महारानी···।" वह कुछ कहना ही चाहता था कि रानी ने बीच ही में बात काटकर कहा—"पादरी महोदय, मैं एक कैथोलिक हूँ और कैथोलिक की तरह मरना चाहती हूँ। मेरे निश्चय से विचलित करने का प्रयत्न व्यर्थ है। आपकी प्रार्थना से कोई लाभ न होगा।"

"श्रीमती, आप अपने विचार बदलें, अपने पापों का प्रायश्चित करें और मसीह में विश्वास लायें।" रानी ने लड़खड़ाती आवाज में कहा—"अधिक कष्ट न करें पादरी महोदय! मुझे अपने धर्म पर ही विश्वास है। मैं इसके लिए अपने खून की नदी बहा दूँगी।"

सेलेसबरी ने कहा—"श्रीमती! मुझे दुःख है कि आप अपने कैथोलिक धर्म पर इस तरह अटल हैं।"

केण्ट के सरदार ने पीछे से कहा—"जिस मसीह की मूर्ति का आप ध्यान करती हैं, यदि वह आपके हृदय में अंकित कर दी जाय तो भी कुछ लाभ की आशा नहीं है ?"

मेरी ने इसका उत्तर न दिया और वह फ्लेचर की ओर मुड़कर प्रार्थना करने लगी।

उन लोगों को इस बात का आदेश दिया गया था कि उस समय रोमन कैथोलिक का जो दृश्य उपस्थित किया जाय वह यथासम्भव प्रकट न होने पावे। पर मेरी चाहती थी कि उसका स्वरूप उपस्थित लोगों को भली-भाँति विदित हो जाय। वह नीचे को झुकी और जोर-जोर से प्रार्थना करने लगी। इससे लगभग कुल जन-समुदाय इसमें शरीक हो गया। अपनी आवाज उस बड़े दालान में गूँजती देख उसने अपना स्वर जरा और ऊँचा कर दिया। वह अब अपनी पूरी शक्ति से लैटिन भाषा में जोर-जोर से प्रार्थना करने लगी। बीच-बीच में वह अंग्रेजी भी बोलती जाती थी, जिससे श्रोतागण उसका अर्थ समझ लें। वह सरलतापूर्वक अपने पवित्र पिता पोप से प्रार्थना कर रही थी।

अधिक जोर से बोलने के कारण उसकी छाती धड़कने लगी। पादरी ने विरोध करना छोड़ दिया और मेरी बाकी प्रार्थना अंग्रेजी में करने लगी। उसकी भाषा में अब भी वही तेज था। उसने प्रार्थना की, अपने चर्च के लिए, अपने पुत्र के लिए और रानी एलिजाबेथ के लिए। उसने कहा—"हे प्रभु ! इंग्लैण्ड पर कोप मत करना।"

इसी इंग्लैण्ड पर युद्ध करने के लिए उसने फिलिप को अन्त समय तक अड़े रहने की सम्मति दी थी। अपने शत्रुओं को कभी भी न भूल जाने को कहलाया था। फिर उसने चिल्लाकर कहा—"हे यीशू ! जिस प्रकार तुम्हारी बाँहें सूली पर लटकाई गई थी, उसी प्रकार मुझे भी अपनी शरण में लो और मेरे पापों को क्षमा करो।"

इन शब्दों को कहकर वह उठ खड़ी हुई। वे दोनों कहाली मूर्तियाँ भी आगे बढ़ी और साधारण रीति से उन्होंने उससे क्षमा माँगी।

"मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ", उसने कहा—"क्योंकि तुम अब मेरे कष्टों का अन्त कर दोगे।"

जल्लादों ने कहा क्या श्रीमती अपने वस्त्र सँभालने में हमें सहायता करने देंगी ?

रानी ने मुस्कराकर कहा—"सच है, ऐसे आज्ञाकारी सेवक मुझे पहले कभी न मिले थे।"

उसकी सहेलियों को ऊपर आकर वस्त्र ठीक करने की आज्ञा मिल गई। वह कार्य बहुत नाजुक था और उसकी तैयारियाँ बहुत सोच-विचार कर की गई थीं।

उसने अपने हाथ का बहुमूल्य क्रॉस कुर्सी पर रख दिया। प्रधान वधिक ने उसे उपहार समझकर उठा लिया, पर रानी ने उसे वहीं रख देने की आज्ञा दी। पहले का ही ओढ़ना सावधानी से हटाकर पाड़ पर रख दिया गया। फिर काला लबादा भी उतार लिया गया। इसके नीचे मखमली पेटीकोट था। उसके भीतर काली जाकेट थी। जाकेट के नीचे अतलस की चोली थी। उसकी एक सहेली ने उसे अपनी मखमल की आस्तीनें दीं, जिन्हें उसने जल्दी से पहन लिया। इस वेष में वह उस काली पाड़ पर खड़ी हुई।

उसके चारों ओर काली मूर्तियाँ थीं। मेरी ने यह देखा तो क्षण-भर के लिए उसके शरीर की रक्त-गति बढ़ गई।

मेरी की सहेलियाँ अब अपने को न सँभाल सकीं। वे फूट-फूटकर रोने लगीं। हृदय-विदारक आर्त्तनाद सुनकर उसने कहा—"धैर्य धरो, रोकर अपने हृदय की कायरता मत प्रकट करो।"

इसके बाद उसने उन्हें बारी-बारी से छाती से लगाया और ईश्वर से प्रार्थना करने का आदेश किया। फिर वह घुटने टेककर बैठ गई। बरबारा मोब्रे ने उसकी आँखों से पट्टी बाँध दी। "एण्ड्रयू !" उसने मुस्कराकर पुकारा। यही उसकी अन्तिम मुस्कराहट और अन्तिम नर-स्पर्श था। "एण्ड्रयू ! विदा !" सब लोग पाड़ से उतरकर दूर चले गए। उसने घुटने टेके हुए ही प्रार्थना की—"हे प्रभु ! मेरा विश्वास तुम्हारे ही ऊपर है।"

उसके कन्धे उघड़ गए थे। उनपर दोनों ओर एक-एक घाव का चिह्न था। केण्ट ने बेंत के संकेत से पूछा कि यह क्या है ? सेलसबरी ने धीरे-से कान में कहा—"यह उस समय के हैं जब वह मेरे साथ शेफील्ड में रहती थी।"

जब वह प्राथना कर चुकी तो उसने टिकटी को सँभाला और अपना सिर उस पर रख दिया और कुछ गुनगुनाने लगी. लकड़ी सख्त थी, वह उसके गले में चुभती थी। उसने गर्दन के नीचे अपने हाथ रख लिये। बधिकों ने उन्हें धीरे-से हटा दिया, ताकि उनकी चोटें खाली न जायें। फिर एक ने उसे अच्छी तरह से पकड़ लिया और दूसरे ने फरसे की चोट की।

बड़ा ही करुणाजनक दृश्य था। वधिक के हाथ लड़खड़ा गए। चोट रूमाल की गाँठ पर पड़ी और जरा-सी चमड़ी कटकर गिर पड़ी। उसने फिर चोट की और यह पूरी बैठी। गर्दन कटकर जरा-सी खाल के सहारे लटक गई और फिर अलग हो गई। दृश्य बदल गया और उसके साथ-साथ सुन्दरी मेरी भी बदल गई। यह सबकुछ एक जादू के समान हो गया। तख्त पर पड़ी हुई रानी की लाश करुणा और प्रेम की मूर्ति-सी प्रतीत होने लगी।

वधिक ने नियमानुसार उस सिर को ऊपर उठाकर लोगों को दिखाया। अब भी उस कुम्हलाये मुख से तेजस्विता फूटी पड़ती थी।

"महारानी के शत्रु नष्ट हुए।" पीटरबर्ग के पादरी ने चिल्लाकर कहा।

जन-समुदाय से ध्वनि उठी—"आमीन!"

केण्ट का सरदार उठा और लाश पर खड़ा होकर बोला—"महारानी और गोस्पल के शत्रुओं की आखिर यह दुर्दशा हुई।"

३३
पिता अबराहिम लिंकन का वध

मिसेज लिंकन : देखो सूसन ! जो कोई मुलाकात को आवे, उसे आने दो, और जरा प्रेजिडेण्ट से पूछो कि क्या वे चाय पीने भीतर आवेंगे ?

सूसन : मिस्टर लिंकन ने कहला भेजा है कि वे अभी आ रहे हैं।

मिसेज लिंकन : बहुत ठीक है।

(सूसन जाती है)

मिसेज लिंकन : सूसन !

सूसन : जी।

मिसेज लिंकन : तुम अब भी "मिस्टर लिंकन" कहकर पुकारती हो ? तुम्हें 'प्रेजिडेण्ट' कहना बड़ा मुश्किल मालूम होता है। पर तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि उन्हें अब हर कोई प्रेजिडेण्ट कहता है।

सूसन : नहीं श्रीमती, बहुत-से लोग तो उन्हें "पिता अबराहिम" कहते है और यही कहना उन्हें बहुत रुचता है। सिर्फ आज मि० कोल्डपेनी ने कहा था कि सूसन, बूढ़े चचा प्रसन्न तो हैं ?

मिसेज लिंकन : मैं समझती हूँ तुम इन्हें पसन्द नहीं करोगी।

सूसन : नहीं श्रीमती ! मैं तो सदैव "मिस्टर लिंकन" ही कहना पसन्द करती हूँ।

मिसेज लिंकन : हाँ, पर तुम्हें प्रेजिडेण्ट कहना चाहिए।

सूसन : श्रीमती ! मुझे भय है, मैं भूल जाऊँगी।

: २ :

सूसन : पर तुम हो कौन ?

हब्शी : मिस्टर फ्रेडरिक डगलस। मिस्टर लिंकन ने मुझे आने को कहा था। मुझे किसी ने नही रोका। मैं उनसे मिलने आया हूँ।

(प्रेजिडेण्ट आते हैं।)

लिंकन : कृपाकर बैठ जाइए।

डगलस : मगर ?

लिंकन : कृपा कर···तुम देखते हो, अगर तुम नहीं बैठोगे तो मैं भी खड़ा रहूँगा।

डगलस : काला काला है, सफेद सफेद है।

लिंकन : वाहियात ! दो बूढ़े आदमी बैठकर बातें करना चाहते हैं, यही न ?

(दोनों बैठ जाते हैं

डगलस : मैं समझता हूँ कि मेरी उम्र आपसे ज्यादा है।

लिंकन : हाँ, निसन्देह। मेरी उम्र ४४ की है।

डगलस : मैं ७२ वर्ष का हूँ।

लिंकन : मैं समझता हूँ, जब मैं ७२ वर्ष का हो जाऊँगा, तब मैं खूब मजबूत दीखूंगा।

डगलस : ठण्डा पानी, खूब घूमना, प्रभु मसीह पर विश्वास, यही तो बात है। मिस्टर लिंकन! आप चेष्टा करें, बहुत उत्तम बात है।

(वह एक छोटा पुर्जा लिंकन के हाथ में देता है)

लिंकन : धन्यवाद! मि० डगलस, मैंने तुम्हारी वक्तृता की बहुत कुछ तारीफ सुनी है।

डगलस : जी हाँ!

लिंकन : मैं सुनना चाहता हूँ।

डगलस : मिस्टर लिंकन मेरे भाइयों के सबसे बड़े मित्र हैं, हैं न ?

लिंकन : अन्त में मैं एक निर्णय पर पहुँच गया हूँ।

डगलस : निर्णय पर ?

लिंकन : गुलामी का अन्त होने वाला है। मैं सदैव इसके लिए उद्योगशील रहा हूँ। अब वह नष्ट होकर ही रहेगी।

डगलस : क्या आपको विश्वास है ?

लिंकन : निश्चय।

(डगलस धीरे-से उठकर सिर झुकाता है और फिर बैठ जाता है।)

डगलस : मेरे भाइयों को अभी बहुत कुछ सीखना बाकी है। इसके लिए सालों-साल चाहिए। जहालत, भय, शक्कीपन उनमें कितना अधिक है ? यह बड़ी कठिनाई से बहुत धीरे-धीरे निकलेगा। (जोश से) किन्तु स्वाधीन जन्म, स्वाधीन जीवन! मिस्टर लिंकन! मैं गुलाम उत्पन्न हुआ हूँ—इसे कोई व्यक्ति जो खुद पैदाइशी गुलाम न हो, नहीं समझ

सकेगा

: २ :

ग्राण्ड : (सामने की बड़ी घड़ी को देखकर) डेनिस ! डेढ़ घण्टा बीत गया, अब मीडे के पास से कुछ-न-कुछ सन्देश मिलना ही चाहिए।

डेनिस : (मेज के पास आकर) जी हाँ, श्रीमन् !

ग्राण्ड : इन कागजों को कप्तान टेम्पिलमैन के पास ले जाओ। और कर्नल वैस्ट से जरा पूछो कि क्या २३ नम्बर अभी तक मोर्चे पर है ? हाँ, जरा रसोइए से थोड़ा शोरवा १० बजे ले आने को कह देना। उससे यह भी कहना कि कल वह बिल्कुल ठण्डा था।

डेनिस : बहुत अच्छा श्रीमन् !

(जाता है।)

ग्राण्ट : मैलिन्स ! जरा मुझे नक्शा देना।

(मैलिन्स नक्शा देता है, जिस पर वह गौर करता है।)

ग्राण्ड : (चुपचाप बहुत देर तक गौर करके) हाँ, इसमें सन्देह नहीं, अब तो कुछ घण्टों ही का मामला है। मीडे शयन करने के समय से पूर्व ही सब कर लेगा। 'ली' महान पुरुष है, परन्तु अब उसका यहाँ से निस्तार नहीं है।

(उँगली से नक्शे पर गोल निशान बनाता है।)

मैलिन्स : (नक्शा लेते हुए) श्रीमन् ! क्या यही पर समाप्ति समझनी चाहिए ?

ग्राण्ट : हाँ, अगर 'ली' गिरफ्तार हो जाय तो हम सबको खदेड़ देंगे।

मैलिन्स : हे ईश्वर ! श्रीमन् ! यह तो बहुत ही उत्तम है। अब घर लौट चले।

ग्राण्ट : ईश्वर की कृपा से यही होगा जनाब !

मैलिन्स : श्रीमान क्षमा करें !

ग्राण्ट : तुम्हारा सवाल ठीक है। मैलिन्स मेरा लड़का अगले हफ्ते

में स्कूल जाने वाला है। मैंने उससे वादा किया है कि मैं उसके साथ चलूँगा, और सब ठीक-ठाक करूँगा।

(डेनिस आता है।)

डेनिस : कर्नल वैस्ट चाहते हैं जी हाँ, और आधे घण्टे के लिए। रसोइए ने कल की बात पर खेद प्रकट किया है। वह भूल हो गई थी।

ग्राण्ट : उससे कह देना, भूल रसोईघर तक ही रखा करे।

डेनिस : जो आज्ञा।

(जाता है।)

ग्राण्ट : (कागजों को देखते हुए) ये बन्दूकें इसी सन्ध्या को गई हैं?

मैलिन्स : जी हाँ, श्रीमान!

(एक अर्दली आता है।)

अर्दली : मिस्टर लिंकन आ रहे हैं श्रीमान! वे बाहर हैं।

ग्राण्ट : बहुत ठीक, मैं आता हूँ।

(अर्दली जाता है। ग्राण्ट उठता है और द्वार तक जाता है। वहीं पर लिंकन और स्लेनी से भेंट होती है। लिंकन ऊँचा जूता, लम्बा टोप पहने है। ग्राण्ट से हाथ मिलाते और मैलिन्स का सलाम लेते हैं।)

ग्राण्ट : महोदय! मुझे आपके पधारने का जरा भी गुमान न था।

लिंकन : नहीं, मगर मैं स्थिर नहीं रह सका! क्या खबर है?

(दोनों बैठते हैं।)

ग्राण्ट : मीडे ने डेढ़ घण्टा पूर्व सन्देश भेजा था कि 'ली' हर तरफ से घिर गया है, किन्तु दो मील का अन्तर है।

लिंकन : तब तो समाप्त ही समझो।

ग्राण्ट : यदि इन दो मीलों में कोई गड़बड़ी न हो महोदय! मैं मीडे की दूसरी रिपोर्ट की प्रतीक्षा प्रति मिनट कर रहा हूँ।

लिंकन : सम्भव है, रात-भर युद्ध जारी रहे, कम-ज्यादा, परन्तु 'ली' को समझ लेना चाहिए कि प्रातःकाल तो कुछ आशा नहीं है।

एक अर्दली : (प्रवेश करके) श्रीमान, एक सन्देश है।

(अर्दली जाता है। रणक्षेत्र से आया हुआ एक युवा अफसर प्रवेश करता है।)

अफसर : श्रीमान, जनरल मीडे की तरफ से।

ग्राण्ट : (पत्र लेकर) धन्यवाद !

(खोलकर पढ़ता है।)

ग्राण्ट : तुम जा सकते हो।

(अफसर जाता है।)

जी हाँ महोदय, वे हर तरह घिर गए हैं। मीडे ने उन्हें १० घण्टे का अवसर दिया है। इस समय ८ बजे हैं। ६ बजे प्रातःकाल सब समाप्त है।

(पत्र लिंकन के हाथ में देता है।)

लिंकन : हमें दयापूर्ण होना चाहिए। अजीब 'ली' बड़ा तेजस्वी व्यक्ति है।

ग्राण्ट : (एक कागज लेता हुआ) शायद श्रीमान इस फिहरिस्त पर नजर करेंगे। मैं समझता हूँ हम इससे अधिक रियायत और नहीं कर सकते।

लिंकन : (कागज लेकर) ग्राण्ट ! यह इस व्यापार का भयानक भाग है। क्या किसी को प्राण-दण्ड भी देना है ?

ग्राण्ट : सिर्फ एक।

लिंकन : बुरा। ग्राण्ट, इसके बिना नहीं चला सकते न, नहीं ?

ग्राण्ट : कदापि नहीं।

लिंकन : वह कौन है ?

ग्राण्ट : मैलिन्स···

मैलिन्स : (एक किताब खोलता हुआ) विलियम स्कॉट महोदय ! यह एक संगीन अपराध है।

लिंकन : क्या हुआ ?

मैलिन्स : अभी उसने एक लम्बा सफर किया था। फिर उसने स्वेच्छा से डबल गार्ड-ड्यूटी एक रोगी मित्र के बदले ली। पर वह

मोर्चे पर सोता पाया गया ।

(पुस्तक बन्द कर देता है)

ग्राण्ट : मैं उसे क्षमा कर देना चाहता हूँ ! परन्तु यह अशक्य है, वह एक बहुत ही नाजुक जगह थी और वह वक्त भी बहुत ही नाजुक था ।

लिंकन : उसे गोली कब मारी जायेगी ?

ग्राण्ट : कल प्रातःकाल महोदय !

लिंकन : मेरी राय में इससे उसका कुछ भी उपकार न होगा। वह कहाँ है ?

मैलिन्स : यहीं श्रीमान !

लिंकन : क्या मैं उसके पास जा सकता हूँ ?

ग्राण्ट : वह कहाँ है ?

मैलिन्स : बार्न में, मेरा अन्दाजा है श्रीमान !

ग्राण्ट : डेनिस !

डेनिस : (आकर) जी श्रीमान !

ग्राण्ट : स्कॉट को यहाँ ले आने को कहो।

(डेनिस जाता है।)

मैं कर्नल वैस्ट से मिलना चाहता हूँ। मैलिन्स, टेम्पलमैन से पूछो कि क्या सूची बन गई।

(वह जाता है। मैलिन्स पीछे-पीछे जाता है।)

लिंकन : क्या तुम भी—स्लेनी···?

(स्लेनी जाता है।)

(लिंकन किताब को खोलकर फिर पढ़ता है। विलियम स्कॉट गार्डों के पहरे में आता है। आयु २० साल है।)

लिंकन : (गार्डों से) धन्यवाद ! अब तुम लोग बाहर ठहरो।

(गार्ड सलाम करके जाता है।)

लिंकन : तुम्हीं विलियम स्कॉट हो ?

स्कॉट : जी हाँ, श्रीमान !

लिंकन : क्या तुम मुझे पहचानते हो ?

स्कॉट . जी हाँ, श्रीमान !

लिंकन : जनरल ने अभी मुझे बताया है कि तुम्हें गोली मारी जायेगी।

स्कॉट : जी हाँ, श्रीमान !

लिंकन : तुम पहरे पर सो गए थे ?

स्कॉट : जी हाँ, श्रीमान !

लिंकन : यह तो भारी अपराध है।

स्कॉट : श्रीमान, मैं समझता हूँ।

लिंकन : ऐसा क्यों हुआ ?

स्कॉट : (शोक से) श्रीमान, मैं जाग नहीं सका।

लिंकन : तुमने लम्बी यात्रा की थी, क्यों ?

स्कॉट : २३ मील श्रीमान !

लिंकन : और तुमने डबल गार्ड-ड्यूटी की थी ?

स्कॉट : जी हाँ, श्रीमान !

लिंकन : किसकी आज्ञा से ?

स्कॉट : श्रीमान, अपनी इच्छा से।

लिंकन : क्यों ?

स्कॉट : इंच व्हाइट बीमार था, उसके बदले। श्रीमान ! हम दोनों एक ही गाँव के रहने वाले हैं।

लिंकन : कहाँ के ?

स्कॉट : वरमण्ट के श्रीमान !

लिंकन : वहीं तुम रहते हो ?

स्कॉट : जी हाँ, श्रीमान, मेरी'''हमारी कुछ जमीन वहाँ है।

लिंकन : वहाँ अब कौन है ?

स्कॉट : मेरी माता, श्रीमान ! यह उसकी फोटो है।
(जेब से फोटो निकालकर देता है।)

लिंकन : (फोटो लेकर) क्या वह इस बात को जानती है ?

स्कॉट : श्रीमान, ईश्वर के लिए उसे खबर न होने पावे।

लिंकन : ठहरो, ठहरो मेरे बच्चे, तुम नहीं मारे जाओगे।

स्कॉट : (उत्तेजित होकर) श्रीमान ! क्या मुझे गोली नहीं मारी जायेगी ?

लिंकन : नहीं, कदापि नहीं।

स्कॉट : नहीं, मुझे गोली नही मारी जाएगी।

(वह धरती में गिरकर सुबकियाँ लेता है।)

लिंकन : (उठकर और उसके पास जाकर) सुनो, सुनो, मैं तुमपर विश्वास करता हूँ। तुम कहते हो, तुम जागते नहीं रह सके। मैं तुम पर भरोसा करता हूँ और तुम्हें तुम्हारी रेजीमेण्ट में वापस भेजता हूँ।

(वह फिर अपनी जगह पर बैठता है।)

स्कॉट : श्रीमान, मैं कब अपनी जगह पर जा सकूँगा ?

लिंकन : कल प्रातःकाल। मैं समझता हूँ युद्ध का अन्त हो चुका ?

स्कॉट : श्रीमान, क्या युद्ध समाप्त हो गया ?

लिंकन : बिल्कुल नही।

स्कॉट : श्रीमान, कृपया मुझे अभी जाने की आज्ञा दीजिए।

लिंकन : अच्छी बात है।

(लिंकन लिखता है।)

लिंकन : क्या तुम जानते हो जनरल मीडे कहाँ होंगे ?

स्कॉट : नही श्रीमान !

लिंकन : उन आदमियों में से एक को भीतर बुलाओ।

(स्कॉट बुलाता है, आदमी आते हैं।)

लिंकन : तुम्हारा कैदी रिहा कर दिया गया है। इसे फौरन इस पत्र के साथ मीडे के पास ले जाओ।

(पत्र देता है।)

सिपाही : जो आज्ञा श्रीमान !

(वह सलाम करता है और स्कॉट के साथ जाता है।)

लिंकन : स्लेनी !

स्लेनी : (बाहर से) महोदय !

(भीतर आता है।)

लिंकन : क्या वक्त होगा ?

स्लेनी : (घड़ी पर नजर करके) साढ़े नौ बजे हैं श्रीमान !

लिंकन : मैं जरा यहाँ सोऊँगा। तुम भी जरा कमर सीधी कर लो, कोई जरूरी खबर होगी तो वह हमें जगा देंगे।

(लिंकन दो कुर्सी जोड़कर उनपर सो जाता है, स्लेनी एक बेंच पर पड़ा रहता है, कुछ मिनट बाद ग्राण्ट आता है और भीतर का माजरा देखता है, धीरे से बत्ती बुझाता और बाहर चला जाता है।)

: ४ :

(लिंकन और स्लेनी वहीं सो रहे हैं, दिन का प्रकाश कमरे में भर गया है। अर्दली आता है, उसके हाथ में दो गर्मागर्म काफी के प्याले और कुछ बिस्कुट हैं। लिंकन जाग पड़ते हैं।)

लिंकन : गुड मार्निंग !

अर्दली : गुड मार्निंग श्रीमान !

लिंकन : (काफी और बिस्कुट लेते हुए) धन्यवाद !

(अर्दली स्लेनी की ओर बढ़ता है। वह अभी सो ही रहा है।)

लिंकन : स्लेनी ! (जोर से) स्लेनी !

स्लेनी : (हड़बड़ाकर) जी हाँ, बुरा हो नींद का, श्रीमान क्षमा करें।

लिंकन : कुछ नहीं, थोड़ी काफी लो।

स्लेनी : धन्यवाद श्रीमान !

(वह बिस्कुट और काफी लेता है, अर्दली जाता है।)

लिंकन : स्लेनी ! खूब सोये।

स्लेनी : श्रीमान, मैं तो बिल्कुल बेसुध हो गया !

लिंकन : क्या बजा होगा ?

स्लेनी : (घड़ी देखकर) ठीक छः, श्रीमान !

(ग्राण्ट आता है।)

ग्राण्ट : गुड मार्निंग महोदय ! गुड मार्निंग स्लेनी !

लिंकन : गुड मार्निंग जनरल !

स्लेनी : गुड मार्निंग श्रीमान !

ग्राण्ट : महोदय, कल रात आपके आराम में दखल देना उचित नहीं समझा। अभी मीडे के पास से सन्देश आया है, 'ली' ने चार घण्टे की मोहलत माँगी है।

लिंकन : (कुछ देर चुप रहकर) गत चार वर्षों से इसी क्षण की प्रतीक्षा थी। आश्चर्य है, कितने सीधे-सादे ढंग से यह क्षण आ गया। ग्राण्ट ! तुमने बड़ी सच्चाई से देश की सेवा की है और तुम्हीं ने मेरी अभिलाषा को सम्भव बनाया है। (वह उसके हाथ पकड़ लेता है।)

लिंकन : धन्यवाद !

ग्राण्ट : अगर मैं कहीं असफल रहा, तो महोदय ! आप उसके भागी नहीं। मेरी सफलता की कुञ्जी तो यही है कि श्रीमान का मुझपर विश्वास रहा है।

लिंकन : 'ली' कहाँ है ?

ग्राण्ट : वह यहीं आ रहा है, मीडे आने ही वाला है।

लिंकन : 'ली' कहाँ प्रतीक्षा करेगा ?

ग्राण्ट : उसके लिए कमरा तैयार है। क्या महोदय उसका स्वागत करेंगे ?

लिंकन : नहीं, नहीं, ग्राण्ट, यह तुम्हारा अधिकार है। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तुम राजनीतिक मामलों की परवाह नहीं करोगे। महज साधारण ढंग से। समझे ?

ग्राण्ट : (जेब से एक कागज निकालकर) ये वे शर्तें हैं जो मैंने तजवीज की हैं।

लिंकन : (पढ़ते हुए) बहुत उचित। ये तुम्हारे सम्मान के योग्य ही हैं।

(वह कागज मेज पर रख देता है, अर्दली आता है।)

अर्दली : जनरल मीडे हाजिर हैं श्रीमान !

ग्राण्ट : उन्हें भीतर आने दो।

अर्दली जो आज्ञा हो श्रीमान

(बाहर जाता है।)

ग्राण्ट : मैंने अपने प्रारम्भिक दिनों में राबर्ट 'ली' से बहुत कुछ शिक्षा पाई थी। वह हम सबसे श्रेष्ठ मनुष्य हैं। महोदय! यह कार्य हृदय को प्रिय प्रतीत होता है।

लिंकन : मुझे प्रसन्नता है ग्राण्ट! कि यह कार्य एक वीर पुरुष के द्वारा सम्पन्न हो रहा है।

(जनरल मीडे, कप्तान सोन और उनकी एडी कैम्प भीतर आते हैं, मीडे सलाम करता है)

लिंकन : मुबारक! मीडे तुमने बड़ा काम किया।

मीडे : धन्यवाद श्रीमान!

ग्राण्ट : क्या और कहीं कुछ युद्ध हुआ?

मीडे : एक या दो घण्टे तो खूब ही गर्मागर्म।

ग्राण्ट : 'ली' कितनी देर में यहाँ पहुँचेगा?

मीडे : कुछ ही मिनटों में श्रीमान!

ग्राण्ट : तुमने शर्तों की बाबत तो कुछ नहीं कहा?

मीडे : नहीं श्रीमान!

लिंकन : एक लड़का, स्कॉट तुम्हारे पास पहुँचा था न?

मीडे : जी हाँ, महोदय! वह तत्काल ही मोर्चे पर चला गया। वह वहीं मारा गया। क्यों न सोन?

सोन : जी हाँ, श्रीमान!

लिंकन : मारा गया! ग्राण्ट! क्या ही अद्भुत जगत् है?

मीडे : क्या कोई फरमान जारी करना है—शत्रुओं की तरफ से मुख्य कैदियों के प्रति?

ग्राण्ट : मैं···।

लिंकन : नहीं, नहीं, उनके खराब-से-खराब आदमी को भी फाँसी देने या गोली मारने को मैं पसन्द नहीं करता। उन्हें देश से बाहर कर दो, द्वार खोल दो, उन्हें चले जाने दो। (वह अपनी बाँहें फैलाता है) गुडबाई ग्राण्ट! जितना शीघ्र हो

सक, वाशिंगटन रिपोर्ट भेज देना। (वह हाथ मिलाता है)
गुडबाई—सज्जनो! आओ स्लेनी।
(मीडे सलाम करता है, लिंकन जाता है। स्लेनी उसके पीछे जाता है।)

ग्राण्ट : 'ली' के साथ और कौन है?

मीडे : सिर्फ स्टाफ का एक अफसर श्रीमान!

ग्राण्ट : सोन, तुम जरा मैलिन्स के पास जाओ और जनरल 'ली' के आने की सूचना दो तत्काल।

सोन : जो आज्ञा श्रीमान!
(वह बाहर जाता है।)

ग्राण्ट : मीडे! बहुत बड़ा काम समाप्त हुआ।

मीडे : जी हाँ, श्रीमान!

ग्राण्ट : हमारा अभिप्राय पूर्ण हुआ। हमने एक बड़े योद्धा को परास्त किया है, यह मैं कह सकता हूँ। पर मीडे! यह अब्राहिम लिंकन ही है जिसने युद्ध के उस कारण को स्पष्ट किया है। उसने हम जैसे पुरुषों को विजय का सेहरा पहनाया है मीडे! एक ग्लास लो (ह्विस्की डालते हुए) नहीं? (पीता है) मीडे! क्या तुम जानते हो, कुछ मूर्ख मुझे लिंकन के मुकाबले अगले चुनाव में खड़ा करना चाहते थे। मैंने अपनी योग्यता का स्थान प्राप्त कर लिया है। परन्तु मैं उनसे अधिक ज्ञान रखता हूँ।
(मैलिन्स आता है।)

मैलिन्स : जनरल 'ली' हाजिर है।

ग्राण्ट : मीडे! क्या जनरल 'ली' मुझसे यहाँ मिलने का सम्मान प्रदान करेंगे।
(मीडे सलाम करता है और आता है।)

ग्राण्ट : मैलिन्स, मेरी टोपी कहाँ है, और तलवार?

मैलिन्स : ये है श्रीमान!
(मैलिन्स उन्हें लाता है। मीडे और सोन आते हैं और द्वार

पर चुपचाप खड़े रह जाते हैं। राबर्ट 'ली' जनरल-इन-चीफ-आफ-दी-कोर फेडरेट-फोर्सेज भीतर आता है। एक अफसर साथ है। कष्ट और सहिष्णुता के चिह्न उसके मुख-मण्डल पर अंकित हैं। परन्तु वीरता और निर्भरता उसके नेत्रों में है। दो कमाण्डर आमने-सामने होते हैं। ग्राण्ट सलाम करता है और 'ली' जवाब देता है।)

ग्राण्ट : श्रीमान ने मुझे प्रतिपक्ष के सम्मुख गर्वित होने का अवसर प्रदान किया है।

ली : मैंने शक्ति रहते ऐसा नहीं किया। मैं पराजय स्वीकार करता हूँ।

ग्राण्ट : आपका आना...।

ली : इसलिए हुआ है कि मैं जानूँ कि तुम्हारी शर्तें क्या हैं ?

ग्राण्ट : (कागज हाथ में लेकर और ली को देकर) वे बिल्कुल साधारण हैं। मैं समझता हूँ कि आप उन्हें आपत्तिजनक नहीं पावेंगे।

ली : (पढ़कर) श्रीमान ! आप उदाराशय हैं। क्या मैं एक अनुरोध कर सकता हूँ ?

ग्राण्ट : मैं शक्तिभर श्रीमान के अनुरोध की रक्षा करूँगा।

ली : आप हमारे अफसरों को उनके घोड़े ले जाने दीजिए। हमारे सिपाहियों के घोड़े भी उनके अपने ही हैं।

ग्राण्ट : मैं समझ गया। उनके खेतों में जरूरत पड़ेगी। यही होगा।

ली : धन्यवाद ! यह काफी है। मैं आपकी शर्तें स्वीकार करता हूँ।

(ली अपनी तलवार कमर से खोलकर ग्राण्ट के हवाले करता है)

ग्राण्ट : नहीं, नहीं, वह अपने उपयुक्त स्थान पर है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ।

(ली फिर उसे कमर से बाँध लेता है। ग्राण्ट अपना हाथ बढ़ाता है और ली पकड़ता है। दोनों सलाम करते हैं और

ली वापस लौटता है।)

: ५ :

(१४ अप्रैल, १८६५ की संध्या का समय है। थियेटर खचाखच भरा है। तीन प्राइवेट द्वार कुछ अलग हटकर हैं। कुछ मिनट वहाँ सन्नाटा रहा, फिर जनता में शोर उठता है। बौक्स का द्वार खुलता है, बीच के कक्ष में लिंकन और स्टेनटन, श्रीमती लिंकन तथा कुछ और महिलाएँ बात करती दीखती हैं।)

पहली महिला : कितना आकर्षक है। क्यों, है न?

उसकी सहेली : निस्सन्देह, पर इस पर कठिनाई से विश्वास होता है।

दूसरी महिला : देखो वह काली लड़की कैसी सुघड़ दीखती है! इसका नाम क्या है?

एक सज्जन : ऐलीनर क्राउन।

दूसरा सज्जन : कैसी भयानक बात है!

एक स्त्री : प्रेजिडेण्ट बहुत प्रसन्न मालूम पड़ते हैं।

दूसरी : इसमें आश्चर्य क्या है? उन्हें गर्व करना ही सजता है।

(एक युवक काले वस्त्रों से शरीर ढाँपे धीरे से गुजर जाता है, लिंकन के बॉक्स पर तीव्र दृष्टि डालता है। वह जॉन विलकर बूथ है।)

एक महिला : (दूसरी से) आह श्रीमती बैनिंगटन! तुम अपने पति के कक्ष तक आ जाने की आशा करती हो?

(वे चले जाते हैं, सूसन कुछ कसीदा लिये आती है, बॉक्स तक जाती है। श्रीमती लिंकन से बात करती है, और बाहर भीड़ से जरा हटकर बैठ जाती है।)

एक युवक : मैं स्टेज पर जाने की सोचा करता हूँ। मित्रों का ख्याल है कि मैं असाधारण अभिनेता हूँ। सिर्फ मैं अपने स्वास्थ्य का ख्याल करके रह जाता हूँ।

एक लड़की : ओह, यह बड़ा सरल जीवन है। इस तरह अभिनय...।

(शोर—"लिंकन-लिंकन" लिंकन आते दिखते हैं, बैठते हैं,

शोर — प्रसीडण्ट स्पीच—अबराहिम लिंकन।" शोर जारी रहता है। कुछ क्षण बाद मिस्टर लिंकन उठते हैं। तड़ातड़ तालियों की गर्जन, फिर बिल्कुल शान्ति होती है।)

ंकन : मेरे मित्रो! आपकी यह शुभ भावना मेरे हृदय तक पहुँची है। कठिन और अन्धकारपूर्ण चार वर्षों के बाद हमारा महान उद्देश्य पूर्ण हुआ है। जनरल ग्राण्ट द्वारा जनरल 'ली' का पतन युद्ध निश्चय समाप्ति पर है (हर्षध्वनि)। इस समय मुझे केवल यही कहना है कि मैं जनता पर अधिकार रखने का दावा नहीं कर सकता। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं जनता के अधीन हूँ। किन्तु जब जनता मेरे सम्मुख आयी है, मैंने उसे दृढ़ विश्वासी पाया। अब हमने एक अमेरिकन संघ बना लिया और एक बड़ी भूल को सुधार लिया। (हर्षध्वनि)!

अब हमें केवल आपस में समझौता करना है, जो दया और उदारता एवं प्रेमयुक्त होना चाहिए। प्रतिपक्षी दल की हानियों पर दृष्टि डालते समय हमें अपनी समस्त उदारता और योग्यता लगा देनी उचित है। यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी अभिमानपूर्ण अभिलाषा है और मैं इस सेवा में देश का साथ देने को उत्सुक हूँ। (हर्षध्वनि) चाहे जो हो, किन्तु मैंने जो कृपा और सहानुभूति प्राप्त की है, यह उसका तुच्छ बदला है। बिना किसी प्रकार की विडम्बना के और सार्वजनिक कल्याण की भावना से हमें निश्चय करना चाहिए कि परमेश्वर की सत्ता में यह जाति स्वाधीनता का नवीन जीवन प्राप्त करती है और यह प्रजा सत्ता, प्रजा-द्वारा प्रजा के लिए, कभी पृथ्वी पर अशान्ति न करेगी।

(तालियों का प्रचण्ड घोष, एक लड़का सामने आकर कहता है—महिलाओ और सज्जनो! अन्तिम दृश्य। मनुष्य उधर देखते हैं, बॉक्स का दरवाजा बन्द होता है, सूसन अकेली रह जाती है और सन्नाटा हो जाता है।)

(कुछ क्षण बाद 'बूथ' आता है। वह सूसन की नजर बचाकर बीच के बॉक्स में घुस जाता है। एक हाथ अपने लबादे में डालता है। पिस्तौल निकालता है। धड़ाका होता है, वह भागता है। मिस्टर लिंकन गिर जाते हैं, श्रीमती लिंकन घुटनों के बल उनके पास बैठ जाती है। एक डॉक्टर उधर को दौड़ता है। थियेटर में सन्नाटा है।)

सूसन : (झेंपती और रोती हुई) मालिक, मालिक, नहीं-नहीं, मेरे मालिक !!

अफसर : (शोक से बाहर आकर) अब वे अमर हुए !

३४
कैकेयी

पाकिस्तान बनने से पूर्व, जिस इलाके को फ्रण्टियर कहा जाता था, और जिसका विस्तार बलूचिस्तान-क्वेटा से लेकर पेशावर, चित्राल, गिलगित तक था, वह इलाका अत्यन्त प्राचीनकाल में—त्रेतायुग के अन्त में—केकय देश कहाता था। उस समय वहाँ आनव वंश के महाप्रतापी चक्रवर्ती राजा और सात समुद्रों के स्वामी महामनस के उत्तराधिकारी महाराज शत्रुघ्न राज्य करते थे। कैकेयी इन्हीं की इकलौती बेटी थी।

कैकेयी अयोध्या के मानव सम्राट् दशरथ की तीसरी रानी थी। दशरथ बड़े प्रतापी और योद्धा थे। उन्होंने सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, मत्स्य, काशी, दक्षिण कोशल, मगध, अंगबंग, कलिंग और द्रविड नरेशों को जीतकर अश्वमेध यज्ञ करके सम्राट् की उपाधि पायी थी। उन्होंने गिरिव्रज के प्रसिद्ध युद्ध में उत्तर पाञ्चाल नरेश दिवोदास की सहायता की थी तथा कुलीतर के वंशधर असुर तिमिध्वज शम्भर के सौ किले तोड़कर अपने प्रबल पराक्रम से जय किया था।

कैकेयी जैसी अद्वितीय रूपवती थी—वैसी ही बुद्धिमती और मानवती

तथा वीरांगना भी थी। छोटी रानी होने से वह राजा को बहुत प्रिय थी। राजा ने उसे इस शर्त को स्वीकार करके ब्याहा था कि उसी का पुत्र अयोध्या का राजा होगा—तथा गिरिव्रज के कठिन युद्ध में उसने राजा के प्राणों की रक्षा की थी—तब राजा ने उसे दो वर देने चाहे थे और रानी ने—फिर कभी ले लूँगी—कहकर उन्हें हँसकर स्वीकार कर लिया था।

समय आने पर राजा के चार पुत्र हुए। कैकेयी के पुत्र भरत थे परन्तु बड़े पुत्र राम थे। बड़े होने के अतिरिक्त राम सब श्रेष्ठ गुणों से भरपूर थे। अत: जब ये पुत्र ब्याहे जाकर समर्थ हुए तो राज्याधिकार का प्रश्न उठा। रघुकुल की परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्याधिकार मिलना उचित था। परन्तु महाराज दशरथ ने इस परम्परा का उस समय विचार नहीं किया था। और उसका उल्लंघन करके प्रतिज्ञा करके सूत्र में बँधकर कैकेयी से विवाह किया था। परन्तु अब उन्हें अपनी भूल प्रतीत हुई। उन्होंने भरत और शत्रुघ्न को उसकी ननिहाल भेज दिया और उनकी गैर-हाजिरी ही में राम का राज्याभिषेक करने की ठान ली तथा आनन-फानन में अभिषेक की सब तैयारियाँ कर डाली।

रानी कैकेयी उन वरों को और उस यौतुक प्रतिज्ञा को भी भूल गई थी। अत: जब राजधानी में राजतिलक की धूमधाम हुई, उसकी दासी मन्थरा ने उसे यह समाचार सुनाया तो उसने आनन्द से विभोर होकर अपने सारे रत्नजटित आभूषण मन्थरा दासी को देकर कहा—

> इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
> एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूय: करोमि ते।।
> रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
> तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति।।

अरी मन्थरा, यह तो तूने बड़ी खुशी की बात सुनायी। कह, अब तुझे और क्या दूँ? राम और भरत मेरे लिए दो नहीं हैं। राम को राजतिलक हो रहा है, उससे मैं बहुत खुश हूँ।

परन्तु मन्थरा दासी बड़ी दुष्ट और कुटिल थी। वह बूढ़ी और कुबड़ी दासी रानी के बहुत मुँहलगी और ढीठ थी। उसने मुँह बनाकर वे गहने फेंक दिये और धरती में बैठकर अपना सिर पीटकर कहने लगी— रानी:

जी, यह शोक करने का अवसर है और तुम खुश हो रही हो, कुछ समझ भी है ! मैं तो तुम्हारे हित की ही कहती हूँ। अरी—सौत के बेटे की वृद्धि तो मौत ही समझो। राम को भरत ही से तो भय है।

इस पर कैकेयी ने हँसकर कहा—

धर्मज्ञो गुणवान्दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति॥
भ्रातॄन्भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत्पालयिष्यति।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्॥

राम धर्मात्मा हैं, गुणी है, उदार है, कृतज्ञ हैं, सत्यवादी और शुद्ध हृदय हैं। वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र है, युवराज होने का अधिकारी है, वह चिरंजीव अपने भाइयों और सेवकों का पिता के समान पालन करेगा। सो तू कुबडी, राम के राज्याभिषेक को देखकर क्यों जल-जलकर मर रही है ?

मन्थरा गहरे-गहरे साँस फेंकती हुई बोली—रानी, तुम अनर्थदर्शिनी हो, अपनी मूर्खता से तुम यह नहीं सोचती हो कि किस दुःखसागर में और शोक-सन्ताप में तुम्हारा बेड़ा डूब रहा है। अरी, राम राजा होगा तो उसके बाद उसीका बेटा राजा होगा, भरत तो बिचारा राजवंश से कट ही गया। और यह तो पक्की बात है कि राम अपने राज्य को अकंटक बनाने के लिए भरत को देश-निकाला दे देगा या मरवा ही डालेगा। उसकी मदद पर लक्ष्मण तो है ही। दोनों अश्विनीकुमार की भाँति एक हैं। इसलिए राम का रोड़ा तो भरत ही है। वह राम का सहज वैरी है। हाय रानी, अब तुम राम के आगे हाथ पसारकर कैसे जिओगी ? तुमने अपने दर्प और सौभाग्य के नशे में अपनी सौत कौसल्या का बहुत अपमान किया था—वह वैर क्या कौसल्या अब भूल जायगी ? बस तुम समझ लो—ज्योंही राम राजा हुआ तो भरत का सर्वनाश हो गया। सो तुम्हें अकल हो तो ऐसा करो कि भरत राजा हो और राम को देश-निकाला मिले।

दासी का यह विष-वचन सुनते ही कैकेयी क्रोध की ज्वाला से जल उठी। वह सर्पिणी की भाँति फुफकार मारती हुई बोली—

अद्य राममितः क्षिप्रं वनं प्रस्थापयाम्यहम्।
यौवराज्येन भरतं क्षिप्रमद्याभिषेचये॥

इद त्विदानीं सम्पश्य केनोपायेन साधये।
भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथंचन॥

तो ले, मैं आज ही राम को वन भेजूँगी और भरत का राज्याभिषेक लूँगी।

अब कह—क्या उपाय करूँ कि भरत को राज्य मिले और राम वन जाये।

यह सुनकर मन्थरा ने कहा—याद करो रानी, देवासुर संग्राम में जब तुमने राजा की प्राण-रक्षा की थी, तब राजा ने तुम्हें दो वर दिये थे। तुम्हीं ने मुझे बताया था। वह मैं भूली नहीं। अब समय है। वही वर माँग लो—एक से भरत को राज्य और दूसरे से राम को चौदह वर्ष का वनवास। चौदह वर्ष में भरत प्रजा के मन को मोह लेंगे।

यह सुनते ही रानी कैकेयी निराभरण हो कोपभवन में जा भूमि पर बैठ गई और कहने लगी—

इह वा मां मृतां कुब्जे नृपायावेदयिष्यसि।
वनं तु राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यते क्षितिम्॥
सुवर्णेन न मे ह्यर्थो न रत्नैर्न च भोजनैः।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते॥

अरी कुब्जे, राजा से कहना—मैंने मरणव्रत ले लिया है। या तो राम वन जायें और भरत राजा हों, नहीं तो मैं प्राण दूँगी। मुझे न धन, रत्न-स्वर्ण चाहिए, न दाना-पानी।

राजा ने सुना। वह कोपागार में गये—उन्होंने धरती पर पड़ी निराभरण रानी को देखा—और उसके अंग पर हाथ फेरकर कहा—

इतना गुस्सा किसपर? किसने तुम्हें नाराज किया, किसने तुम्हारा अपमान किया, कुछ मुँह से तो कहो—

तब कैकेयी बोली—

नास्मि विप्रकृता देव केनचिन्नावमानिता।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित् तमिच्छामि त्वया कृतम्॥
प्रतिज्ञां प्रतिजानीष्व यदि त्वं कर्तुमिच्छसि।
अथ ते व्याहरिष्यामि यथाभिप्रार्थितं मया॥

मुझे न किसीने अपमानित किया, न नाराज। मेरा एक मनोरथ है, वह तुम पूरा करने का प्रण करो तो मैं कहूँ।

राजा ने हँसकर रानी के केश सहलाते हुए कहा—जिस राम को बिना देखे मैं क्षण-भर भी नहीं जी सकता हूँ उसीकी शपथ खाकर कहता हूँ—प्रिये, तुम नहीं जानतीं कि तुम मुझे कितनी प्रिय हो। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। तुम अपना मनोरथ तो कहो।

तब कैकेयी ने कहा—

स्मर राजन् पुरा वृत्तं तस्मिन्देवासुरे रणे।
तत्र त्वां च्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा॥
तत्र चापि मया देव यत्त्वं समभिरक्षितः।
जाग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्रददौ वरौ॥
तौ दत्तौ च वरौ देव निक्षेपौ मृगयाम्यहम्।
तवैव पृथिवीपाल सकाशे रघुनन्दन॥
तत्प्रतिश्रुत्य धर्मेण न चेद् दास्यसि मे वरम्।
अद्यैव हि प्रहास्यामि जीवितं त्वद्विमानिता॥
तौ तावदहमद्यैव वक्ष्यामि शृणु मे वचः।
अभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः॥
अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम्।
यो द्वितीयो वरो देव दत्तः प्रीतेन मे त्वया॥
तदा देवासुरे युद्धे तस्य कालोऽयमागतः।
नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः॥
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः।
भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम्॥
एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे।
अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने॥

महाराज, याद कीजिए—आप देवासुर संग्राम में घायल हो गये थे और मैंने आपके प्राण बचाये थे। तब आपने प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये थे। वे अभी तक तुम्हारे पास धरोहर हैं—अब जो तुम अपना वचन रख वे वर नहीं देते तो आज ही मैं प्राण दे दूँगी। मेरा मनोरथ सुनो। तुमने जो

राम के राज्याभिषेक का समारम्भ जुटाया है, इसीसे भरत को राजतिलक दो और राम को चीर-वल्कल दे, आज, अभी चौदह वर्ष को वन भेज दो। यही मेरा मनोरथ है। इसे मैं आज, अभी पूरा हुआ देखना चाहती हूँ।

रानी के ये निर्मम निर्दय वचन सुनकर राजा हतबुद्धि हो बैठ गया। उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि क्या यह स्वप्न है या सत्य है या मैं पागल हो गया हूँ। फिर उसने दुःख और क्रोध में भरकर कहा—

नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि॥
किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयापि वा।
सदा ते जननीतुल्यां वृत्तिं वहति राघवः॥
तस्यैवं त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता।
त्वं मयाऽऽत्मविनाशाय भवनं स्वं निवेशिता॥

अरी निर्दयी, कुलच्छिनी-कुलनाशिनी, राम ने तेरा क्या बिगाड़ा था? वह तो तुझे सदा माता ही समझता रहा। फिर ऐसा अनर्थ तू क्यों करती है?

राजा के ये वचन सुन कैकेयी ने कहा—

यदि दत्त्वा वरौ राजन् पुनः प्रत्यनुतप्यसे।
धार्मिकत्वं कथं वीर पृथिव्यां कथयिष्यसि॥
भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप।
यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात्॥

महाराज, वर देकर आप पछता रहे हैं तो जाने दीजिए। परन्तु अब तुम पृथिवी पर धर्मात्मा कैसे कहे जाओगे? मैं तो राम को वन भेजकर ही सन्तुष्ट होऊँगी।

इतना कह कैकेयी चुप हो गई। विलाप करते हुए राजा को उसने नहीं मनाया। राजा आँखें फाड़कर रानी को देखता रह गया और फिर राम का स्मरण कर लम्बे-लम्बे साँस लेता हुआ मूर्छित हो कटे वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर गया।

३५

राम कथा

महर्षि वाल्मीकि अपने मनोहर आश्रम में कुशासन पर बैठे थे। दधीचि, पिप्पलाद आदि मुनिवरों से धर्म-चर्चा कर रहे थे कि देवर्षि नारद वीणा बजाते आ पहुँचे। वीणानाद सुन महर्षि वाल्मीकि ने सब मुनियों समेत उठ तप और स्वाध्याय की मूर्ति नारदजी का स्वागत किया और कहा—हे सर्वज्ञानी मुनि, इस समय संसार में गुणी, पराक्रमी, सच्चरित्र, दयालु, शास्त्रज्ञ, ज्ञानी, क्रोधरहित, तेजस्वी, समर्थ, विद्वान, जितेन्द्रिय पुरुष कौन हैं ? वाल्मीकि के ऐसे वचन सुनकर देवर्षि ने हँसकर कहा—हे परंतप, एक ही पुरुष में ये सब गुण होने अति दुर्लभ हैं। परन्तु इस समय संसार में एक ऐसा पुरुष है, जिसमें ये सब गुण हैं। वह राम है। उसका चरित्र मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

कोशल देश में अलंकृत एक अयोध्या नामक नगरी है, जो शोभा में इन्द्रपुरी का उपहास करती है। इस नगरी में इक्ष्वाकु कुल के राजा रामचन्द्र राज्य करते हैं। पहले एक बार इनके पिता महाराजा दशरथ ने जब इन्हें अपना युवराज बनाने की इच्छा प्रकट की तो रानी कैकेयी ने अपने पुराने दो वरों के बदले राम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक होना माँग लिया।

महाराजा दशरथ ने सत्य के बन्धन में बँधे रहने के कारण अपने प्राणों से प्रिय राम को वन जाने की आज्ञा दे दी, जिसे राम ने सिर नवाकर स्वीकार किया और वनवासियों का भेष बनाकर वन को चल दिये। उनके साथ ही उनकी पतिव्रता पत्नी सीता और प्रेममूर्ति भाई लक्ष्मण भी चले। इधर पुत्र वियोग में राजा ने प्राण त्याग दिये। सीता-राम के साथ बहुत लोग दूर तक उनके साथ आये। उन्हें समझा-बुझाकर राम ने शृङ्गवेरपुर मे वह रात काटी और वहाँ के स्वामी निषादों के चौधरी गुह का आतिथ्य स्वीकार किया। प्रातः गंगा पार कर नद-नदी-वन पार करते भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे। भरद्वाज मुनि ने उनका सत्कार किया और चित्रकूट पर

रहने की सलाह दी। तब श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित चित्रकूट पर पत्तों की कुटी बनाकर सुख से रहने लगे।

उधर भरत ने राजा होना स्वीकार ही नहीं किया, और वे राम को मनाकर लौटा ले जाने के लिए चित्रकूट आये। पर जब राम ने अपनी टेक न छोड़ी तो राम की चरणपादुका ले अयोध्या लौट आये और सिंहासन पर पादुका रख उन्हीं के नाम पर राज-काज देखने लगे। श्रीराम ने यह विचार कर कि कहीं फिर कोई ऐसी ही बाधा न आ पड़े—सुदूर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया, और दण्डकारण्य में आ बसे। यहाँ उन दिनों राक्षसों का राज्य था और रावण की बहिन शूर्पणखा वहाँ की रानी थी। राक्षस मुनियों को छेड़ते, दुःख देते, मारकर खा जाते, और उनके यज्ञों को विध्वंस कर देते थे। इन संतप्त वन-वासियों ने राक्षसों द्वारा खाये हुए मनुष्यों की हड्डियों के ढेर दिखाकर राम से रक्षा करने की प्रार्थना की। राम ने भी उन्हें सहायता का वचन दिया। इसी बीच शूर्पणखा से वन में राम की भेंट हो गई और उसके अनुचित प्रस्ताव पर क्रुद्ध हो लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। इससे शूर्पणखा ने खर-दूषण सहित चौदह हजार राक्षसों को लेकर राम की कुटिया को घेर लिया। परन्तु राम ने सबको मार भगाया। जब रावण ने यह बात सुनी तो वह मारीचि के साथ वन में आया। मारीचि को मायामृग बना, उसके पीछे राम रावण को भुलावा दे—छद्म भेष बना सीताजी को ले भागा। राह में जटायु ने बाधा दी तो उसे भी मार गिराया। मुमूर्ष जटायु से सीता-हरण का यह दारुण समाचार सुनकर राम उनकी खोज करते ऋष्यमूक पर्वत पर किष्किन्धा पुरी में आये। वहाँ पंपा सरोवर के किनारे उनकी भेंट महाबली हनुमान से हुई। हनुमान के माध्यम से उन्होंने वानरराज सुग्रीव से मित्रता कर बाली को मारा, और मित्र सुग्रीव को राजा बनाया। सुग्रीव ने भी सीता की खोज में हनुमान सहित बहुत से वानरों को देश-विदेश भेजा।

महाबली हनुमान् ने समुद्र तट पर पहुँचकर जटायु के भाई सम्पाति से रावण का पता पाकर सौ योजन का समुद्र लाँघ लंका जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अशोक वाटिका में राक्षसियों से घिरी मलिन वेश और दुःखित

मन सीता को देखा तथा वृक्ष पर से छिपकर राम नामांकित अँगूठी गिरा-कर सीता को अपनी प्रतीति करायी और आश्वासन दिया कि शीघ्र ही राम प्रभु आकर रावण को मार आपका उद्धार करेंगे। इससे सीता को बहुत सहारा मिला।

इसके बाद उन्होंने बहुत ऊधम मचाया। रावण का वह सुन्दर अशोक वन उजाड़ डाला। वाटिका के रक्षक पाँच सेनापति, सात राजपुत्रों सहित महापराक्रमी राजपुत्र अक्षकुमार एवं अन्य रक्षक राक्षसों को मार गिराया। बाद में राक्षस उन्हें बाँधकर रावण की कचहरी में ले गये। रावण ने क्रोध में आकर उन्हें जीवित जला डालने का दण्ड दिया। राक्षसों ने उनकी पूँछ में बहुत-सा गूदड़ लपेट उस पर तेल डाल आग लगा दी। हनुमान् उछलकर राजमहल के कंगूरों पर चढ़ गये और लगे कूद-कूदकर इधर-उधर आग लगाने। देखते-देखते ही राजमहल धाँय-धाँय जलने लगे। सारी लंका में आग फैल गयी और राक्षस-राक्षसियाँ जल-कर पटापट मरने लगे। जो बचे वे भागने लगे। लंका को जलाकर हनुमान् समुद्र में कूद पड़े और श्रीराम को आकर संदेश दिया।

श्रीराम लक्ष्मण और सुग्रीव सहित वानर सैन्य ले समुद्र तट पर पहुँचे और समुद्र पर पुल बाँध, समुद्र पार किया तथा विकट युद्ध कर रावण को सपरिवार मार सीता का उद्धार किया। विभीषण को राक्षसों का राजा बना अयोध्या लौटे, जहाँ भरत ने उनका राजसी स्वागत कर अयोध्या का राज्य उन्हें सौंप दिया।

रामराज्य में प्रजा बहुत सुखी थी, प्रजा का प्रत्येक जन समृद्ध और सुखी था। फसल अच्छी होती थी, अकाल का भय ही न था। राज्य में न कोई चोर था, न तस्कर। नगर-राज्य धन-धान्य से पूरित होते थे। राजा-प्रजा में पूर्ण सौहार्द्र था। राम ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये जिनमें अनगिनत गायें और स्वर्ण ब्राह्मणों को दान दिया गया। उन्होंने अनेक नये राजवंश स्थापित किये और चारों वर्णों को अपने-अपने कर्तव्यों में नियोजित किया।

३६
रक्षोऽहं

मसीह से लगभग अड़तीस शताब्दी पूर्व एक तेजस्वी तरुण मेधावी आस्ट्रेलिया महाद्वीप से अपने साहसिक वीरों के साथ उत्तर-पश्चिमी द्वीप-समूहों को जय करता हुआ स्वर्णलंका की ओर बढ़ा। उसने भारत के समस्त द्वीपसमूहों अंगद्वीप (सुमात्रा), यवद्वीप (जावा), मलयद्वीप (मलाया), शंखद्वीप (बोर्नियो), कुशद्वीप (अफ्रीका), वराहद्वीप (मैडागास्कर) पर अधिकार कर लिया और चारों ओर समुद्र से घिरी हुई, बड़ी-बड़ी सोने की खानों से भरी हुई स्वर्ण लंका को अपनी राजधानी बनाया। यही तेजस्वी तरुण रावण था। वह अपने युग का महाप्रतापी, सर्वजयी महा-पण्डित और अजेय योद्धा था। आस्ट्रेलिया, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, लंका, अफ्रीका आदि देशों पर उसका अबाध शासन था। सम्पूर्ण दक्षिण सागर पर उसका अधिकार था और 'रक्षोऽहं! रक्षोऽहं', मैं दक्षिण का रक्षक हूं, यह कहकर उसने राक्षस-संस्कृति की स्थापना की थी जो उसके पराजित होने पर एक बदनाम कुत्सित अर्थ वाला नाम बन गया।

उन दिनों लंका का अधिपति वैश्रवत कुबेर था। यह कुबेर रावण का सौतेला भाई था। आस्ट्रेलिया का प्राचीन नाम आन्ध्रालय है, जहां अत्यन्त प्राचीनकाल में बहिष्कृत आर्य बस गये थे। उन दिनों भारत और आस्ट्रेलिया के बीच इतना अन्तर न था जितना आज है तथा श्रीलंका और मैडागास्कर की भूमि बहुत विस्तीर्ण थी, जो भारत को आस्ट्रिया से जोड़ती थी। इन समस्त टापुओं में एक ही जाति निवास करती थी और ये द्वीप भारत के अनुद्वीप माने जाते थे तथा इन द्वीप-पुञ्जों का भूभाग लंका महाराज्य के अन्तर्गत था। कालान्तर में महर्षि पुलस्त्य वहां गये और आस्ट्रेलिया के महिदेव तृणबिन्दु के अतिथि बने। उन दिनों धर्मसत्ता और राजसत्ता सभी आर्य-अनार्यों में संयुक्त थी। तृणबिन्दु भी धर्म और राज्य का अधिकारी था। उसने पुलस्त्य को अपनी पुत्री ब्याह दी। इससे पुलस्त्य को 'विश्रवा' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे उसके पिता पुलस्त्य

ने सब वेद-वेदांगों का पारंगत बना दिया। युवा होने पर इसे भरद्वाज ने अपनी पुत्री ब्याह दी। इससे 'वैश्रवण' का जन्म हुआ। वैश्रवण बड़ा तेजस्वी, मेधावी और उत्साही तरुण था। उसे धनेश कुबेर का पद देकर और पुष्पक विमान भेंट देकर धनपति बना दिया गया। पिता के परामर्श से वह दक्षिण समुद्र के कूल पर त्रिकूट पर्वत पर बसी लंकापुरी को अपनी राजधानी बनाकर रहने और परम ऐश्वर्य भोगने लगा।

यह लंका नगरी इस समय बहुत दिनों से सूनी पड़ी थी। उसके चारों ओर सुदृढ़ दुर्ग और गहरी खाई थी। अस्त्र-शस्त्र भी बहुत मौजूद थे। वैश्रवण ने कुबेर के लोकपाल होकर नगरी को फिर से बसाया, उसे उन्नत किया और देव-गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष और असुर तथा दानवों से सम्पन्न किया।

वास्तव में यह नगरी दैत्यों की थी। हेति-प्रहेति दो दैत्य-बन्धु थे। वे बड़े सम्पन्न थे। हेति दैत्य ने काल दैत्य की बहिन भया से विवाह किया। उसका पुत्र विद्युत्केश हुआ जिसका विवाह सध्या की पुत्री साल-कंटका से हुआ। उसके सुकेश नामक पुत्र हुआ। उससे विश्वावसु गन्धर्व ने अपनी पुत्री वेदवती ब्याह दी। इससे माली, सुमाली और माल्यवान तीन प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हीं तीनों ने दक्षिण समुद्र तट पर त्रिकूट सुवेल पर्वत पर तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी लंकापुरी बसायी तथा उसे विविध भाँति से सम्पन्न किया। इन्हें नर्मदा नाम की गन्धर्वी ने अपनी तीन पुत्रियाँ ब्याह दीं तथा ये तीनों दैत्यबन्धु, दैत्यराज बाली के सेनापति हुए। गन्धर्व-पुत्रियों से माल्यवान के सात पुत्र और एक पुत्री हुई। सुमाली के ११ पुत्र और ४ पुत्रियाँ हुईं। माली के ४ पुत्र हुए। इस प्रकार इन तीनों भाइयों का दैत्य-परिवार वृद्धिगत होता गया। धन-सम्पदा भी खूब बढ़ी। परन्तु इसी समय बाली दैत्य से विष्णु का युद्ध हो गया जिसमें बाली बन्दी हुआ और ये तीनों दैत्यबन्धु उस विकट संग्राम में पराजित हुए। इनके सब योद्धा मारे गये। माली वहीं खेत रहा, सुमाली और माल्यवान विष्णु के भय से भागकर पाताल में जा छिपे। लंका लौटने का उन्हें साहस नहीं हुआ। इसीसे लंका बहुत दिन तक उजाड़, सूनी पड़ी रही। उसी सूनी लंका पर वैश्रवण ने लोकपाल धनेश कुबेर

हाकर अधिकार कर लिया।

बहुत दिन बाद सुमाली फिर बाहर आया और वह अपनी लंका के चारों ओर चक्कर लगाने लगा वह बहुत बूढ़ा हो गया था। उसके साथ उसकी तरुण पुत्री कैकसी थी। वह चाहता था कि वह अपनी लंका पर फिर अधिकार करे परन्तु अग्नि के समान तेजस्वी कुबेर लोकपाल को देखकर उसका साहस न हुआ।

बहुत सोच-विचारकर वह कुबेर के पिता विश्रुवा मुनि के पास गया और उसे अपनी बेटी ब्याह दी। इस विवाह से उस दैत्य का सम्बन्ध प्रजापति के वंश से हो गया। अब वह धैर्य से पुत्री के पुत्रजन्म की प्रतीक्षा करने लगा। विश्रुवा के कैकसी से तीन पुत्र और एक कन्या हुई। पुत्रों में रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण तथा पुत्री शूर्पणखा। विश्रुवा ने तीनों पुत्रों को विधिवत् शिक्षा दी। वे ज्यों ही युवा हुए उनके नाना सुमाली ने, जो उन्हीं के साथ रहता था, रावण को अपनी पैतृक नगरी लंका लेने को उकसाना आरम्भ किया। वहाँ के स्वर्णदान, शस्त्रागार एवं वैभव की बढ़ा-चढ़ाकर चर्चा की और उसके मन में वहाँ बैठकर महाराज्य स्थापना की अभिलाषा उत्पन्न कर दी। रावण महत्त्वाकांक्षी, मेधावी और साहसी था। वह अपने भाइयों, मित्रों और तरुणों को ले आश्रमालय से निकला और एक-एक कर सब द्वीपों को जय करता हुआ लंका के सम्मुख आ धमका। उसका प्रधान सलाहकार, उसका नाना सुमाली उसके साथ था। सुमाली के दो पुत्र प्रहस्त और अकम्पन तथा माल्यवान के पुत्र विरूपाक्ष, मारीचि, सहोदर जो उसके मामा होते थे, उसके मन्त्री बन गये थे। लंका के निकट पहुँच रावण को छाती से लगाकर सुमाली ने कहा—'पुत्र, बहुत दिन के हमारे मनोरथ अब पूर्ण होंगे। विष्णु का अब हमें कोई भय नहीं है, मेरी लंका में तुम्हारा सौतेला भाई कुबेर रहता है। वह यदि राजी से उसे छोड़ दे तो ठीक है, नहीं तो हम शस्त्र से उसे मारकर तुम्हें लंकाधीश्वर बनायेंगे। अब तुम्हीं डूबते हुए दैत्य वंश के सहारे हो।'

परन्तु रावण नाना की यह बात सुनकर चुप हो गया। वह इस सोच में पड़ा कि कैसे बड़े भाई से ऐसा प्रस्ताव करे। परन्तु सुमाली के पुत्र और रावण के मामा तथा प्रधानमन्त्री प्रहस्त ने बार-बार उसे उछाला

ने सब वेद-वेदांगों का पारगत बना दिया। युवा होने पर इसे भरद्वाज ने अपनी पुत्री ब्याह दी। इससे 'वैश्रवण' का जन्म हुआ। वैश्रवण बड़ा तेजस्वी, मेधावी और उत्साही तरुण था। उसे धनेश कुबेर का पद देकर और पुष्पक विमान भेंट देकर धनपति बना दिया गया। पिता के परामर्श से वह दक्षिण समुद्र के कूल पर त्रिकूट पर्वत पर बसी लंकापुरी को अपनी राजधानी बनाकर रहने और परम ऐश्वर्य भोगने लगा।

यह लंका नगरी इस समय बहुत दिनों से सूनी पड़ी थी। उसके चारों ओर सुदृढ़ दुर्ग और गहरी खाई थी। अस्त्र-शस्त्र भी बहुत मौजूद थे। वैश्रवण ने कुबेर के लोकपाल होकर नगरी को फिर से बसाया, उसे उन्नत किया और देव-गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष और असुर तथा दानवों से सम्पन्न किया।

वास्तव में यह नगरी दैत्यों की थी। हेति-प्रहेति दो दैत्य-बन्धु थे। वे बड़े सम्पन्न थे। हेति दैत्य ने काल दैत्य की बहिन भया से विवाह किया। उसका पुत्र विद्युत्केश हुआ जिसका विवाह संध्या की पुत्री साल-कंटका से हुआ। उसके सुकेश नामक पुत्र हुआ। उससे विश्वावसु गन्धर्व ने अपनी पुत्री वेदवती ब्याह दी। इससे माली, सुमाली और माल्यवान तीन प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हीं तीनों ने दक्षिण समुद्र तट पर त्रिकूट सुबेल पर्वत पर तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी लंकापुरी बसायी तथा उसे विविध भाँति से सम्पन्न किया। इन्हें नर्मदा नाम की गन्धर्वी ने अपनी तीन पुत्रियाँ ब्याह दीं तथा ये तीनों दैत्यबन्धु, दैत्यराज बाली के सेनापति हुए। गन्धर्व-पुत्रियों से माल्यवान के सात पुत्र और एक पुत्री हुई। सुमाली के ११ पुत्र और ४ पुत्रियाँ हुईं। माली के ४ पुत्र हुए। इस प्रकार इन तीनों भाइयों का दैत्य-परिवार वृद्धिगत होता गया। धन-सम्पदा भी खूब बढ़ी। परन्तु इसी समय बाली दैत्य से विष्णु का युद्ध हो गया जिसमें बाली बन्दी हुआ और ये तीनों दैत्यबन्धु उस विकट संग्राम में पराजित हुए। इनके सब योद्धा मारे गये। माली वहीं खेत रहा, सुमाली और माल्यवान विष्णु के भय से भागकर पाताल में जा छिपे। लंका लौटने का उन्हें साहस नहीं हुआ। इसीसे लंका बहुत दिन तक उजाड़, सूनी पड़ी रही। उसी सूनी लंका पर वैश्रवण ने लोकपाल धनेश कुबेर

होकर अधिकार कर लिया।

बहुत दिन बाद सुमाली फिर बाहर आया और वह अपनी लंका के चारों ओर चक्कर लगाने लगा वह बहुत बूढ़ा हो गया था। उसके साथ उसकी तरुण पुत्री कैकसी थी। वह चाहता था कि वह अपनी लंका पर फिर अधिकार करे परन्तु अग्नि के समान तेजस्वी कुबेर लोकपाल को देखकर उसका साहस न हुआ।

बहुत सोच-विचारकर वह कुबेर के पिता विश्रुवा मुनि के पास गया और उसे अपनी बेटी ब्याह दी। इस विवाह से उस दैत्य का सम्बन्ध प्रजापति के वंश से हो गया। अब वह धैर्य से पुत्री के पुत्रजन्म की प्रतीक्षा करने लगा। विश्रुवा के कैकसी से तीन पुत्र और एक कन्या हुई। पुत्रों में रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण तथा पुत्री शूर्पणखा। विश्रुवा ने तीनों पुत्रों को विधिवत् शिक्षा दी। वे ज्यों ही युवा हुए उनके नाना सुमाली ने, जो उन्हीं के साथ रहता था, रावण को अपनी पैतृक नगरी लंका लेने को उकसाना आरम्भ किया। वहाँ के स्वर्णदान, शस्त्रागार एवं वैभव की बढ़ा-चढ़ाकर चर्चा की और उसके मन में वहाँ बैठकर महाराज्य स्थापना की अभिलाषा उत्पन्न कर दी। रावण महत्त्वाकांक्षी, मेधावी और साहसी था। वह अपने भाइयों, मित्रों और तरुणों को ले आश्रमालय से निकला और एक-एक कर सब द्वीपों को जय करता हुआ लंका के सम्मुख आ धमका। उसका प्रधान सलाहकार, उसका नाना सुमाली उसके साथ था। सुमाली के दो पुत्र प्रहस्त्र और अकम्पन तथा माल्यवान के पुत्र विरूपाक्ष, मारीचि, सहोदर जो उसके मामा होते थे, उसके मन्त्री बन गये थे। लंका के निकट पहुँच रावण को छाती से लगाकर सुमाली ने कहा—'पुत्र, बहुत दिन के हमारे मनोरथ अब पूर्ण होंगे। विष्णु का अब हमें कोई भय नहीं है, मेरी लंका में तुम्हारा सौतेला भाई कुबेर रहता है। वह यदि राजी से उसे छोड़ दे तो ठीक है, नहीं तो हम शस्त्र से उसे मारकर तुम्हें लंकाधीश्वर बनायेंगे। अब तुम्हीं डूबते हुए दैत्य वंश के सहारे हो।'

परन्तु रावण नाना की यह बात सुनकर चुप हो गया। वह इस सोच में पड़ा कि कैसे बड़े भाई से ऐसा प्रस्ताव करे। परन्तु सुमाली के पुत्र और रावण के मामा तथा प्रधानमन्त्री प्रहस्त ने बार-बार उसे उछाला

दिया—वीर पुरुषों का कोई भाई-चारा नहीं होता। दिति और अदिति दोनों ही सगी बहिनें थीं तथा दोनों ही प्रजापति कश्यप की पत्नियाँ थीं, पर अदिति के देव और दिति के दैत्य जन्मे। अपने पराक्रम और मातृपक्ष से ज्येष्ठ होने से सारी पृथिवी दैत्यों ही के अधिकार में थी पर विष्णु ने छल से दैत्यों का नाश करके देवों को आगे बढ़ाया। इसलिए यह कोई नयी मर्यादा नहीं है।

प्रहस्त की यह बात सुन रावण ने प्रहस्त को ही अपना दूत बनाकर कुबेर के पास भेजा। उसने लोकपाल कुबेर से कहा—'मुझे आपके भाई दशग्रीव रावण ने यह निवेदन करने भेजा है कि यह लंकापुरी और लंका का साम्राज्य हम दैत्यों का है, इसलिए आप इसे हमें लौटा दें तो ठीक है। यह एक धर्म की बात है, इसमें हमारा-आपका प्रेम भी बना रहेगा।' कुबेर ने कहा—'जब पिता की आज्ञा से मैंने लंका में वास किया था तब यह सूनी थी, इसका कोई स्वामी न था। मैंने इसे सुसम्पन्न किया। अब रावण भी यहाँ आकर रहे, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। अभी रावण के साथ मेरा बँटवारा नहीं हुआ है। सब धन, राज्य के स्वामी पिता है फिर मैं पिता की सम्मति भी लूँगा।'

रावण लंका में घुस बैठा और नित नये उपद्रव करने लगा। इससे तंग आकर कुबेर ने पिता से सलाह माँगी। पिता ने कहा, 'रावण दैत्यों के बल से सम्पन्न है। तेरे लिए यही अच्छा है कि तू लंका छोड़ दे। वह दैत्य प्रजा से परिपूर्ण है, तथा रावण का सारे द्वीपसमूहों पर कब्जा है। इसलिए सुरक्षा इसी में है कि तू कैलास पर मन्दाकिनी के तट पर अपनी राजधानी बना। वहाँ तेरे सजातीय अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर, देव आदि जातियाँ भी हैं।'

कुबेर ने पिता की आज्ञा मानकर लंका खाली कर दी और रावण ने दल-बल सहित लंका अधिकृत कर ली और 'रक्षाम' कहकर अपने समूह को रक्ष-रक्षक घोषित कर दिया तथा राक्षस जाति का संगठन किया। इस प्रकार वह रक्ष संस्कृति का प्रतिष्ठाता हुआ। राक्षसों ने मिल-कर रावण को सम्पूर्ण द्वीपसमूहों का अधिपति स्वीकार कर लिया तथा दिति के पुत्र मय दैत्य ने अपनी पुत्री मन्दोदरी का विवाह रावण से कर

दिया। शूर्पणखा का विवाह उसने दानव विद्युज्जिह्व के साथ कर दिया। फिर वैरोचन की दौहित्री वज्रज्वाला से कुम्भकर्ण का और गन्धर्वों के राजा शैलूष की कन्या सरमा से विभीषण का विवाह कर दिया। माली के चारों पुत्र विभीषण के मन्त्री हो गये। रावण का दल तथा साम्राज्य सुगठित होता गया और वह धीरे-धीरे चार समुद्रों का अधिपति बन गया। जब उसका पुत्र मेघनाद युवा हुआ तो उसने इन्द्र, वरुण, कुबेर और यम इन चारों लोकपालों को जय करने का संकल्प दृढ़ किया।

स्वर्ण लंका में अपना सिंहासन स्थापित करके और सम्पूर्ण दक्षिणवर्ती द्वीपसमूहों को अधिकृत कर रावण का ध्यान भारतवर्ष की ओर गया। लंका भारत के चरणों में ही थी तथा रावण में शुद्ध और बहिष्कृत दोनों ही आर्यों तथा दैत्य का रक्त मिश्रित था। उसका पिता आर्य विश्रवा था—माता दैत्य-पुत्री थी। उसका पालन-पोषण आर्य विश्रवा के आश्रम में उसी के तत्वावधान में हुआ था। उसकी शिक्षा-दीक्षा भी उसके पिता ने अपने अनुरूप की थी। वेद का उस समय जो रूप था, उसका उसने वहीं अध्ययन कर लिया। इस काल में आर्यों का एकमात्र साहित्य वे श्रुतियाँ ही थीं जो अभी लिपिबद्ध नहीं हुई थीं। रावण के मातृपक्ष में दैत्य संस्कृति थी। दैत्य और असुर, देवों और आर्यों के भाई-बन्द ही थे परन्तु रहन-सहन में बहुत अन्तर पड़ गया था। खासकर आर्यों द्वारा बहिष्कृत जातियाँ, जो सम्पूर्ण दक्षिणारण्य में एवं दक्षिणाचल में ही बस गयी थीं, आर्यों से द्वेष रखती थीं। बहिष्कृतजनों को ब्राह्मण एक संस्कार क्रिया से रहित और यज्ञों से बहिष्कृत कर देते थे, इसीलिए इन जातियों में ब्राह्मणों और उसके यज्ञों के प्रति एक द्वेष-भावना उत्पन्न हो गयी थी। रावण के मन में तीन तत्त्व काम कर रहे थे। उसका पिता शुद्ध आर्य और विद्वान ऋषि था। उसकी माता शुद्ध दैत्य वंश की थी। उसके बन्धु-बान्धव बहिष्कृत आर्य-वंशी थे, जिन्हें क्रियाकर्म से च्युत कर दिया गया था। इस तेजस्वी पुरुष ने अपने को समुद्र का रक्षक घोषित करके राक्षस उपाधि धारण की थी। प्रबल बाहुबल से लंका महाराज्य की स्थापना की जिसमें जावा, बाली, सुमात्रा, मैडागास्कर, अफ्रीका आदि सप्त महाद्वीप भी सम्मिलित थे। इसके बाद उसका ध्यान भारत और

भारतीय आर्यों को दलित करने और उनपर अपना आधिपत्य स्थापित करने की ओर गया।

उन दिनों आर्यों का संगठन खूब दृढ़ था। उन्होंने लोकपालों, दिग्पालों की स्थापना की थी जो आर्य देश के प्रान्त भाग की रक्षा करते थे। आर्यों की प्रबल जातियों में तब मरुत्, वसु, आदित्य प्रभावशाली थीं। चोटी के पुरुषों में इन्द्र, रुद्र, यम, वरुण, कुबेर आदि थे। यम, वरुण, इन्द्र कुबेर ये चार जन लोकपाल थे।

रावण ने आर्यों के इस संगठन को जड़मूल से उखाड़ फेंकने की योजना बनायी। उसने सांस्कृतिक विप्लव का सूत्रपात किया। उसका मेधावी मस्तिष्क और साहसिक शरीर ही यथेष्ट था। तिसपर उसके संगी-साथियों में उसका नाना सुमाली था और सेनापतियों में प्रवण, प्रहस्त, महोदर मारीचि, महापार्श्व, महादंष्ट्र यज्ञकोप, खर, दूषण, सुपट, त्रिशिरा, दुर्मुख, अतिकाय, दैयन्तक, अकम्पन आदि महारथी रण और राजनीति के पण्डित भी थे। मय दानव को श्वसुर बनाकर उसने एक प्रबल जाति को सम्बन्धी बना लिया था। फिर कुम्भकरण से भाई और मेघनाद से पुत्र! अब रावण की सामरिक शक्ति चरम सीमा को पहुँच गयी। उसने रामेश्वर के निकट समुद्रमग्न पर्वत शृङ्खला के सहारे दक्षिण भारत से सम्बन्ध स्थापित किया। दक्षिण भारत में इस समय दो दल थे। एक वे, जिसे आर्यों ने दक्षिण अवध से बहिष्कृत कर दिया था। दूसरे वे, जो विदेशों से आकर भारत में समुद्र के उपकूलों पर बस गये थे। ये दल आर्य-अनार्य के नाम से प्रसिद्ध थे। रावण ने दोनों को अपना लिया और वैदिक संस्कृति पर राक्षसी प्रभाव स्थापित किया।

सबसे प्रथम उसने आर्यों के चार राजा—लोकपाल यम, इन्द्र, कुबेर और वरुण को जय करने का संकल्प किया। उसने राक्षसों और दानवों की बहिरग भारतीयों की संयुक्त सैन्य लेकर सर्वप्रथम अपने भाई कुबेर को दलित किया। उसके बाद यम को और फिर वरुण को। इन्द्र को वह बन्दी बनाकर लंका में ले आया। मार्ग में जो राज्य, जो सरदार मिला, उसी से युद्ध किया। उसका आतंक सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में छा गया। केवल दो वीरों से उसे मुँह की खानी पड़ी। एक किष्किन्धा के ऋषिराज बाली

से, दूसरे माहिष्मनि मैसूर के हैहय-कीर्तवीर्य अर्जुन से।

इस प्रकार उसने जम्बूद्वीप और भारत के आर्यदल की राजसत्ता और अधिकार को दलित कर उसके धर्म और आध्यात्म पर भी अपनी छाप लगायी। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि उन दिनों देव-असुर सर्वत्र ही महिदेवों का अधिकार था। अर्थात् धर्म और राज्य दोनों का शासन एक ही होता था। रावण ने भी सम्पूर्ण आर्य-अनार्य, अधिकृत और अनधिकृत आर्य तथा आर्येत्तर रूप को मिलाकर एक सम्मिलित धर्मनीति की प्रतिष्ठा की। सबसे प्रथम उसने वेद का सम्पादन किया। अपने पिता से उसने वेद पढा था। तबतक बहुत थोड़ा वेद निर्माण हो पाया था। उसे उसने अपनी टिप्पणियों से सम्पूर्ण किया। मूल मन्त्रों की व्याख्या की। व्यवहार अध्याय का बीच-बीच में वृद्धिगत किया। इस प्रकार मूलवेद और रावण-कृत टिप्पणियाँ और व्याख्या सब मिलकर वेद का एक ऐसा संस्करण हो गया जो आर्य-आर्येतर सबके लिए मान्य था। आगे चलकर यह रावणकृत भाष्य यजुर्वेद के नाम से विख्यात हुआ, अपने इस भाष्य से उसने लिंग-पूजन, पशुवध, मद्यपान, स्त्री समर्पण, गौ-वध, नरवध, ब्राह्मण वध, कुमारी वध आदि का विधान सम्मिलित कर दिया, जो वास्तव में बहिष्कृत आर्य तथा असुरो की परिपाटी थी। इसमें दैत्य, असुर, यक्ष राक्षस सभी को उसने रंचिलन किया तथा भारत के दक्षिणांचल में फैले हुए समागत अनार्यों (नैयर) और बहिष्कृत आर्य (ऐयर) दोनों को समान भाव से सम्मिलित कर लिया। चारों लोकपालों तथा वसु, नाग, गन्धर्व, अदित्य आदि आर्यों की सब जातियों को पराभूत करके उसने उनपर राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व स्थापित कर दिया। इसी विजय-यात्रा में उसीके हाथ से उसकी बहिन शूर्पणखा का पति मारा गया। इससे अनुतापित होकर उसने शूर्पणखा को दक्षिण भारत का दण्डकारण्य दे दिया और अपने भाई खर को वहाँ का गवर्नर और दूषण को सेनापति बनाकर १४ हजार राक्षसों की सेना उन्हें दी। उसने अपनी दो सैनिक छावनियाँ भारत में स्थापित कीं। एक दण्डकारण्य में खर की अध्यक्षता में, दूसरी नैषारण्य में मारीचि की अधीनता में। उसने बलपूर्वक वैदिक यज्ञ-अनुष्ठानों को आसुरी ढंग पर करने के लिए सहस्रों राक्षसों की सेना इस काम के लिए नियुक्त कर दी कि

जहाँ कहीं आर्य ऋषि रावण-विरोधी परिपाटी से यज्ञ कर रहे हों, वहाँ जबर्दस्ती बलि मांस और मद्य की आहुति दें। इतना ही नहीं, उसने राक्षसों द्वारा इन यज्ञकर्ता ऋषियों को मारकर ही बलि देना प्रारम्भ कर दिया। नर-भक्षता राक्षसों की संस्कृति थी। वाल्मीकि लिखते हैं कि ये मनुष्य-भक्षी राक्षस दण्डकारण्यवासी मुनियों को खा जाते हैं, मारीचि और सुबाहु तो इसी विभाग के अध्यक्ष थे। वाल्मीकि कहते हैं कि ये रुधिर और मांस से यज्ञ-वेदी पाट देते थे। इसी को लक्ष्य करके विश्वामित्र ने राम से कहा था कि इन लोगों ने दोनों जनपदों का विध्वंस कर दिया है। राम के दण्डकारण्य में पहुँचने पर ऋषियों ने उनसे कहा था कि अरण्य मे मनुष्य-भक्षी राक्षस रहते है, वे तपस्वी ब्राह्मणों को मारकर खा जाते है। वही राम को विराध राक्षस मिला था। मारे हुए ऋषियो की हड्डियों को दिखाकर ऋषियों ने राम से कहा था, यह राक्षसों द्वारा खाये हुए ऋषियों की हड्डियों का ढेर देखिए। यहाँ से चित्रकूट तक के तमाम अरण्य निवासियों का इन्होंने नाश कर दिया है। इनसे हमारी रक्षा कीजिए। ये आर्यों की कन्याओं को जबर्दस्ती हर ले जाते है, कौमार्य नष्ट होने पर उन्हें वे अपना पति मान लेती हैं। इससे हमें पिशाच, राक्षस और आसुर विवाह धर्म-सम्मत स्वीकार करने पड़े है।

रावण की स्थापित इस राक्षस संस्कृति का आर्य संस्कृति पर जो प्रभाव पड़ा, उसपर यदि आप विचार करना चाहते हैं तो आप पुराणों और महाभारत के पन्ने उलटिये। विश्वामित्र, पाराशर, आदि ऋषियों से व्यभिचार कर्म, शनिदेव के घर प्रतिदिन हजारों गायों का वध, शिव और कृष्ण के अश्लील वर्णन, इन्द्र और चन्द्र के ऋषि-पत्नियों से व्यभिचार तथा नित्य कर्म देखकर समझ में आ सकता है कि रावण की संस्कृति ने आर्य सस्कृति पर कैसा प्रभाव डाला। वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों की शुन: शेप और उजीगर्त की कथा नरबलि का अच्छा उदाहरण है।

ऐसे ही महासामर्थ्यवान् रावण से राम ने उस समय युद्ध किया जब रावण अजेय, विजय गर्व में अन्धा और सर्वसाधनसम्पन्न था तथा राम वनवासी, असहाय और साधन-विहीन थे। राम ने भीषण संग्राम में रावण का सपरिवार निधन किया। राम-रावण युद्ध के बड़े-बड़े परिणाम हुए।

विजयी होने के लिए राम को दो कार्य करने पड़े, उन्हें कपिराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण से सन्धि करनी पड़ी और उनसे सहायता लेनी पड़ी। साथ ही उन्हें प्रसन्न करने के लिए तथा उनका विश्वास सम्पादन करने के लिए रामेश्वर में समुद्र के अंचल में लिंग स्थापन कर उसकी पूजा करनी पड़ी। और जब रावण का निधन हो गया तब राज्य विभीषण को देकर उसे राक्षसों का राजा स्वीकार करना पड़ा। परन्तु कालान्तर में यह पराजित राक्षस वंश पनपा नहीं। राम पुत्र कुश ने अफ्रीका महाखण्ड पर अधिकार कर लिया।

ऐसे विकट राक्षस राज को समूल नष्ट कर आर्यों की मूल संस्कृति की रक्षा राम ने की। उन्होंने सर्वत्र ही धर्म, मर्यादा तथा आदर्शों का पालन किया। इसीसे इस राम-रावण युद्ध की स्मृति में हिन्दू हजारों वर्षों से दशहरे का त्योहार मनाते हैं, और हजारों वर्ष तक मनाते रहेंगे।

३७
सुख

पूरे पचास वर्ष हाड पेले, पर वह न आया। अन्त को हारकर उस दिन, जब सबकुछ त्यागकर कुटिया में बैठा था, आधी रात के समय, चोर की तरह चारों तरफ से अपने को ढँककर वह आया। उस समय वह हँस रहा था। मुझे 'मान' आ गया। मैंने उसकी तरफ नहीं देखा। मैं मुँह फुलाकर बैठ गया। अब से ४० वर्ष पहले, जब मेरा ब्याह हुआ, मेरी नववधू, देर तक मेरी प्रतीक्षा करके, मेरे आने पर इसी तरह बैठ गयी थी और तब मैंने जैसे प्यार से अपनी स्त्री से कहा था, वैसे ही उसने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा—'नाराज हो गये क्या ?'

मैंने मान में भरकर कहा—'तुम अब आये हो ?'

उसने कहा—'तुमने मुझे बुलाया कब था ? मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते बूढ़ा हो गया।'

मैंने झुंझलाकर कहा—'क्या मैंने उस प्यार की पुतली को तुम्हारे ही

लिए ज्ञान होमकर नहीं प्राप्त किया ? तुम्हारे ही लिए क्या मैंने धन के पहाड़ लगाने में दिन-रात एक नहीं कर दिये ? तुम्हारी ही खातिर ज्ञान प्राप्त करने के झंझट में क्या मैं अन्धा और रोगी नहीं हो गया ? यश के लिए क्या मैंने तन-मन को चूर-चूर करने वाली विपत्ति और अटूट परिश्रम से अपना शरीर मिट्टी मे नहीं मिला दिया ?'

उसने हँसकर कहा—'क्या मैं तुम्हारी सुन्दरी प्यार की पुतली का गुलाम था, जो उसके साथ दौड़ा आता ? या तुमने मुझे सट्टे-बाजार का अर्थ-पशु समझ रक्खा था, जो धन के पलड़े पर चढ़ा चला आता ? तुम्हारे यश और ज्ञान से मेरा क्या वास्ता था ?'

मैंने आँख फाड़-फाड़कर उसकी तरफ देखा। मान जाता रहा। मैंने कहा—'आखिर तुम थे कहाँ ? मैंने तो तुम्हें इन्हीं वस्तुओं का साथी समझा था।'

उसने हँसकर कहा—'मूर्ख ! मैं तो अपने घर में, यहीं, तेरे पड़ोस ही में था। एक आवाज सुनते ही चला आता।'

मैंने रोकर कहा—'जाओ, अब मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है, मेरी चाह अब मर गयी है।'

उसने सहानुभूति से कहा—'चाह तुमने की कब थी ? तुमने जो चाहा, वह मिला। धन चाहा, धन मिला। परी-सी सुन्दर स्त्री चाही, वह मिली, ज्ञान चाहा, ज्ञान मिला; यश चाहा, यश मिला; मुझे चाहते, तो क्या मैं न मिलता ?'

मैंने रुष्ट होकर कहा—'तो अब क्यों आये हो ? मेरे पास अब क्या रक्खा है ? मुझे शान्ति भी तो नहीं मिली।'

उसने मधुर तिरस्कार के साथ कहा—'तुम्हारे पास कुछ नहीं रक्खा तो मैं भी कोई भिखारी बनकर तुम्हारे पास नहीं आया हूँ। शान्ति की भी तुमने कब चाह की थी ? कल तक तुम यह करो, वह करो, करते रहे, अभिमानी पुरुष ! बिना बुलाये कौन तुम्हारे द्वार पर आवेगा ? हम लोग दहेज की वस्तु नहीं हैं।'

इतना कहकर उसने आँचल में से शान्ति का हाथ पकड़कर मेरी गोद में बिठा दिया, और स्वयं मुझे गोद में लेकर बैठ गया।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं बर्फ की डली के आर-पार हो रहा हूँ। या मानो ओस की बूँद के ऊपर उधर बैठा हूँ अथवा पानी की गिरती धार पर खड़ा हूँ। नहीं तो किसी पुरुष या पुष्प की गन्ध को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। मानो मृगतृष्णा ने सचमुच मेरी प्यास बुझा दी है।

३८
बैजू बावरा

ग्वालियर महाराज मानसिंह संगीत के धुरन्धर पण्डित थे। उनके यहाँ गुजरात के नागर ब्राह्मण बैजनाथ अत्यन्त प्रसिद्ध कलाकार और गायक थे। उन्होंने ध्रुवपद-धमार का आविष्कार करके महाराज को प्रसन्न किया। महाराज ने उन्हें संगीत की नवीन और प्राचीन दोनों पद्धतियों का ज्ञाता, नृत्य, गीत, वाद्य तथा छन्द-प्रबन्ध में अद्वितीय समझ उन्हें नायक की पदवी दी। कीर्ति सुनकर गुजरात के शाह सुलतान मुहम्मद ने नायक बैजनाथ को अपने दरबार में बुला मँगाया। महाराज ने एक भव्य समारोह करके उन्हें विदा किया।

गुजरात के सुलतान ने बैजनाथ का बड़ा सत्कार किया। उनका दरबार संगीत और काव्य की धारा में बह गया। यहीं उनकी गोपाल नायक से मित्रता हो गई। दरबार में चिलमन में शहजादी भी आकर बैठती थी। वह बैजनाथ के रूप, गुण पर मोहित हो गई। युवक बैजनाथ शहजादी को नहीं देख पाते थे, पर चिलमन में एक झलक दीखती थी उसीसे उत्साहित हो वे काव्य रचते और संगीत गाते। बहुधा गोपाल नायक से उनकी प्रतिस्पर्धा होती। नायक बैजनाथ की संगीतधारा अब शहजादी पर केन्द्रित हो गई। यह बात शहजादी समझी, बैजनाथ समझा और गोपाल समझा। शहजादी को मोहित करने में दोनों की होड़ बढ़ गई। अन्त में बैजनाथ की काव्य और संगीत की धारा शहजादी की मूर्ति की प्रतिबिम्ब हो गई। दोनों की परस्पर आसक्ति बढ़ी।

एक दिन गायक की सूनी कुटी में, जब वह शहजादी की स्मृति में

विभोर बैठा था शहजादी की दासी दरियाबीबी पहुँची और हँसते हुए एक सोने की तश्तरी, जिस पर इत्र से सुवासित कीमती रूमाल ढँका था, बैजनाथ के आगे पेश की और कहा—'खुशियाँ मनाओ हजूर, शहजादी आप पर खुश है। उन्होंने यह सौगात भेजी है।'

बैजनाथ ने रूमाल उघाड़कर देखा तो सोने के वर्क में लपेटी हुई पान की गिलोरी है। उसका मुँह सूख गया और उसने उसे लौटाते हुए कहा—'लौटा ले जाओ। वह गरीब बैजनाथ ब्राह्मण मूर्ख रोटी का भिखारी है, शहजादी के इस दान का पात्र नहीं।'

दरियाबीबी ने कहा—'यह क्या कवि, तुम शहजादी के प्रेम को अस्वीकार कर रहे हो, जिसकी चाहना बड़े-बड़े शहनशाह कर रहे हैं?'

बैजनाथ ने कहा—'नहीं-नहीं, शहजादी से कहना—मैं इस कृपा का पात्र नहीं हूँ। तुम इसे लौटा ले जाओ।'

दरियाबीबी चली गई। दूसरे दिन बिना गायन की सामग्री के बैजनाथ ने शाह की खिदमत में जाकर कहा—'हजूर, मुझे कुछ दिन की छुट्टी मिले। अब तक उधार की पूँजी से मेरा व्यापार चलता था अब अपनी निजी पूँजी जुटाकर सेवा में आऊँगा। विवाह करूँगा किसी अपनी ही जैसी गरीब ब्राह्मणी से।'

शाह बहुत हँसे, परन्तु शहजादी के आँसू बह चले। बैजनाथ चला गया। शाह का दरबार फीका पड़ गया। गोपाल नायक ने बहुत चाहा, पर उसका रंग न जमा।

शहजादी के आग्रह से बैजनाथ फिर आया। साथ में पत्नी भी लाया। सीधी-सादी गाँव की बहू। जब वह दरबार में आया तो उसके रंग बदले हुए थे। भड़कीली पोशाक न थी, सीधा-सादा वेश था। संगीत और काव्य में भी अब शृङ्गार न था, शान्त रस था। शहजादी ने समझ लिया कि मेरी पराजय हो गई। अब इस काव्य-संगीत का लक्ष्य कोई और ही है, शहजादी नहीं।

और एक दिन फिर दरियाबीबी कवि के घर पहुँची। वही सोने की तश्तरी उसके हाथ में थी। कवि ने डरते हुए कहा—'अब क्या लायी हो?'

बाँदी ने कहा—'देख लो, शहजादी का तोहफा है।'

कवि ने रूमाल उघाड़कर देखा—वहीं सोने के वर्क में लपेटी हुई पान की गिलोरी थी पर सूखी हुई, कुचली हुई। चूर-चूर। कवि का मुँह सूख गया। उसने सिर झुका लिया। बाँदी चली गई।

एक दिन शहजादी का पैगाम कवि की स्त्री को मिला कि—शहजादी का आपके यहाँ कल निमन्त्रण है। सुनकर कवि की स्त्री हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई—यह खूब है कि शहजादी माँगकर निमन्त्रण लेती है।

और दूसरे दिन शहजादी कवि की झोपड़ी में आयी। कवि की स्त्री ने उसके लिए बहुत से पकवान बनाये। शहजादी रसोई के बाहर बैठकर उससे बात करती रही। फिर कहा—'बहिन, बहुत बना चुकी। अब बस करो। चलो हम दोनों बावड़ी में नहायें, फिर साथ बैठकर खायें।'

दोनों जल में देर तक नहाती रहीं। जल-क्रीड़ा करती रहीं। दोनों ने वस्त्र उतारकर घाट पर रख दिये थे। अकस्मात् शहजादी ने पानी से निकलकर कवि की स्त्री के साधारण वस्त्र पहन लिये। कवि की स्त्री ने रोका तो शहजादी धरती पर लोट-लोटकर और उन वस्त्रों को छाती से लगा-लगाकर विलाप करने लगी कि इन्हीं वस्त्रों ने मेरे हीरे-मोती की पोशाक को हराया। मुझे हृदय के सिंहासन पर से हटाकर इन्होंने अधिकार जमाया। मुझे इन्हें छाती से लगाने दो। प्यार कर लेने दो।

बैजनाथ ने जब यह देखा तो उसका मुंह सूख गया। उसने बादशाह से घर जाने की छुट्टी माँगी, पर शाह ने न सुनी। कवि को छुट्टी नहीं मिली। कवि ने ब्राह्मणी को घर भेज दिया। वह एकाकी उसी कुटी में रहने लगा।

मुगल बादशाह हुमायूं ने गुजरात को घेर लिया। बैजनाथ ने तम्बूरा फेंककर तलवार बाँधी। घनघोर युद्ध होने के बाद सुलतान की हार हुई। हुमायूं ने किले के सब कैदियों को कत्ले-आम करने का हुक्म दिया। कत्ल किये जाने वाले कैदियों में बैजनाथ भी था। हुमायूं गुस्से में भरा हुआ सुर्ख पोशाक पहने कत्ल का दृश्य देख रहा था।

बैजू को एक मुगल ने युद्ध मे हराकर पकड़ा था। बैजू ने कहा—'मुझे बचादोगे तो अपनी तोल-भर सोना दूंगा।' सिपाही ने उसके सिर की पगड़ी उतार उसीसे उसके दोनों हाथ बाँध दिये और कत्ल किये जाने वाले

विभोर बैठा था, शहज़ादी की दासी दरियाबीबी पहुँची और हँसते हुए एक सोने की तश्तरी, जिस पर इत्र से मुवासित कीमती रूमाल ढँका था, बैजनाथ के आगे पेश की और कहा--'खुशियाँ मनाओ हज़ूर, शहज़ादी आप पर खुश है। उन्होंने यह सौगात भेजी है।'

बैजनाथ ने रूमाल उघाड़कर देखा तो सोने के वर्क में लपेटी हुई पान की गिलोरी है। उसका मुँह सूख गया और उसने उसे लौटाते हुए कहा--'लौटा ले जाओ। वह गरीब बैजनाथ ब्राह्मण सूखी रोटी का भिखारी है, शहज़ादी के इस दान का पात्र नहीं।'

दरियाबीबी ने कहा--'यह क्या कवि, तुम शहज़ादी के प्रेम को अस्वीकार कर रहे हो, जिसकी चाहना बड़े-बड़े शहनशाह कर रहे हैं?'

बैजनाथ ने कहा--'नहीं-नहीं, शहज़ादी से कहना--मैं इस कृपा का पात्र नहीं हूँ। तुम इसे लौटा ले जाओ।'

दरियाबीबी चली गई। दूसरे दिन बिना गायन की सामग्री के बैजनाथ ने शाह की खिदमत में जाकर कहा--'हज़ूर, मुझे कुछ दिन की छुट्टी मिले। अब तक उधार की पूँजी से मेरा व्यापार चलता था अब अपनी निजी पूँजी जुटाकर सेवा में आऊँगा। विवाह करूँगा किसी अपनी ही जैसी गरीब ब्राह्मणी से।'

शाह बहुत हँसे, परन्तु शहज़ादी के आँसू बह चले। बैजनाथ चला गया। शाह का दरबार फीका पड़ गया। गोपाल नायक ने बहुत चाहा, पर उसका रंग न जमा।

शहज़ादी के आग्रह से बैजनाथ फिर आया। साथ में पत्नी भी लाया। सीधी-सादी गाँव की बहू। जब वह दरबार में आया तो उसके रंग बदले हुए थे। भड़कीली पोशाक न थी, सीधा-सादा भेश था। संगीत और काव्य मे भी अब शृङ्गार न था, शान्त रस था। शहज़ादी ने समझ लिया कि मेरी पराजय हो गई। अब इस काव्य-संगीत का लक्ष्य कोई और ही है, शहज़ादी नहीं।

और एक दिन फिर दरियाबीबी कवि के घर पहुँची। वही सोने की तश्तरी उसके हाथ में थी। कवि ने डरते हुए कहा--'अब क्या लायी हो?'

बाँदी ने कहा--'देख लो, शहज़ादी का तोहफा है।'

कवि ने रूमाल उघाड़कर देखा—वहाँ सोने के वर्क में लपेटी हुई पान की गिलोरी थी पर सूखी हुई, कुचली हुई। चूर-चूर। कवि का मुंह सूख गया। उसने सिर झुका लिया। बाँदी चली गई।

एक दिन शहज़ादी का पैगाम कवि की स्त्री को मिला कि—शहज़ादी का आपके यहाँ कल निमन्त्रण है। सुनकर कवि की स्त्री हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई—यह खूब है कि शहज़ादी माँगकर निमन्त्रण लेती है।

और दूसरे दिन शहज़ादी कवि की झोंपड़ी मे आयी। कवि की स्त्री ने उसके लिए बहुत से पकवान बनाये। शहज़ादी रसोई के बाहर बैठकर उससे बात करती रही। फिर कहा—'बहिन, बहुत बना चुकी। अब बस करो। चलो हम दोनों बावड़ी में नहायें, फिर साथ बैठकर खायें।'

दोनों जल में देर तक नहाती रहीं। जल-क्रीड़ा करती रहीं। दोनो ने वस्त्र उतारकर घाट पर रख दिये थे। अकस्मात् शहज़ादी ने पानी से निकलकर कवि की स्त्री के साधारण वस्त्र पहन लिये। कवि की स्त्री ने रोका तो शहज़ादी धरती पर लोट-लोटकर और उन वस्त्रों को छाती से लगा-लगाकर विलाप करने लगी कि इन्हीं वस्त्रों ने मेरे हीरे-मोती की पोशाक को हराया। मुझे हृदय के सिंहासन पर से हटाकर इन्होंने अधिकार जमाया। मुझे इन्हें छाती से लगाने दो। प्यार कर लेने दो।

बैजनाथ ने जब यह देखा तो उसका मुंह सूख गया। उसने बादशाह से घर जाने की छुट्टी माँगी, पर शाह ने न सुनी। कवि को छुट्टी नही मिली। कवि ने ब्राह्मणी को घर भेज दिया। वह एकाकी उसी कुटी मे रहने लगा।

मुगल बादशाह हुमायूँ ने गुजरात को घेर लिया। बैजनाथ ने तम्बूरा फेंककर तलवार बाँधी। घनघोर युद्ध होने के बाद सुलतान की हार हुई। हुमायूँ ने किले के सब कैदियों को कत्ले-आम करने का हुक्म दिया। कत्ल किये जाने वाले कैदियों में बैजनाथ भी था। हुमायूँ गुस्से में भरा हुआ सुर्ख पोशाक पहने कत्ल का दृश्य देख रहा था।

बैजू को एक मुगल ने युद्ध में हराकर पकड़ा था। बैजू ने कहा—'मुझे बचा दोगे तो अपनी तोल-भर सोना दूंगा।' सिपाही ने उसके सिर की पगड़ी उतार उसीसे उसके दोनों हाथ बाँध दिये और कत्ल किये जाने वाले

कैदियों की पंक्ति मे एक कोने मे बैठा दिया।

बैजू ने गाना प्रारम्भ किया। उसके प्रभाव से कातिल कत्ल करना भूल गये। कैदी रोना-चिल्लाना भूल गये। तलवारों की झनझनाहट सुरताल में बदल गई और कैदियों का रुदन संगीत हो गया। बादशाह दौड़ा हुआ आया। बैजू का संगीत सुनकर उसका सब क्रोध काफूर हो गया। उसने तलवार फेंक दी और बैजनाथ के सामने बैठ गया। बैजनाथ तन्मय होकर गा रहा था। आज उसका संगीत किसी बादशाह को प्रसन्न करने के लिए न था, ईश्वर-भक्ति का पावन स्रोत था जिसे सुनकर मनुष्य काम, क्रोध, लोभ से मुक्त हो जाता है।

□□□

मुद्रक दुर्गा मुद्रणालय १४ सुभाष पार्क एक्सटेंशन शाहदरा दिल्ली-३२